

# श्रीकल्कि-पुराण



• (१) कलिकाल की भीषणता २५७, (२) कलिक का जन्म २६५  
(३) कलिकको शिवजीका शास्त्र-प्रदान २७३, (४) कलिकका उपदेश २८१  
(५) पद्मा की कथा २८८ (६) शुक और पद्मा की वार्ता २९४, (७)  
विष्णु पूजन विधि ३०१।

॥ २ ॥

(१) कलिक का सिहल गमन ३०८, (२) कलिक-पद्मा मिलन,  
३१६ (३) कलिक पद्मा विवाह (४) अनन्त मुनि का उपाख्यान ३२६  
(५) अनन्त का माया वरण्णन ३३६, (६) समल नारी का दिव्य रूप ३४७,  
(७) बौद्धों से सग्राम ३५४।

॥ ३ ॥

(१) स्त्रियों का युद्धार्थ आगमन, ३६३, (२) कुथोदरी का हनन  
३७०, (३) मरु और देवापि का आगमन ३७६, (४) चन्द्र वश कथन  
३८४, (५) सत्यगु का आगमन ४०१, (६) धर्म से कलिक का सवाद  
४०५, (७) कोक-विकोक से युद्ध ४१३, (८) भल्लाट नगर पर आक्र-  
मण ४२०, शशिध्वज- कलिक सग्राम ४२८, (१०) शशिध्वज की पुनर्विजय  
विवाह (११) शशिध्वज को पूर्व जन्म कथा ४३६, (१२) भाँकल-तत्त्व  
वरण्णन ४४८, (१३) मणि चोरी की कथा ४५४, (१४) शशिध्वज का  
वन गमन ४६१, (१५) माया स्तव ४६८ (१६) कलिक का यज्ञानुष्ठान  
४७२, (१७) देवयानी कमिष्ठा की कथा ४८१, (१८) कलिक का वन  
विहार ४८६, (१९) कलिक का वंकुण्ठ गमन ४९४, (२०) गगाजी की  
स्तुति ५०६, (२१) कलिक पुराण का उपमहार ५०१,

# कल्किपुराण

## प्रथम अंश

### प्रथम-अध्याय

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोका. सपाला. सदा ।  
स्व स्व कर्म सुसिद्धये प्रतिदिन भक्त्या भजन्त्युत्तमा. ।  
त विघ्नेशमनन्तमच्युतमज सर्वज्ञसर्वाश्रिय ।  
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधै शास्त्रैः पुरोचन्दितम्॥१॥  
नारायण नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।  
देवी सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥२॥  
यदोदण्डकरालसर्पकवलज्जालाज्जलद्विग्रहाः  
नेतु. सत्करवालदण्डलिता भूपा.क्षितिक्षोभकाः ।  
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनि. कल्कि. परात्मा हरिः  
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्षप्रवृत्तिप्रियः ॥३॥  
इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।  
शौनकाद्या महाभागा. पप्रच्छुस्त कथामिमाम् ॥४॥  
हे सूत! सर्वधर्मज्ञ । लोमहर्षणपुत्रकं ! ।  
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवती कथाम् ॥५॥  
क कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वर प्रभुः ।  
कथ वा नित्य धर्मस्य विनाश कलिना द्वृतिः ? ॥६॥  
इति तेषा वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिः प्रभुम् ।  
सहर्षपुलकोद्दिव्य सर्वाङ्गः प्राह ताम्नुनीन् ॥७॥

प्राचीन काल में वैदिक तान्त्रिक आदि विविध शास्त्रों के द्वारा आराधित इन्द्र सहित देवता, मुनीश्वर और लोकपालों द्वारा स्वकार्य-सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक सतत उपासित, विघ्नेश, अनन्य, अच्युत, अजन्मा, सर्वज्ञ एव सर्वाश्रिय स्वरूप भगवान् विष्णु का वन्दन करता हूँ ॥१॥ नर, नारायण कहे जाने वाले नरोत्तम को एव भगवती सरस्वती को नमस्कार करके उनकी जय बोलता हूँ ॥२॥

जिनके भयकर भुज भुजग के विष ज्वाल में पड़कर अपने घोर अत्याचारों से भूमडल की शान्ति भग करने वाले राजागण भस्म हो जायगे और जिनके भयकर खड़ग की तीक्ष्णा धार से राजाओं के देह मर्दित होगे, वे ब्राह्मण वश में उत्पन्न होकर, युग-युग में अवतार धारण करने वाले भगवान् श्री हरि कलिक रूप में रक्षा करे ॥३॥

सूतजी के यह वचन सुन कर नैमित्तिकरण्य निवासी शौनकादि महाभागों में उनसे पूछा ॥४॥ हे सूतजी ! हे सर्व धर्मों के ज्ञाता, हे लोम-हर्षण-पुत्र ? हे त्रिकालज्ञ ? हे पुराणों के भली प्रकार जानने वाले ? अब आप भगवान् की कथा को विरतृत रूप से कहिये ॥५॥ कलि कौन है ? वह कहाँ उत्पन्न हुआ ? वह किस प्रकार पृथिवी का अधीश्वर बन गया ? तथा उसने नित्यधर्म को किस प्रकार विनष्ट कर दिया ? यह सब हमारे प्रति कहिये ॥६॥ महर्षियों के यह वचन सुनकर सूतजी ने भगवान् श्री हरि का ध्यान किया और फिर पुलकित अग होकर कहने लगे ॥७॥

शृणुध्वमिदमाख्यान भविष्य परमाङ्गुतम ।  
कथि ब्रह्मणा पूर्व नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥  
नारद प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।  
सव्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥  
स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय ससदि ।

प्राह भागवतान्धमनिष्टादशसहस्रकान ॥ १० ॥

तदा तृपे लय शास्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।

मार्कण्डेयादिभि. पृष्ठः प्राह पुण्याश्रमे शुकं ॥ ११ ॥

तत्राह तदनुज्ञात. श्रुतवानस्मि या कथा ।

भविष्या. कथयामीह पुण्या भागवती शुभा ॥ १२ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! प्राचीन समय की बात है—इस परम अद्भुत उपाख्यान कोपूछने पर ब्रह्माजी ने नारदजी से जो कहा था, वही मे आपके प्रति कहता हूँ ॥६॥ फिर नारद जी ने इसका वर्णन व्यासजी से किया, जिसे व्यासजी ने अपने मेधावी पुत्र ब्रह्मरात को सुनाया ॥६॥ ब्रह्मरात ने उसे अभिमन्यु-पुत्र विष्णुरात के प्रति अट्ठारह सहस्र श्लोकों मे सभा मडप के मध्य मे सुनाया ॥१०॥ उस समय प्रश्न होते-होते राजा विष्णुरात ने एक सप्ताह मे शेष प्रश्नों को पूर्ण कर लिया और लय को प्राप्त हो गये । उसी कथा के शेष अश अर्थात् सक्षिप्त रूप को शुकदेवजी ने मार्कण्डेय प्रभृति मुनियों के प्रश्न करने परे कहा ॥११॥ भगवान् श्री शुकदेवजी द्वारा वर्णित उसी सक्षिप्त पुण्यमय, भागवत उपाख्यान को, जो भविष्य मे घटित होने वाला है, आपसे कहता हूँ ॥१२॥

ताः शृणु ध्वमहाभागा समाहित धियोऽनिशम् ।

गते कृष्णे स्वनिलय प्रादुर्भूतौ यथा कलि ॥ १३ ॥

प्रलयान्ते जगत्सष्टा ब्रह्म लैकपितामह ।

ससर्ज घोर मलिन पृष्ठदेशात् स्वपातकम् ॥ १४ ॥

स चाधर्म इति रुयातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात् ।

श्रवणात्स्मरणाल्लोक सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

अधर्मस्य प्रियारम्या मिथ्या मार्जिरलोचना ।

सस्य पुत्रोऽस्तितेजस्वी दर्म्भ. परमकोपनः ॥ १६ ॥

स मायाया भगिन्यान्तु लोभः पुत्रञ्च कन्यकाम् ।

निकृति जनयामास तयो ऋषिं सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के अपने लोक को पधारने के पश्चात् जिस प्रकार कलि की उत्पत्ति हुई, उस सब को कहता हूँ, आप लोग समाहित चित्त सुने ॥ १३ ॥ जब प्रलयकाल व्यतीत हो गया तब ससार-स्थान, लोक मितामह ब्रह्माजी ने अपनी पीठ से घोर मलीन पातक को उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ उसी पातक का नाम अधर्म हुआ, उस अधर्म के वश के श्रवण, स्मरण एव रहस्य जानने से प्राणीमात्र सब पापों से मुक्त हो सकते हैं ॥ १५ ॥ उस अधर्म की पत्नी बिल्ली जैसे नेत्र वाली, अत्यन्त रम्या हुई, जिसका नाम मिथ्या हुआ । फिर अधर्म के सयोग से अति तेजस्वी, महाकोधी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दभ था ॥ १६ ॥ अधर्म और मिथ्या ने माया नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की । दंभ और माया के सयोग से लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या हुई । लोभ और निकृति के सयोग से ऋषि नामक पुत्र हुआ ॥ १७ ॥

सहिंसाया भगिन्यान्तु जनयामास त कलिम् ।

वामहस्त धृतोपस्थ तैलाभ्यक्ताङ्गनप्रभम् ॥ १८ ॥

काकोदर करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।

पूर्तिगन्ध द्यूतमद्यस्त्री सुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥

भगिन्यान्तु दुरुक्त्या स भय पुत्रञ्च कन्यकाम् ।

मृत्यु स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥

यातनाया भगिन्यान्तु लेखे पुत्रायुतायुतम् ।

इथं कलिकुले जाता बहवो धर्मनिन्दका ॥ २१ ॥

यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशका ।

आधिव्याधिजरागलानिदुःखशोकभयाश्रया ॥ २२ ॥

ऋषि की सयोगि हिंसा हुई । उन दोनों के सयोग से ससार को नष्ट वाले कलि की उत्पत्ति हुई । इस वाम कर में उपस्थ धारणा करने वाले कलि की देह कान्ति काजल के समान काली हुई ॥ १८ ॥ काकोदर, कराल, चचल जिह्वा वाले, भयानक दुर्गन्ध युक्त शरीरधारी इस कलि

ने दूत, मद्य, स्त्री और स्वर्ण में निवास किया ॥१६॥ कलि की सगर्भा दुरुक्ति हुई । उन दोनों ने भयानक नामक पुत्र और मृत्यु नाम की कन्या उत्पन्न की । मृत्यु ने उसके द्वारा निरय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥२०॥ निरय की सगर्भा यातना हुई । इन दोनों के सयोग से हजारों पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार कलि के कुल में बहुतेरे धर्म-निन्दकों की प्रवतारणा हुई ॥२१॥ यह सभी आधि आधि बुढ़ापा, ग्लानि हुख शोक और भय के ग्राशय को प्राप्त होकर यज्ञ, अच्युत, दानादि एवं बैदिक तथा तात्त्विक कर्मों का नाश करने वाले हुए ॥२२॥

कलिरजानुगाश्चेष्वर्थशो लोकनाशका ।

बभूवुः कालविभ्रष्टा. क्षणिका; कामुका नरा: ॥ २३ ॥

दम्भाचारदुराचारास्तात्मात्मविहिसका ।

वेदहीना द्विजर दीनरः शूद्रसेवापरा. सदा ॥ २४ ॥

कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रियणोऽधमा ।

वेदविक्रियणो व्रात्या रसविक्रियणस्तथा ॥ २५ ॥

मासविक्रियण. कूरा. शिश्नोदरपरपरयणा ।

परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारका ॥ २६ ॥

हस्तवाक्यरा. पापसारा. शठा मठनिवासिनः ।

घोडशब्दायुषः श्यालब्रह्मवा नीचसङ्गमा ॥ २७ ॥

लोकचरण का नाश करने वाले, कलिरज के अनुचर यूथों ने चंचल, क्षण-भगुर और कामुक मनुष्य-देह ध्वरणा किये ॥२३॥ यह घोर दम्भी, दुराचारी, मातृ-पितृ-हिसक अनुचरणसे बाह्यण कुल में जन्म लेकर भी वेद-विहीन, दविद्री और शूद्रों के सेवा-परदयण हुए ॥२४॥ कुतर्कवाद की बहुततम से युक्त, धर्म, वेद, रस, भाँम आदि के विक्रय में तत्पर, सस्कार-विहीन, शिश्नोदर-परायण, परदार-परायण, उन्मत्त एवं वरणशक्ति सन्तानों के उत्पन्न करनेवाले हुए ॥२५-२६॥ यह वाटे आकार के, पापी, शठ, मठों में निवास करने वाले, सोलह वर्षों की परम आयु वाले, यह कलि के सेवकणसे संबंधे को माई के समान

मानने वाले और नीचों की सगति करने वाले हुए ॥२७॥

विवादकलहक्षुद्धा॑ केशवेशविभूषणा॑ ।

कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वाढु॒षिका द्विजाः ॥ २८ ॥

सन्यासिनो गृहसक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।

गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवच्चकाः ॥ २९ ॥

प्रतिग्रहरता शूद्रा॑ परस्वहरणादरः ।

द्वयो स्वीकारमुद्वाह॑ शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥

प्रतिदाने क्षमाशक्तो॑ विरक्तिकरणाक्षमे ।

बाचानलत्वच्च पाण्डित्ये यज्ञोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ ३१ ॥

धनाद्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।

सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

विवाद-कलह से क्षुब्ध रहने वाले, केश विन्यास में आसक्त, धन-वान, ब्याज से जीविका चलाने वाले एवं कुलीन कहलाने वाले यह ब्राह्मण ही कलिकाल मे पूजनीय हुए ॥२८॥ सन्यासी गृहस्थ-धर्म परायण हो गए, गुहस्थो मे विवेचन शक्ति का अभाव होगया, शिष्य गुरु निन्दक और धर्मध्वजी साधु वचक होगए ॥२९॥ शूद्र दान लेने और पर-सम्पत्ति के हरण करने वाले हुए, स्त्री-पुरुष की सहमति ही विवाह हुआ, मित्र शठ हुए, प्रतिदान ही दानशीलता होगया, न्यायाधीश दण्ड देने मे असमर्थ होकर क्षमाशील होगए, दुर्बल के प्रति उदासीनता होने लगी, अधिक बोलने वाले ही पडित कहे जाने लगे तथा यश की कामना से ही लोग धर्म का सेवन करने लगे ॥३०-३१॥ धनवान ही साधु पुरुष माने जाने लगे, दूर का लाया हुआ जल ही तीर्थ का जल होगया, यज्ञो-पवीत मे ही ब्राह्मणत्व निर्हित होगया और दण्ड धारणा सन्यासी का लक्षण रह गया ॥३२॥

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।

स्त्रियो वेश्यालापसुखा॑ स्वपु॑सा त्यक्तमानसा॑ ॥ ३३ ॥

धरान्तलौलुपा॑ विप्राश्चण्डालगृह्याजका॑ ।

स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दनाचरणप्रिया ॥ ३४ ॥

चित्रवृष्टिकरा मेघा भन्दशस्या च मेदिनी ।

प्रजाभक्षा तृपा लोका करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥

स्कन्धे भार करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजन ।

गिरिदुर्ग वन घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगा ॥ ३६ ॥

मधुमासैर्मूलफलैरहारै प्राण धारिणा ।

एव तु प्रथमे पादे कले कृष्णविनिन्दका ॥ ३७ ॥

पृथिवी अल्पशस्या होगयी, नदियाँ अन्यान्य स्थानों मे बहते वाली हुईं, नारियाँ वेश्यालय मे सुख मानने लगीं और भायाओं का पति मे अनुराग नहीं रहा ॥ ३३ ॥ पराये अन्न की कामना वाले ब्राह्मण शूद्रों के यहाँ यजन करने लगे, विधवाओं ने वैधव्य का आचरण त्याग दिया और स्वच्छन्द आचरणवाली होगई ॥ ३४ ॥ मेघ, खण्ड-वृष्टि वाले हुए, पृथिवी भन्दशस्या हुई, राजागण प्रजा-भक्षक होगये, जिससे प्रजा करों के भार से उत्पीडित हो उठी ॥ ३५ ॥ अत्यन्त क्षुब्ध हुए प्रजाजन कन्धों पर बोझओर हाथ में पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत और घोर वनों में जाकर आश्रय खोजने लगे ॥ ३६ ॥ मधु, मास मूल और फल का भोजन ही प्राण धारणा का सहारा बन गया । कलि के प्रथम पाद मे ही मनुष्यगण श्री कृष्ण-निन्दक हो गये ॥ ३७ ॥

द्वितीये तनामहीनास्तृतीये वर्णसङ्करः ।

एकवर्णश्चतुर्थे च विस्मृतं च्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥

निःस्वाध्या-स्वधा-स्वाहा-वौषटोकार-वर्जिता ।

देवा सर्वे निराहारा ब्रह्माण शरण ययु ॥ ३९ ॥

धरित्रीमग्रत कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।

दद्वग्र्बह्यणौ लोक वेदध्वनिनादितम् ॥ ४० ॥

यज्ञधूमै समाकीर्ण मुनिवर्थ्य निषेवितम् ।

सुवर्ण वेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्त मुज्जवलम् ॥ ४१ ॥

वर्ण्णि यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।

सरोभिं सारसैर्हंसैराहूयन्त मिक्रातिथिम् ॥ ४२

कलि के द्वितीय पाद में लोग श्रीकृष्ण नाम को भी भूल गए, तीसरे पाद में वर्ण सकर उपन्त हुए और चौथे पाद में तो जाति-पाँति ही कुछ न रही, लोग सत्कर्म और ईश्वर को भी भूल गये ॥ ३८ ॥ स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार और ओकारादि का लोप हो गया जिससे सभी देवता आहार न मिलने के कारण पीड़ित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ॥ ३९ ॥ सभी क्षीराता को प्रस्तु हुए दीन देवगण चिन्तिता पृथिवी को आगे करके ब्रह्म-लोक को गये । वह लोक उन्हें वेद-ध्वनि से गूँजता हुआ दिखाई दिया ॥ ४० ॥ वहाँ यज्ञ का धुआ फैल रहा था, मुनिगण उपासना एव यज्ञ कर रहे थे, स्वर्ण-वेदी के मध्य दक्षिणाभिन प्रज्वलित थी, उद्यान वन-पूष्ठों और फलों से परिपूर्ण थे, सरोवर में सारस और हसों के मधुर स्वर ऐसे लग रहे थे, मानों अस्तिथियों का स्वागत कर रहे हों ॥ ४१-४२ ॥

वायु लोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः ।

प्रणाताह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥

तद्ब्रह्मसदन दैवाः सेश्वरा- क्लिन्नमानसा ॥

विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्य निवेदितुम् ॥ ४४ ॥

त्रिभुवनज-कं सदासनस्थ सनक-सनन्दन-सनातनैश्वसिद्धैः

परिसेवित पादकमल ब्रह्माण देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

चचल पवन लता-जालों को भकोर स्हा था, अलि भवलि कलियों का रस-पान करते गूँज रहे थे, मानों यह सभी प्रणाम, आहान, सत्कार आदि के लिए मधुर वारणी का प्रयोग कर रहे हों ॥ ४३ ॥ अपने स्वामी इन्द्र के सहित खेद युक्त मन वाले सब देवता ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके अपना दुःख निवेदन करने के लिए ब्रह्म-सदन में प्रविष्ट हुए ॥ ४४ ॥ वहाँ जाकर सनक, सनन्दन और सनातन से अपने चरण-कमलों की सेवा कराते हुए एवं श्रेष्ठ आसन पर आसीन ब्रह्म-जी को उन देवताओं ने नमस्कार किया ॥ ४५ ॥

## द्वितीय अध्याय

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः ।  
 कलेदोषाद्भर्महानि कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥  
 देवाना तद्वच श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।  
 प्रसादयित्वा त विष्णु साधयिष्यम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥  
 इति देवै परिवृत्ता गत्वा गोलोकवासिनम् ।  
 स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवाना हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! वहाँ जाकर वे सभी देवता ब्रह्माजी की आज्ञा से उनके समक्ष बैठ गये । फिर उन्होंने कलि के दोषों से जो धर्म की हानि हुई थी, उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १ ॥ दुःखित हृदय वाले देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—मै भगवान् विष्णु की आराधना करके तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध करता हूँ ॥ २ ॥ यह कर ब्रह्माजी ने देवताओं को साथ लिया और गोलोक निवासी भगवान् श्री हरि की सेवा में जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने स्तुति की और फिर देवताओं की कामना निवेदन की ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मागमिदमब्रवीत् ॥  
 शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।  
 सुमत्यामातरि विभो । पत्नीर्या त्वन्निदेशत् ॥ ४ ॥  
 चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव । करिष्यामि कलिक्षयम् ।  
 भवन्तो वान्धवा देवाः स्वशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥  
 इय मम प्रिया लक्ष्मीः सिहले संभविष्टि ।  
 बृहद्रथस्य भूपस्य कौटुम्या कमलेक्षणा ।  
 भार्याया मम भार्या ज्ञानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

यात युय भुव देवा स्वाशावतरणेरता ।  
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भ्रुवि ॥ ७ ॥

पुण्डरीकाक्ष भगवान् ने देवताओं की दुख-गाथा सुनकर ब्रह्माजी से कहा— हे विभो ! मैं शम्भल ग्राम में विष्णुयश के यहाँ, उनकी पत्नी सुमति के गर्भ से उत्पन्न हूँगा ॥४॥ हे ब्रह्मत ! हम चारों भाई मिलकर उस कलि को नष्ट कर डालेंगे । अब सभी देवताओं को भी अपने-अपने बांधवों सहित पृथिवी पर अवतार लेना है ॥५॥ मेरी प्रिया लक्ष्मी सिंहल द्वीप मे महाराज बृहद्रथ की रानी कौमुदी के गर्भ से उत्पन्न होगी, इसका नाम पद्मा होगा ॥६॥ मरु और देवापि नामक दो राजाओं को भी पृथिवी पर उत्पन्न करूँगा । हे देवगण ! अब तुम भी शीघ्रही अपने-अपने अश के सहित भूमडल पर अवतार धारण करो ॥७॥

पुन कृतयुग कृत्वा धर्मान्सस्थाप्य पूर्ववत् ।  
कलिव्याल सनिरस्य प्रयास्ये स्वालय विभौ ॥ ८ ॥  
इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृत ।  
जगाम ब्रह्मसदन देवाश्च त्रिदिव ययु ॥ ९ ॥  
महिमा स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यमं ।  
विप्रर्षे । शम्भलग्राममाविवेश परात्मकं ॥ १० ॥

हे विभो ! जब पृथिवी पर सत्ययुग का पुन आविर्भाव कर दूँगा और धर्म का पूर्ववत् स्थापन तथा कलिकाल रूपी नाग को नष्ट कर डालूँगा, तब पुन अपने इस लोक मे आ जाऊँगा ॥८॥ देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी ने भगवान् की यह आज्ञा सुनकर ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया और सब देवता अपने स्वर्ग लोक को चले गये ॥९॥ हे ऋषियो ! अपनी महिमा से महिमान्वित भगवान् विष्णु इस प्रकार शम्भल ग्राम मे स्वयं अवतार धारण करने के लिए प्रविष्ट हुए ॥१०॥

सुमत्यां विष्णु यशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।  
ग्रह-नक्षत्र-राश्यादि-सेवित—श्रीपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

सरिसमद्रा गिरयो लोका सस्थाणुजङ्गमा ।  
 सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥  
 वभूवु सर्वसत्वानामानन्दा विविधाश्रया ।  
 नृत्यिति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगर्यश ॥ १३ ॥  
 चक्रुवर्ज्ञानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणा ॥ १४ ॥  
 द्वादश्या शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधव ।  
 जात ददृशतु पुत्र पितरी हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीहरि विष्णुयथ के द्वारा उनकी पत्नी के गर्भ में प्रविष्ट होकर भ्रूण रूप हुए ॥ ११ ॥ यह जानकर कि विष्णु पृथिवी पर आ गये हैं, सभी सरिता, समुद्र, पर्वत, स्थावर जगम प्राणी, ऋषि-गण और देवगण आदि सभी प्रसन्न हो उठे ॥ १२ ॥ तथा सभी जीव विभिन्न प्रकार से हर्ष प्रकट करने लगे, पितर नाचने लगे और देवता प्रभु के गुणगान मे तत्पर हुए ॥ १३ ॥ गन्धर्व बाजे बजाने प्रौर अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥ १४ ॥ वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् ने अवतार लिया । उनको प्रकट होते हुए देखकर माता-पिता पुलकित हो उठे ॥ १५ ॥

धातुमाता महाषष्ठी नाभिच्छ्रेत्री तदम्बिका ।  
 गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥ १६ ॥  
 तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पय सुधाम् ।  
 मातृका माङ्गल्यवच कृष्णजन्मदिने तथा ॥ १७ ॥  
 ब्रह्मा तदुपधार्यश्च स्वाशंग प्राह मैवकम् ।  
 याहीं त मृतिकागार गत्वा विष्णु प्रबोधय ॥ १८ ॥  
 चतुर्भूजमिद रूप देवानामपि दूर्लभम् ।  
 त्यक्त्वा मानुषवद् पु कुरुनाथ । विचारितम् ॥ १९ ॥  
 इति ब्रह्मवचा श्रुत्वा पवन सुरभि सुखम् ।  
 सशीत प्राह तरसा ब्रह्मसो वचनादृत ॥ २० ॥

भगवान् के प्रकट होने पर महाषष्ठी धात्री हुई, अभिका ने नाल छेदन किया, गङ्गाजी ने अपने जल से गर्भक्लेद को हटाया और सावित्री ने भगवान् के शरीर का मार्जन किया ॥१६॥

कृष्ण-जन्म के समान ही अनन्त भगवान् के अवतार लेने पर धसुन्धरा ने दुर्घसुधा की धारा प्रवाहित कर दी, मातृकांशों ने मगला-चार किया ॥१७॥ शम्भल ग्राम में भगवान् के अवतरित होने का समाचार जानकर ब्रह्माजी ने वायु को आज्ञा दी कि तुम सूतिकागार में जाकर भगवान् से इस प्रकार कहो ॥१८॥ कि आपके चतुर्मुर्ज स्वरूप का दर्शन तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, अतः हे नाथ ! इस चतुर्मुर्ज रूप को छोड़कर मनुष्य रूप बनाइये ॥१९॥ सुशीतल, सुखद, सुगन्धित व यु ने यह वचन सुनकर हुतगति से सूतिकागार में जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥२०॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्खणादद्विभुजोऽभवत् ।  
 तदा तत्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥  
 अमसस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।  
 ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवाजातय ।  
 मङ्गलाचारबहुला पापतापविवर्जिता ॥ २२ ॥  
 सुमतिस्त सुतलब्ध्वा विष्णु जिष्णु जगत्पतिम् ।  
 पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहृयादगवा शतम् ॥ २३ ॥  
 हरे कल्याणकृद्विष्णुयशा शुद्धेन चेतसा ।  
 सामर्यजुर्विद्भिरग्रैचस्तनामकरणे रत ॥ २४ ॥  
 तद राम कृष्ण व्यासो द्रौणिभिक्षुशरीरिण ।  
 समायाता हरि द्रष्टु बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी का सदेश प्राप्त होने पर भगवान् ने अपना स्वरूप दो भुजाओं से युक्त बना लिया । यह लीला देखकर माता-पिता विस्मित रह गये ॥२१॥ प्रभु की माया मेरोहित हुए माता-पिता ने समझा कि

भ्रम से ही हमने अपने पुत्र को चार भुजा देखा था । फिर उस शम्भल ग्राम मे सभी पाप-नाप नष्ट होकर नित्य नवीन मगलाचार होने लगे ॥२२॥ भगवान् को पुत्र रूप मे प्राप्त करके पूर्णकामा सुमति ने ब्राह्मणों को एक सौ गौय दान दी ॥२३॥ पवित्र हृदय वाले विष्णु-यशजी ने अपने पुत्र के मगल की कामता से ऋक्, यजु और सामवेदी ब्राह्मणों को नामकरण के लिए नियुक्त किया ॥२४॥ भगवान् के शिष्य-रूप का दर्शन करने के लिए परशुराम, कृष्णचार्य, वेदव्यास और द्रोण-चार्यजी के पुत्र अश्वत्थामा भिक्षुक वेश मे वहाँ आये ॥२५॥

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्यसन्तिभान् ।

हृष्टरोमा द्विजवर पूजयाच्चक ईश्वरान् ॥ २६ ॥

पूजितास्ते स्वासनेषु सविष्टा स्वसुग्वाश्रया ।

हरि क्रोडगत तस्य ददृशु सर्वमूर्त्य ॥ २७ ॥

तबालक नराकार विष्णु नत्वा मुनीश्वरा ।

कल्किकल्किविनाशार्थमाविभूतं । वदुर्बुधा ॥ २८ ॥

नामाकुर्वस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।

कृत्वा सस्कारकर्माणि यथुस्ते हृष्टमानसा ॥ २९ ॥

तत स ववृथे तत्र सुमत्या परिपालित ।

कालेनालपेन कसारि शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

सूर्य के समान तेजस्वी उन ईश्वर स्वरूप आगन्तुकों को देखकर द्विजवर विष्णुयश ने उनका पूजन किया ॥२६॥ भले प्रकार सुपूजित हुए वे मुनिगण श्रेष्ठ आसनो पर सुखपूर्वक विराजे, तब उन्होने अपने पिता की गोद मे बैठे हुए भगवान् के दर्शन किए ॥२७॥ उन ज्ञानी मुनीश्वरो ने मनुष्य रूप मे शिष्य स्वरूप भगवान् को नमस्कार किया और तब उन्होने जान लिया कि कलिकाल के विनाशार्थ भगवान् श्री कल्कि का अवतार हुआ है ॥२८॥ फिर उनका सस्कार करते हुए उनका कल्कि नाम रखकर प्रसन्न मन से वे मुनीश्वर चले गये ॥२९॥ फिर कसारि भगवान् माता सुमति के द्वारा भले प्रकार लालित-पालित

होते हुए शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३०॥

कल्केजर्येष्टास्त्रय शूरा कवि प्राज्ञ सुमन्त्रका ।  
 पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥  
 कल्केरशा पुरो जाता. साधवो धर्मतत्परा ।  
 गार्यभर्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रता ॥ ३२ ॥  
 विशाख्यूप भूपाल पालितास्तापवर्जिता ।  
 ब्राह्मणा कल्किमालोक्य परा प्रीतिमुपागता. ॥ ३३ ॥  
 ततो विष्णुयशा पुत्र धीर सर्वगुणाकरम् ।  
 कल्कि कमलपत्राक्ष प्रोवाच पठनाहृतम् ॥ ३४ ॥  
 तात ते ब्रह्मस्त्कार यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।  
 सावित्री वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

भगवान् कल्कि के उत्पन्न होने से पहले माता-पिता को प्रिय, गुरु-ब्राह्मण का हित करने वाले इनके तीन भाई और उत्पन्न हो चुके थे । उनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक थे । भगवान् के ही अश से उनकी जाति में, उनके अनुगामी, साधु स्वभाव वाले एव धार्मिक प्रवृत्ति वाले गार्य, भर्य और विशाल आदि भगवान् से पहले ही उत्पन्न हो चुके थे ॥३१-३१॥ विशाख्यूप-नरेश द्वारा परिपालित यह सभी ब्राह्मण भगवान् का दर्शन करके सम्पूर्ण पाप-ताप से छूटकर अत्यत हर्षित हुए ॥३३॥ फिर अपने कमलनयन एव सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को अध्ययन करने के योग्य बय वाला हुआ देखकर विष्णुयश उनसे बोले ॥३४॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारा श्रेष्ठ ब्रह्म स्तकार, उपनयन और सावित्री का श्रवण कराऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥

को वेद का च सावित्री केन सूत्रेण सस्कृताः ।  
 ब्राह्मणा विदिता लोक तत्त्व नद तात माम् ॥ ३६ ॥  
 वेदो हरेवक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।

त्रिगुणाच्च त्रिवृत्सूत्रं तेन विप्रा प्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥

दशयज्ञे सस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिन ।

तत्र वेदाश्च लोकाना त्रयाणामिह पोषका ॥ ३८ ॥

यज्ञाध्ययन दानादि तप स्वाध्याय सयम ।

प्रीण ग्रन्ति हरि भक्त्या वेद तन्त्र विधानत ॥ ३९ ॥

तस्माद्यथोपनयन कर्मणोऽहं द्विजै सह ।

सस्कृतं बाध्यप्रवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

पिता के वचन सुनकर कल्पि भगवान् ने पूछा—वेद क्या है ।

सावित्री क्या है । किस सूत्र से सस्कारित पुरुष ब्राह्मण सज्जक होता है ? हे तात ! यह सब मुझे बताइये ॥ ३६ ॥

पिता बोले—वेद भगवान् विष्णु की वारपी है, सावित्री ही प्रतिष्ठा एव वेद-माता है । त्रिगुण-सूत्र को त्रिवृत्ताकार करके धारण करने पर ब्राह्मण नाम से प्रतिष्ठित होता है ॥ ३७ ॥

तीनों लोकों के पोषक एव दशयज्ञ द्वारा सस्कृत ब्रह्म-वादी जो ब्राह्मण है, उन्हीं के पास वेद निवास करते हैं ॥ ३८ ॥

यही दश सस्कार वाले विप्र वेद, तन्त्र और शास्त्रादि के विधान से यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय, सयम आदि के सहित भक्ति करते हुए भगवान् को प्रसन्न करते हैं ॥ ३९ ॥

इसी लिए ब्राह्मणों, बौद्धों आदि के सहित किसी शुभ दिन मैं तुम्हारा उपनयन सस्कार करना चाहता हूँ ॥ ४० ॥

के च ते दश सस्कारा ब्राह्मणोषु प्रतिष्ठिता ।

ब्राह्मणा केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानत ॥ ४१ ॥

ब्रह्मण्या ब्राह्मणाद्यातो गमधानादिसस्कृत ।

सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥

तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मतिमा त्राति ससुतिम् ।

विष्णवचेनमिद ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विज ॥ ४३ ॥

कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिल जगत् ।

सन्मार्गेण हरिप्रीणान्कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

कलिक भगवान् बोले—ब्राह्मण के लिए निश्चित किये गये वे दश-स्सकार कौन-कौन से हैं ? किस विधि न से ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना किया करते हैं ? ॥४१॥ विष्णुयश बोले—हे पुत्र ! ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मणी में गर्भाधान स्सकार आदि से सस्कृत, त्रिकाल सध्या एव सावित्री की पूजा और जप में परायण, तपस्वी, सत्यवक्ता, धीर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् विष्णु की अर्चना विधि को भले प्रकार जानकर आनन्द में निमग्न रहता हुआ सदैव इस सृष्टि के रक्षक होता है ॥४२-४३॥ भगवान् ने कहा—हे तात ! जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का उद्घारक, साधुमार्ग-परायण, भगवान् विष्णु को उपासना द्वारा प्रसन्न करने वाला और तीनों लोकों की कामना पूर्ण करने वाला है, वह ब्राह्मण कहाँ है ? ॥४४॥

कलिना बलिना धर्म धातिना द्विज पातिना ।  
निराकृता धर्मरता गता वर्षन्तिरात्तरम् ॥ ४५ ॥

ये स्वल्पतपसो विप्रा स्थिता कलियुगान्तरे ।  
शिश्नोदरभूतोऽधर्मनिरता विरत क्रिया ॥ ४६ ॥

पापसारा दुराचारास्तेजोहीना कलाविह ।

आत्मान रक्षितु नैव शक्ता शूद्रस्य सेवका ॥ ४७ ॥

इति जनकवचो निशम्य कलिक. कलिकुलनाशमनोऽ भिलाषजन्मा  
द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतोगुरुकुलवासमुवास साधुनाथ. ॥ ४८ ॥

पिता बोले—धर्मधाती और ब्राह्मणों के हिसक महाबली कलि के द्वारा पीड़ित हुये विप्र गण अन्य देश को चले गये ॥४५॥ स्वल्प तप वाले जो ब्राह्मण इस कलिकाल में यहाँ स्थित रहे, वे सब शिश्नो-दर धर्मी होकर धर्म और कर्म से विरत हो गये ॥४६॥ पाप युक्त, दुराचारी एव तेज-रहित ब्राह्मण इस कलिकाल में आत्म-रक्षा में अशक्त एव शूद्रों के सेवक बन गये हैं ॥४७॥ पिता के यह वचन सुन कर कलिक भगवान् ने कलि को नष्ट करने का निश्चय किया । ब्राह्मणों ने अपनी वारणी द्वारा उनका उपनयन स्सकार किया । और तब भगवान् कलिक गुरुकुल में निवास हेतु गये ॥४८॥

## तृतीय अध्याय

सत्तो वस्तु गुरुकुले यान्त कलिक निरोक्ष्य स ।

महेन्द्रद्विस्थितो रामः समानीयाश्रम प्रभु ॥१॥

प्राह त्वा पाठयिष्यामि गुरु मा विद्वि धर्मतः ।

भृगु वश समुत्पन्न जामदग्न्य महाप्रभुम् ॥२॥

वेद वेदाङ्ग तत्वज्ञ धनुर्वेद विशारदम् ।

कृत्वा नि क्षत्रिया पृथिवी दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३॥

महेन्द्राद्वौ तपस्तमु मागतोऽहृद्विजात्मज ।

त्व पठात्र निज वेद यच्चाभ्यच्छाख्यमुत्तमम् ॥४॥

इति तद्वच आश्रुत्य सप्रहृष्टतनूरुह ।

कलिक पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती तदोऽभवत् ॥५॥

सूतजी बोले—भगवान् कलिक शो गुरुकुल वास के लिए जाते देख कर महेन्द्र पर्वत निवासी प-शुराम उन्हे अपने आश्रम मे ले गये ।१। वहाँ पहुँच कर प-शुराम ने उनसे कहा—मैं भृगु वश मे उत्पन्न, महर्षि जमदग्नि का पुत्र, वेद-वेदाग के तत्व की जानने वाला, धनुर्वेद-विद्या-विशारद परशुराम हूँ ।२। मैंने इस पृथिवी को क्षत्रिय-विहीन दरके ब्राह्मणों को दक्षिणा स्वरूप दे डाली थी । अब तुम मुझे धर्म पूर्वक गुरु मानो, मैं तुमको शिक्षा दूँगा । हे द्विजात्मज ! मैं इस महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिए आया हूँ, तुम यहाँ अपना वेदाध्ययन करो तथा अन्य जो भी कोई शास्त्र पढ़ना चाहो, उसे पढो ।३-४। यह सुन कर भगवान् कलिक ने आनन्द से गदगद होकर परशुराम को प्रणाम किया और फिर वेदाध्ययन करने लगे ।५।

साङ्ग चतुष्ठिरुलां धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।  
 समधीत्य जामदन्यात्कलिक. प्राह कृताञ्जलि ॥६॥  
 दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देय तव सन्निनौ ।  
 यथामे सर्वसिद्धि. स्याद्या स्यात्व तोषकारिणी ॥७॥  
 ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।  
 विष्णु. सर्वाश्रियः पूर्ण. स जात. सम्भले भवान् ॥८॥  
 मत्तो विद्या शिवादस्त्रा लब्ध्वा वेदमय शुक्रम् ।  
 सिंहले च प्रिया पद्मा धमान्सस्थापयिष्यसि । ९।

जब भगवान् कलिक चौपठ कराएं और सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर चुके तब उन्होंने हाथ जोड़ कर परशुराम से कहा— ।६। हे विभो ! जिन दक्षिणा के देने से मुझे सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी और जिस दक्षिणा की प्राप्ति से आप सतुष्ट हो सकेंगे, वह दक्षिणा मुझे बताने की कृपा करिये ।७। परशुराम बोले— हे भूमन् ! कलिकान का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने जिन भगवान् थीं हरि से निवेदन किया था, वे ही आप भगवान् विष्णु शम्भल प्राप्त मे अवतारित हुए हैं ।८। आर मुझसे विद्या भगवान् शक्तर से शक्ति और वेदमय शुक्र तथा सिंहल देव से अपनी पत्नी पद्मा को प्राप्त करके भूमराडल पर धर्म की स्थापना करेंगे ।९।

हतो दिग्बिजयेभूपान् धर्महीनान् कलिप्रियान् ।  
 निगृह्य बौद्धान् देवार्पि मरुञ्च स्थापयिष्यसि ।१०।  
 वयमेतेस्तु सतुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणा ।  
 यज्ञ दान तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ।११।  
 इत्येतद्वचन श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनि गुरुम् ।  
 बित्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शक्तरम् ।१२।  
 पूजयित्वा यथान्याय शिव शान्त महेश्वरम् ।  
 प्रणिपन्न्याशुतोषं त ध्यात्वा प्राह हृदिस्थितम् ।१३।

किर दिश्विजय द्वारा धर्म-विहीन और क्लिप्रिय राजाओं और बौद्धों का सहार कर मरु और देवापि को प्रतिष्ठित करोगे । तुम्हारा यह साधुकृत्य ही मुझको संतुष्ट करने वाली वक्षिणी होगी, क्योंकि तब हम तप, यज्ञ, दान, ध्यान, आदि सभी कर्म भले प्रबार से कर सकेंगे । १०-११। यह सुन कर और गुरुवर परशुरामजी को नमस्कार करके कटिक भगवान् बिल्वोदकेशवर महादेव के मन्दिर मे गये और उन्हे संतुष्ट करने लगे । १२। हृदय मे स्थित उन आशुतोष शान्त स्वरूप शिवजी का उन्होंने विधिवत् पूजन किया और प्रणाम तथा ध्यान के पश्चात् निवेदन किया । १३।

गौरीनाथ विश्वनाथ शरण्यंभूतावास वासुकीकण्ठभूषस् ।  
 ऋक्ष पञ्चास्यादिदेव पुराणं वन्दे सान्द्रनन्दसन्दोहदक्षम् ।  
 योगाधीश कामनाश कराल गङ्गासङ्गाक्लिन्नमृद्धनिमीशम् ।  
 जटाजूटाटोपरक्षिम्भाव महाकाल चन्द्रभाल नमामि ॥  
 इमशानस्थभूतबेनालसङ्गं नानाशस्त्रैः खङ्गशूलादिभिश्च ।  
 व्यग्रात्युग्रा बाहवो लाकनाशे यस्य क्रोधोदधूतलोकोऽनमेति ।  
 यो भूतादि पञ्चभूतसिस्त्रिक्षुः तन्मात्रात्मा काल कर्मस्वभावे  
 प्रहृत्येद प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते त नमामि ॥  
 स्थितौ विष्णु सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्ममेतत्  
 विभर्ति ब्रह्माद्याशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गं स्तपरेश  
 नमामि । यज्ञस्या वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यागिन् सविता  
 यातितप्यन् । शोताशु खेतारकैः सग्रहैश्च प्रवर्तते त परेश  
 प्रपद्ये । यस्याश्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु काल,-  
 प्रमाता । मेरुमध्ये भुवनानाञ्च भर्ता तमीशानविश्वरूप  
 नमामि । १४-२०।

क्लिकजी ने कहा—हे गौरीपते ! हे विश्वेश्वर ! हे शरणागत-  
 वत्सल ! हे सर्वभूताश्रय ! हे वासुकी नाग का कण्ठभूषण धारण करने

वाले प्रभो ! हे त्रिनेत्र ! हे पचवदन ! हे पुराण पुरुष ! हे सघन आनन्द-दक्ष आदिदेव ! आपको नमस्कार है । १४। हे योगाधीश्वर ! आप का म-देव का नाश करने वाले, कराल दशन, गगतरग से समुज्ज्वल मूर्ढा वाले, जटानूठ टीप युक्त, परिक्षिस भाव वाले महाकाल हैं । हे चन्द्रभाल ! आपको नमस्कार है । १५। हे प्रभो ! आप भूत वेत्ताओं के सहित इमणान में निवास करते हैं । आप अपनी भयानक भुजाओं में विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण करते हैं । प्रलय कान में यह समस्त विश्व आप की हो क्रोधानल में भल्मीभूत हो जाता है । १६। आप ही भूतादि तन्मात्रा रूप पव भूत एव कल-कर्म-म्वाभानुनार सृष्टि रचना करते और अत में प्रब्रह्म करके जीवत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मानन्द में रमण करते हैं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है । १७। आप ही सुरात्मा विश्व के पालनार्थ विष्णु स्वरूप लेकर धर्म सेतु स्वरूप साधुओं की रक्षा करते हैं । आप ही शब्दादि अवयवों के द्वारा सगुण रूप ब्रह्माजी के अश रूप होते हैं । ऐसे आप परमेश्वर को नमस्कार है । १८। आपनी आज्ञा से, वायु बहत, अस्त्रिन प्रजवलित होता, सूय प्रकाशित होता और ता गण के सहित चन्द्रमा उदित होता है । ऐसे आपको मैं शरण लेता हूँ । १९। जिन की आज्ञा से पृथिवी विश्व को धारण किये हैं और मेघ समय पर वर्षा करते हैं तथा जो सर लोकों क भाग्य करने वाले हैं, ऐसे आप ईशान एव विश्वरूप भगवान शकर को नमस्कार करता हूँ । २०।

इति कलिकस्तव श्रुत्वा शिवः सर्वत्मदर्शनः  
साक्षात् प्राह हसन्नोशः पार्वतीमहितोग्रत । २१।  
कल के, सम्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।  
तमाह वरय प्रेष्ठ । वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् । २२।  
त्वया कृतमिद स्तोत्र ये पठन्ति जना भुवि ।  
तेषां सर्वथर्थसिद्धिः स्यादिह लोके पश्च च । २३।  
विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्वां वर्मर्थी धर्ममाप्नुयात् ।  
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि । २४।

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।

शुक्रमेतच्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृहाणे भो । २५ ।

भगवान् कल्पि का स्तोत्र सुन कर सर्वात्मा भगवान् शक्त  
पार्वती सहेत साजाद् रूप में प्रकट हुये—उन्होंने आनन्दित होकर  
भगवान् कल्पि के देह पर कर स्पर्श करते हुए और मुस्कराते हुए  
कहा—हे श्रेष्ठ ! अपना इच्छन वर मागो । २१-२२। तुम्हारे द्वारा रचित  
इस स्तोत्र का कां भू-मण्डल में ज़ भी कोई पाठ करेगा, उसकी इहलौ-  
किक और पारलौकिक सभी कामनाएँ पूर्ण होगी । २३। इम स्तोत्र के  
षट्ठने सुनने से विद्यार्थी को विद्या, धर्मर्थी को धर्म और अन्य कामना  
वाले को उसकी उसी कामना की प्राप्ति होती है । २४। हे कल्पि ! मैं  
तुम्हें यह श्रीद्वारामी, अनेक रूप धारी, गरुड़ अश्व युक्त सर्वज्ञ शुक्र  
प्रदान करतः हूँ, इन्हे ग्रहण करो । २५।

सर्वं शास्त्रविद्वासं सर्वं वेदारथं पारगम् ।

जयिन सर्वं भूताना त्वां वदिष्यन्ति मानवा । २६ ।

रत्नत्सरु करालञ्च करवालं भद्राप्रभम् ।

गृहाणं गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् । २७ ।

इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।

शम्मलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वित । २८ ।

पितरं मातरं भ्रातृत् नमस्कृत्य यथाविवि ।

सर्वं तद्वर्णं यामासं जामदग्न्यस्य भाषितम् । २९ ।

शिवस्य वरदानञ्च कथं यित्वा शुभा, कथा ।

कलिकः परमतेजस्वी ज्ञातिम्योऽथवदन्मुदा ।

हे कल्पि ! मनुष्यो मे तुम सर्वं शास्त्रज्ञं, सर्वं शस्त्रात्म  
विशारदं, सर्वं वेदो मे पारगामी एव सर्वं भूतो मे विजी कहै  
आग्नेये । २६। यह रत्नसरु नामक महा कराल, अत्यन्त चमकती हुई,  
अत्यन्त भारी और पृथिवी के भार को सँभाने वाली तनवार ग्रहण

करो ।२७। भगवान् महेश्वर के वचन सुन कर कल्कि ने उन्हे प्रणाम किया और अश्व पर आँख लगोकर द्रुतगति से शभल ग्राम मे जा पहुँचे ।२८। वहाँ पहुँच कर उन्होने अपने पिता, माता, आना आदि को विधि-वत् नमस्कार कर परशुराम जी के कहे हुए सब वचन उन्हे सुनाये ।२९। किर शिवजी द्वारा प्राप्त हुए वरदान की चर्चा की और अपने जाति वालों के मध्य स्थित होकर प्रसन्न हृदय से श्रेष्ठ कथा कहने लगे ।३०।

गार्यभर्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिता स्थिता ।

कथोपकथन जात शम्भलग्रामवासिनाम् ।३१।

विशाख्यूपभूपाल श्रुत्वा तेषाऽच्च भाषितम् ।

प्रादुभवि हरेमने कलिनिग्रहकारकम् ।३२।

माहिष्मत्या निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरे प्रियान् ।३३।

स्वधर्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्तृप्, स्वयम् ।

प्रजापालः शुद्र मना: प्रादुर्भावात् श्रियः पते: ।३४।

अधर्मवश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मक्रियापरान् ।

लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुखिता भयम् ।३५।

उनके द्वारा बर्णित कथा सुन कर गार्य, भर्य और विशाल आदि ग्रत्यन्त प्रसन्न हुए । कथा शभल ग्राम मे पररपर कही जाती है अधिक प्रचारित हो गई ।३१। शभल ग्राम के लोगो से ही यह चर्चा विशाख्यूपराज ने सुनी और उन्होने जान लिया कि भगवान् कल्कि ने कलि का निग्रह करने के लिए पृथिवी पर अवतार ले लिया है ।३२। उसकी माहिष्मतो नगरी मे यज्ञ, दान, तपस्या और व्रतादि करने वाले सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भगवान के प्रीति पात्र हुए ।३३। रमापति भगवान् के अवतार लेने पर सभी वर्ण अपने-अपने धर्म मे तत्पर हुए तथा राजा भी प्रजापालक, पवित्र मन वाला, धार्मिक हुआ ।३४। उस नगरो के निवासियों को धर्म मे तत्पर देख कर लोभ,

असत्य और अधर्म के वशज भय से दुखित होकर वहाँ से पलायन कर गये । ३५।

जैत्र तु रगमारुह्य खङ्गच्च विमलप्रभम् ।

दशित, सशर्त चापं गृहीत्वागात् पुराद्वहि । ३६।

विशाख्यूपभूपालः प्रायात् साधु जनप्रियः ।

कलिं द्रष्टु हरेशमाविर्भतच्च शम्भले । ३७।

कवि प्राज्ञ सुमनच्च पुरस्कृत्य महाप्रभुम् ।

गार्थ्य-भर्य विशालैश्च ज्ञातिभि परिवारितम् । ३८।

विशाख्यूपो दट्टो चन्द्र तारागणेरिव ।

पुराद्वहि सुरंयद्वन्द्वमुच्चे श्रव स्थितम् । ३९।

विशाख्यूपोऽवनतः सप्रहृष्टतनुरुहः ।

कल्केरालोकनात् सद्य, पूर्णांत्मा वैष्णवोऽभवत् । ४०।

भगवान् कलिं तीक्ष्ण तलशार, धनुष और श्रेष्ठ बाणो को धारणा कर शिव-प्रदत्त अश्व पर आच्छ होकर नगरी में बाहर चल दिये । ३६। सत जनों से स्नेह करने वाले विशाख्यूप नरेश शभल ग्राम में अवतरित भगवान् के दर्शनार्थ उपस्थित हुए । ३७। उस समय अत्यन्त प्रभाव वाले कवि प्राज्ञ, सुमन और गार्थ विशालादि से विरे हुए तथा तारागण सहित चन्द्रमा और देवताओं सहित उच्चैश्रवा के समान अश्व पर चढ़े कलिं भगवान् को विशाख्यूप नरेश ने नगर के बाहर निकलते देखा । ३८-३९। कलिं भगवान् को देखते ही रोमाचित हुए राजा भुजते हुए पूर्ण वैष्णवत्व को प्राप्त होगया । ४०।

सह राजा वसन कलिं धर्मानाह पुरोदितान् ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणा समासतः । ४१।

ममाशान् कलिविभ्रष्टानिति मजजन्मसङ्गतान् ।

राजसूयाश्वमेधाभ्यां मा यजस्व समाहितः । ४२।

श्रयमेव परो लोको धर्मश्चाह सनातनः ।

कालस्वभावस्त्काराः कर्मानुगतयो मम । ४३।

सोमसूर्यकुले जातौ देवापिमरुसज्जकौ ।  
 स्थापयित्वा कृतयुग कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ।४४।  
 इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्कि हरि प्रभुम् ।  
 प्रणाम्य प्राह सद्भर्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ।४५।  
 इति नृपवचनं निशम्य कल्कि कलिकुलनाशनवासनावतार ।  
 निजजनपरिषद्विनोदकारीमधुरदचोभिराह साधुमर्ति ।४६।

राजा से वातनिप करते हुए भगवान् कल्कि ने ब्राह्मण क्षत्रिय दैश्य तथा आश्रमादि के धर्मों का सक्षिप्त रूप से वर्णन किया ।४१। कल्कि बोले — हमारे जो अंश कलि से प्राप्त पाप के द्वारा अष्ट होगये थे, वे हमारे अवतरित होनेपर धर्म मार्ग पर आ गये हैं । हे राजन् । तुम राजसूय या अश्वमेघ यज्ञ करते हुए मेरी आराधना करो ।४२। मैं ही परलोक हूँ, सनातन धर्म मेरी ही हूँ, काल, स्वभाव और सर्स्कार सभी मेरे कर्म के अनुगत रहते हैं ।४३। मैं चन्द्रवश और सूर्यवश मेरे क्रमशः उत्पन्न देवापि और मरु नामक राजाओं को स्थापित करके तथा इस युग को सतयुग रूप करके सद्गति को प्राप्त हूँगा ।४४। यह सुनकर विशाखयूप नरेश ने भगवान् कल्कि को प्रणाम किया और उनसे वैष्णव धर्म का प्रसग वहने का अनुरोध किया ।४५। राजा की कामना सुन कर कलिकुल का नाश करने की इच्छा से भूमण्डल पर अवतरित भगवान् कल्कि अपने परिजनों और अनुयायियों के हृदयों को आनन्दित करने वाली मिठ वाणी से साधु धर्म की व्याख्या करने लगे ।४६।

## चतुर्थ-झट्याय ।

सत् कलिक सभा मध्ये राजामानो रविर्यथा ।  
बभाषे त नृप धर्म-मयो धर्मन् द्विज प्रियान् ॥१॥

कालेन ब्रह्मारणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।

अहमेवासमेवाम्रे नान्यत् कार्यमिद मम ॥२॥

प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मन ।

महानिशान्ते रन्तु मे समुद्भूतो विराट प्रभुः ॥३॥

सहस्रशीर्षं पुरुषा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्त्रो महाप्रभुः ॥४॥

सूतजी बोले मुनीश्वरो ! उस समय सभा के मध्य मे भगवान कलिक सूर्य के समान विराज भन होकर विश्वलयूप नरेश के प्रति धर्म-प्रसग कहने लगे ॥१॥ कलिक बोले—कालान्तर मे जब यह ब्रह्मारण नाश की प्राप्त होगा तब प्रलय होने पर मुझ मे विज्ञान हो जायगा । सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था, अन्य कुछ भी नहीं था । इस सम्पूर्ण जगत् का कारण मैं ही हूँ ॥२॥ सम्पूर्ण विश्व की प्रसुति और द्वैतहीन-त्विका महा रात्रि का अन्त होने पर मैं सर्वशक्ति सम्पन्न विराट्मूर्ति रूप मे आविभूत होता हूँ ॥३॥ वह विराट्मूर्ति सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण वाली हुई, उसी मूर्ति के अग से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥४॥

जीवोपाधेमं मांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।

ब्रह्मोपश्चिः स सर्वज्ञो मम वाऽवेदशासितः ॥

ससर्ज जीव जातानि कालमाया शयोगत.  
 देवा मन्वादयो लोका स प्रजायतय. प्रभु ।३।  
 गुणिन्या मायायाशा मे नानोपाधी ससजरे ।  
 सोपाधय इमे लोका देवा सस्थाणुजङ्घमा, ।७।  
 ममाशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन् लये ।  
 एवविधा ब्राह्मणा ये मच्छरोरा मदात्मिका, ।८।  
 मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रिया ।  
 मा प्रसेवन्ति शसन्ति तपोदानक्रियास्त्रिवह ।९।  
 स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।  
 ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्तयः परा ।१०।

ब्रह्म उपाधि वाले सर्वज्ञगुरुर ने मेरी वेद वाणी के शासनानुनार  
 मेरी मार्ग प्रकृति की शक्ति, काल और अश के सम्मत्रण से इत जो ओ-  
 पधारी जाति को प्रकट किया । इप प्रकार मनु आदि प्रजापतियों के  
 सहित देवता प्रकट हुए ।५-६। मेरे अश से त्रिगुणात्मिका माया अनेक  
 प्रकार की उपाधि धारण करके इस लोक मे देवता एव स्थावर जगम  
 सृष्टि प्रकट करती है ।७। माया सृष्टि का रचियता मेरा अश अन्त मे मुझ  
 मे ही लय हो जाता है । इसी प्रकार ब्राह्मण मेरी ही आत्म स्वरूप एव  
 देह है ।८। क्योंकि ब्राह्मण यज्ञ वेदाध्ययन आदि श्रेष्ठ कार्यों के द्वारा  
 मेरा उद्भार तथा तप दानादि द्वारा मेरी सेवा करते हैं ।९। वेदवक्ता  
 ब्राह्मण जिप प्रकार स्मरण द्वारा मुझे प्रसन्न करते हैं, उस प्रकार  
 देवतादि अन्न कोई भी मुझे प्रसन्न नहीं करते, क्योंकि वेद ही मेरा  
 परम मूर्ति है ।१०।

तस्मादिमे ब्राह्मणं जास्तै पुष्टस्त्रिजगजनाः ।  
 जगन्तिमे शरोराग्नि तत्पोषे ब्रह्मणो वरः ।११।  
 तेनाह तात्रमस्यामि शुद्धसत्वगुणाश्रयः ।  
 ततो जगन्मय पूर्वं मा सेवन्तेऽखिज्ञाश्रयः ।१२।

विप्रस्य लक्षणा ब्रूहि त्वद्भूक्ति का च तत्कृता ।

यतस्तवानुग्रहेण वाग्वाणा ब्राह्मणा कृता । १३।

वेदा मार्मीश्वर प्रहुरव्यक्त व्यक्तिमत्परम् ।

ते वेदा ब्राह्मणामुखे नानाधर्मे प्रकाशिता । १४।

यो धर्मो ब्राह्मणाना हि सा भर्त्तिर्मम पुष्कला ।

तयाह तोषित श्रीश सभवामि युगे-युगे । १५।

ब्राह्मण द्वारा वेदाध्ययन से तीनों लोकों के निवासी पुष्टि को प्राप्त हो रहे हैं, प्राणी रूप मेरे देह को श्रेष्ठ ब्राह्मण ही पुष्ट करने हैं । ११। इसलिए शुद्ध सत्त्वगुण का आश्रित हुआ मैं ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करता हूँ, तब ब्राह्मण भी मुझे विश्वमय समझ कर कर ही मरी सेवा करते हैं । १२। विशाखयूप नरेश ने कहा—हे प्रभो ! आप मेरे प्रति ब्राह्मणों के लक्षण कहिये । वे आपकी भक्ति किस प्रकार करते हैं, जिस भक्ति को करके वे आपके अनुग्रह से बाग्वाण स्वरूप हो जाते हैं । १३। कल्पि बोले—हे राजव् ! अव्यक्त एव वेद ही मेरे ईश्वर है । ब्राह्मण के मुख में यह वेद विभिन्न कर्मों का प्रकाश करते हैं । १४। ब्रह्मणों का धर्माचारण मेरे प्रति भक्ति रूप में प्रकट है । उनकी उसी भक्ति से सतुष्ट होकर मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ । १५।

उद्धर्वन्तु त्रिवृत् सूत्र सधवनिर्मित शनैः ।

तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञ सूत्रं विदुर्बुधा । १६।

त्रिगुणा तदग्निथयुक्त वेदप्रवरसमितम् ।

शिरोघरात् नाभिमध्यात् पृथग्छ्वर्ष परिमाणकम् । १७।

यजुर्विदा नाभिमित सामग्रानामय विधि ।

वामस्कन्धेन विधृत यज्ञ सूत्र बलप्रदम् । १८।

मृदभस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत् तिलक द्विज ।

भाले त्रिपुण्ड्रं कर्माङ्ग्रं केश पर्यन्तमुज्जलम् । १९।

पुण्ड्रमंगुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् विधा कृतम् ।

ब्रह्मविष्णु शिवावास दर्शनात् पापनाशनम् । २०।

ज्ञानियों का कहना है कि ब्राह्मण की सवधा नारी के द्वारा सूत्र को त्रिवृत् करे तथा उस त्रिवृत् सूत्र को पुनः त्रिवृत् करे यही यज्ञ सूत्र है । १६। वेद प्रवर युक्त उस सूत्र में गाँठ लगावे । यजुर्वेदी ब्राह्मण को यही यज्ञोपवीन कठ से नाभि तक तथा पृष्ठ के आधे भाग तक धारण करे । सामवेदी ब्राह्मण को नाभि तक धारण करना चाहिए । यज्ञोपवीन बांये कन्धे पर धारण करने से बल का देने वाला होता है— । १७-१८। द्विज को मृत्तिका भूमि और चन्दनादि का तिनक लगाना चाहिये । मृत्तिक पर केश पर्यंत उज्वल त्रिपुण्ड लगाना चाहिये । १९। पुराङ् द्र का प्रमाण एक अगुल और त्रिपुण्ड्र इससे तिगुना होता है । त्रिपुण्ड्र में ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते हैं । यह दशन करते ही पाप वा नाश करने में समर्थ है । २०।

ब्राह्मणाना करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हारः ।  
 गात्रे तीर्थानि रागश्च नाडीषु प्रकृतिष्वृत् । २१  
 सावित्री कण्ठकुइरा हृदय ब्रह्म सहितम् ।  
 तेषा स्तनान्तरे धर्म पृष्ठोऽधर्मं प्रकीर्तिः । २२  
 भू देवा ब्राह्मणा राजन् । पूज्या वन्द्या सदुक्तिभिः ।  
 चतुराश्रम्यकुशला मम धर्मं प्रवर्त्तका । २३  
 बालाश्रापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः ।  
 तेषा वच पालयितुमवतारा कृता मयाः । २४  
 महाभाग्य ब्राह्मणाना सवपापप्रणाशनम् ।  
 कलिदोषहर श्रृत्वा मुच्यते सर्वतो भयात् । २५।

ब्राह्मणों के हाथों में स्वर्ग और भगवान् विष्णु निवास करते हैं वाणी में वेद देह में तीर्थ और राग तथा नाडी में त्रिगुणतिमका प्रकृति है । २१। ब्राह्मणों के कण्ठ में सावित्री, हृदय में ब्रह्म वक्षस्थल के मध्य में धर्म एव पृष्ठ देख में अवर्म का निवास रहता है । २२। हे राजन् ! चारों आश्रमों के धर्म को जानने वाले, मेरे धर्म के प्रवर्तक—

देवना ब्राह्मण श्रेष्ठवत्तरों के द्वाग वन्दीर हैं ।२३। ज्ञानवृद्ध और ब्राह्मणों के बालकों के प्रति मैं अत्यन्त प्रेम करता और उनके वचन पालनाथ ही प्रवतार धारण करता है ।२४। सभी पापों का नाशक, कलि काल के दोषों का हरण करने वाला ब्राह्मणों के महाभाग्य रूपी चरित्र को सुनन से सदा सब भय नष्ट हो जाते हैं ।२५।

इनि कलिकवच श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम् ।

प्रणम्य त शुद्धमना प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ।२६।

गते राजानि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः ।

चरित्वा कलिकुरुत स्तुत्वा त पुरत् स्थिन ६७।

त शुक प्राह कलिकस्तु सस्मित स्तुतिपाठकम् ।

स्वागत भवता कस्मात् देशात् कि खादित तत् ।२८।

शृणु नाथ । वचा मह्य कौतूहलसमन्वितम् ।

अह गनश्च जनपेनव्ये निःत सज्जे ।२९।

यथा वृत्ता द्वाप गत तच्चित्र श्रवणप्रियम् ।

बृहद्रथस्य नृपते कन्यायाश्चरितामृतम् ।३०।

कलियुग के दोषों को नष्ट करने वाले भगवान् कलिक के वचन सुनकर पवित्र हृदय वैष्णव श्रेष्ठ राजा उन्हें प्रणाम करके चला गया ।२६। राजा के चले जाने पर शिव प्रस्त जानी शुक सध्या के समय भ्रमण से लौक्य भगवान् कलिक के सरप्र मनुष्य करके खड़ा हुआ । उनके स्तोत्र-पाठ को सुन कर कलिक भगवान् बोले—नुम किधर से आ रहे हो ? तुमने वहाँ क्या भोजन किया ? शुक बोता—हे नाथ ! आप मुझे कौतूहल वाही सुनिये । मैं समुद्र के मध्य मिथि सिवन द्वीप मे गया था ।२७। उन द्वीप से घटिन वृत्तात् पुनरे मे बड़ा अच्छा है । राजा बृहद्रथ की कन्या का चरित्र अमृत के ममान श्रेष्ठ है ।२८।

कौमुद्यामिह जाताया जगता पापनाशनम् ।

चरित सिइले द्वोपे चातुर्बंधं जनावृते ।३१।

प्रासाद-हमर्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।  
 रत्न-स्फटिक-कुड्यादि-स्वलता भिभूषिते । ३२।  
 स्त्रीभिरस्तमवेशाभिः पद्मिनीभि समावृते ।  
 सरोभि सारसैर्हंसेरुपकूलजलाकुले । ३३।  
 भृङ्ग रङ्ग प्रसङ्गाद्ये पद्मै कल्हारकुन्दकै ।  
 नानाभुजलताजाल-वनोपवन-मणिडते । ३४।  
 देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रम ।  
 तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी । ३५।

इस कन्या ने रानी कोमुदी के गर्भ से जन्म लिया है । इसका चरित्र श्वरण से पाप नाशक है । उस द्वीप मे चारो वर्ण के मनुष्यों का निवास है । ३१। भवन, अटारी, गृह युक्त नगर मे वहाँ का राजा सुशोभित है । उसका भवन रत्न, स्फटिक, मणि तथा स्वर्ण आदि दी पच्चीकारी से विभूषित हो रहा है । ३२। वहाँ पद्मिनी प्रभृति स्त्रीयां श्रेष्ठ वस्त्रादि से सुशोभित रहती हैं । सरोवरों मे सारस और हस आदि पक्षी किलोल करते हैं । ३३। वह द्वीप विभिन्न प्रकार की पद्मलताओं के जालो से सुशोभित है । उपवनो मे कल्हार, कुन्द आदि के पुष्पों पर भोरे गुजार करते हैं । ३४। वहाँ का राजा बृहद्रथ महाबजी और पराक्रमी है । उसकी पद्मावती नाम की कन्या भी अत्यन्त यशस्विनी है । ३५।

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।  
 काम भोह करी चारु चरित्रा चित्र निर्मिता । ३६।  
 शिव सेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।  
 सखीभिः कन्यकाभिश्च जप ध्यान परायणा । ३७।  
 ज्ञात्वा तात्त्वं हरेलैलक्ष्मी समुन्भूतां वराङ्गप्राम् ।  
 हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्वत्या महृ हर्षित । ३८।  
 सा तमालोक्य वरदं शिव गौरी समन्वितम् ।  
 लज्जिताधोमुखी किञ्चन्नोवाच पुरतः स्थिता । ३९।

हरस्तामाह सुभरे । तव नारायण पति ।

पाणि ग्रहोष्यति मुदा नान्यो योगयो नृपात्मज ।४०।

श्रेष्ठ मुख वाली, सुन्दर चरित्रमयी, कामदेव को भी मोहित करने वाली उस कन्या की समानता सासार में कोई नहीं कर सकता । ३६। जिस प्रकार गिरिजा भगवान शकर की सेवा परायण है, उसी प्रकार पूजनीया पद्मावती अपनी सखियों के साथ जप ध्यान-परायण रहती हैं । ३७। भगवान विष्णु की प्रिया लक्ष्मी जी को पद्मावती के रूप में उत्तरान्न हुई जानकर पार्वती जी के साथ भगवान शकर वहाँ पथारे । ३८। वरदाता शिवजी को पार्वती जी के सहित आये देख कर उस कन्या ने लड़जा से शिर नीचा कर लिया और अवाक् खड़ी रही । ३९। तब शिवजी बोले— हे सुभरे ! तुम्हारे पति भगवान नारायण ही तुम्हारा पाणि ग्रहण करेगे । क्योंकि अन्य कोई राजकुमार तुम्हारे योग्य नहीं है । ४०।

कामभावेन भुवने ये त्वा पश्यन्ति मानवा ।

तेनैव वयमा नार्यो भविष्यन्त्यपि तत्करणात् । ४१।

देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः ।

त्वया रन्तु तथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः । ४२।

विना नारायण देव त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् ।

गृह याहि तपस्त्यवांवा भागस्वतनुतनम् । ४३।

मा क्षोभये हरेः पतिन कमले विमल कुरु ।

इति दत्त्वा वर सोयस्तत्रैवान्तर्दर्थे हर । ४४।

हरवरभिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्मनोरथ प्रकाशम् ।

विकसितवदना प्रणम्य सोम निजजन कालयभाविवेश रामा

मृत्युलोक के वासी जो मनुष्य तुम्हारी ओर काम भाव से दृष्टि पाएं करेगे, वे तत्काल अपनी आयु के अनुकूल खोत्व भाव को प्राप्त हो जायेंगे । ४५। देवता, दैत्य, नाग, गधर्व चारण आदि में भी जी कोई तुम पर कुट्टे डालेगे वे भी स्त्रीत्व को उसी समय प्राप्त होंगे । ४६।

भगवान नारायण के अर्तिरक्त जो कोई भी तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहेगा, वह ऐसी ही दशा को प्राप्त होगा । अब तुम तपस्या को छोड़-कर भोग के योग्य अपना रूप बनालो और अपने घर को प्रस्थान करो । ४३। हे कमले ! तुम हरि की पत्नी हो, हर प्रकार का क्षीभ त्याग कर मन को स्वस्थ करो । इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी अन्तर्धान होगये । ४४। भगवान शकर से मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त करके प्रफुल्ल मुख हुई पद्मना शिवजी को प्रणाम करके अपने पितृ-गृह को गई । ४५।

—❀—

## पंचम अध्याय

गते बहुतिथे काले पद्मा वीक्ष्य ब्रह्मदेवः ।  
 निरुद्ध यौवना पुत्री विस्मित पापशङ्कया ।१।  
 कौमुदी प्राह महिषी पद्मोद्भावेऽत्र क नृपम् ।  
 वरयिष्यामि सुभगे ! कुलशील समन्वितम् ।२।  
 सा तमाह पति देवी शिवेन प्रतिभाषितम् ।  
 विष्णुरस्यः पतिरिति भविष्यति न सशय ।३।  
 इति तस्यावच. श्रुत्वा राजा प्राह कदेतिताम् ।  
 विष्णुः सर्वं गुहावास पाणिमस्या गहीस्यति ।४।  
 न मे भाग्योदयं कश्चित् ये न जामातर हरिम् ।  
 वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेयंथा ।५।  
 इमा स्वयं वरा पद्ममा पद्मामिव महोदधे ।  
 मथनेऽसुरदेवाना तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ।६।

शुक्रदेव जी ने कहा — बहुत समय व्यतीत होने पर जब पुत्री को

राजावृहद्रथ ने उसे यीवनावस्था के लक्षणों से युक्त देखा तब वह पाप की शका से चिन्ता करने लगा । १। तब राजा ने अपनी रानी कीमुदी के प्रति कहा कि हे सुभगे ! तुम मुझे परामर्श दो कि अपनी प्रिय पुत्री के विवाहार्थ किस शीलगुण सम्पन्न एवं श्रेष्ठ कुलोत्पन्न राजा को आमन्वित किया जाय ? । २। यह सुन कर रानी कीमुदी ने राजा को भगवान् शकर के वचन स्मरण करते हुए कहा कि इसके पति भगवान् श्री हरि ही होगे, इसमें सशय नहीं है । ३। उसके यह वचन सुनकर राजा वृहद्रथ ने रानी से पूछा कि हे प्रिये ! यह तो बताओ कि भगवान् विष्णु कितने समय में इसका पाणिग्रहण कर लेगे । ४। हे प्रिये ! अभी तो हमारा ऐसा भाग्योदय नहीं हुआ जन पड़ता कि जिससे प्रभाव से वेदवती के समान मैं भी स्वयंवर में भगवान् श्री हरि को अपने जामाता के रूप में प्राप्त कर सकूँ । ५। देवताओं और दैत्यों के द्वारा मथन किये जाते समुद्र से उत्पन्न हुई पद्मासना पद्मा के समान मेरी इस पद्मा को स्वयंवर में भगवान् श्री हरि वरण करलैं । ६।

इति भूपगणान्भूप समाहूय पुरस्कृतात् ।

गुणशीलवयोरूप विद्याद्विगण सवृत्तान् । ७।

स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।

विचार्यं कारयामास स्थान भूपनिवेशनम् । ८।

तत्रायातो नृपाः सर्वे विवाह कृत निश्चयाः ।

निज सैन्ये; परिवृता, स्वर्णरत्न विभूषिता । ९।

रथान्गजानश्ववरान्समारुदा महाबला ।

श्वेतच्छ्रुतकृतच्छ्रयाः श्वेतचामर वीजिता । १०।

शस्त्राक्षतेजसा दीप्ता देवा सेन्द्राइवाभवन ।

रुचिराश्वः सुकर्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः । ११।

कृष्णासारः पारदश्च जीमूतः कूरमदर्दन ।

काश कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्क कथन सञ्जयौ । १२।

गुह्यमित्रः प्रमार्था च विजुम्भ सञ्जयोऽक्षम ।

एते चान्यो च बहवः समायाता महाबलाः ।१३।

ऐसा सोचते हए राजा वृहद्रथ ने, अपनी कन्या के स्वयंवर के निमित्ता गुणवान्, शीलवान्, रूपवान्, विज एव महात् ऐश्वर्य वाले युवावस्था से परिपूर्ण राजाओं को सम्मान सहित आमंत्रित किया ।७। इम प्रकार उस सिहन देश में पद्मा के स्वयंवर का उत्सव मनाया जाने लगा बहूत प्रकार के मगल होने लगे और राजाओं के निवास आदि के लिए स्थान सज्जित किये जाने लगे ।८। विवाह की इच्छा से सुवर्ण, मणि-रत्नादि से विभूषित हुए राजागण देश विदेश से अपनी सेनाओं के सहित वहाँ आने लगे ।९। वे सभी बलवान् राजागण रथ, ईश्व, गज आदि विभिन्न वाहनों पर सवार होकर वहाँ आये । उनके ऊपर इवेत छत्र लगाये और चमर डुलाये जाते थे । १०। उस समय शस्त्रादि से दैदीप्यमान वे सब राजागण ऐसे शोभा पाने लगे जैसे देवताओं के समाज में इन्द्रु सुगोभित होते हैं । रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, हडाशुग, कृष्ण-सार, पारद, जीमूत क्रूरमर्दन, बाँश, कुशाम्बु, वसुमान, कक, क्रथन, सजय, गुहमित्र, प्रमाणी, विजृम्भ सज्जय, अक्षम आदि अनेक महापराक्रमी नरेशगण वहाँ एकत्र होगये । ११-१३।

विविशुस्ते रञ्जगता स्वस्वस्थानेषु पूजिता ।

वाद्यताण्डवसहृष्टाश्चित्त माल्यम्बराधराः । १४।

नानाभोगसुखोद्रिक्ता कामरामा रतिप्रदा ।

नानालोक्य सिहलेश स्वा कन्या वरवणिनीम् । १५।

गौरी चन्द्रनना श्यामा तारहारविभूषिताम् ।

मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्वाङ्गालकृतां शुभाम् । १६।

कि माया मोहजननी कि वा कामप्रियां भुवि ।

रूपलावण्यसम्पयन्या न चान्यमिह दृष्टवान् । १७।

स्वर्गं क्षितौ वा पातालेऽप्यहं सर्वंत्रगो यदि ।

पश्चासोगाणकीर्णं सखीभिः वरिवारित्वाम् । १८।

वे राजागण विविध प्रकार के वस्त्राभूषण, माला आदि से विभूषित होकर रगभूमि में आकर सादर सम्मानित होते हुए सुखपूर्वक अपने-२ अपने स्थान पर चैठ गये । १४। विभिन्न प्रकार के भोगों और ऐश्वर्य से सम्पन्न, रमणीय, चरित्र वाले एवं सब को प्रसन्न करने के स्वभाव वाले राजाश्वों को देखकर सिहलेश बृहद्रथ ने अपनी वरवर्णणी कन्या को स्वयंवर में बुलाया । १५। गौरी, चन्द्रानना, इयामा मणि-मोती रत्नों आदि से सब प्रकार विभूषित, अत्यन्त सुन्दर हार को धारण किये हुए वह पदमावती मोहमयी माया अथवा कामदेव की साक्षात् पत्नी ही अवतरित हुई प्रतीत होने लगी । मैं स्वर्ग, मर्यालोक, पाताल सभी लोकों में तो गमन करता हूँ । परन्तु ऐसी रूप लावण्य वाली कोई अन्य कन्या मैंने कही भी नहीं देखी । उस कन्या के पीछे दासियाँ चन रही थीं तथा उसके चारों ओर सखियाँ थीं १६-१८।

दौवारिकर्वेव्रहस्तै शासितान्तः पुराद्वहिः ।

पुरोबन्दिगणाकीर्णि प्रापयामास ता शनैः । १६।

नूपुरे किङ्किरीभिश्च कवणाभ्नी ज्ञनमोहिनीम् ।

स्वागताना नृपाणाऽच्च कुल शील गुणान्बहून । २०।

शणवन्ती हसगमना रत्नमालाकरप्रहृता ।

रुचिरापाङ्ग्नभञ्ज्ञेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला । २१।

नृत्यकुन्तलसोपान गण्ड मण्डल मडिता ।

किञ्चिचत्स्मेरोल्लसद्वकदशनद्योतदीपिता । २२।

वेदीमध्यारुण क्षौमवसना कोकिलस्वना ।

रूप लावण्य परयेन क्रतुकामा जगत्रयम् । २३।

समागता तां प्रसमीक्ष्य भूपाः समोहिनी काम विमूढ चित्ता ।

पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्रा रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते । २४।

नगर के बाहर दौवरिकगण हाथों में बेत लिए हुए अन्त पुर के शासन में सलग्न थे । सभास्थल के अगले भाग में बदीगण सड़े थे । उस रग भूमि में राजकुमारी पद्मा मदगति से प्रविष्ट हुई । १६। नूपुर और

किङ्गुणी से लोकों को मोहने वाली भक्ति करती हुई और आगत नरेशों के कुन, गुण, शील आदि का वर्णन शब्दण करती हुई वह हसगति वाली राजकन्या हाथ में रत्नमाला लिए हुए अपने चबन आगों से शोभा को पाती हुई और कटाक्षपूर्वक सब को देखती हुई बढ़ती जा रही थी। वह हिलते हुए कुरुडल वाली, केशकुन्तल की चबलता से युक्त, सुन्दर ग्रीष्मा वाली, विकसित मुख से मद मुक्तकराती हुई, जिसके दाँतों की पवित्रता चमक रही थी। लाल रंग के रेशमी वस्त्र धारण किये हुए, कोकिला जैसे बरेठ स्वर वाली, जिसके रूप लावण्य से तीनों लोक मोहित हो रहे थे, उस मनमोहिनी सुकुमारी राजकन्या को रगभूमि में घूमती हुई देखकर कामदेव के वशीभूत हुए राजागण ऐसे विह्वल चित्त होगये कि उनके शस्त्राश्र क्षणीय सभी खुल-खुल कर पृथिवी पर गिरने लगे । १६-२४।

तस्या स्मरक्षोभ निरीक्षणोत्तिव्रयो बभूदुः कमनीयरूपाः ।  
 ब्रह्मनितम्बस्तुनभारनम्भा सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपा । २५।  
 विलासहास व्यसनातिवित्राः कान्तानन् शोणसरोज नेत्राः ।  
 स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्विशदानुवृत्या । २६।  
 अह बटस्थः परिविषितात्मा पदमाविवाहोत्सवदर्शनाकुल ।  
 तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुखितायाः श्रोतुं स्थितं स्त्रीत्वमितेषु तेषु ।  
 जाहीहि कल्के कमलाविलाप श्रुतं विचित्रं जगतामधीश ।  
 गते विवाहोत्सवमञ्जले सा शिवं शरण्यं हृदये निष्ठाय । २८।  
 तान्दृष्टवा नृपती गजाश्वरथिभिरत्यक्तान्सखित्वं गतान् ।  
 स्त्री भावेन समन्विताननुगतान्पदमा विलोक्यान्तिके ।  
 दीना त्यक्तविभूषणा विलखितीं पादागुलैः कामिनी ॥  
 ईश कर्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ द्विरसाऽस्मरत् । २९।

काम से विमोहित हुए उन राजाओं ने जैसेही उस राजकन्या को व्यासनामय नेत्रों से देखा वैसे ही वे जिस रूप पर लालांचित हुए थे, वैसे

ही रूप वाली कमनीय नारी का रूप उन्हे प्राप्त होगया । २५। इस प्रकार नारी सुलभ हास, विलास, विष्णुन, चातुर्य, सुन्दर मुख और कमल जैसे नेत्रों को प्राप्त हुए वे राजागण अपने को स्त्री हुए देख कर पद्मा के पीछे पीछे उसकी सहेली बनकर चलने लगे । २६। उस समय पद्मा के विवाह का वह उत्सव देखने के निमित्त मैं पास ही के एक वृक्ष पर बैठ गया था । जब वे राजागण स्त्री रूप हो गये तब तो पद्मा अत्यन्त शोकित ही उठी । मैं उसके विलाप को सुनता रहा । हे लोक स्वामित्र ! उस मगलमय उत्सव के इस प्रकार समाप्त हो जाने पर पद्मा ने भगवान् शकर का ध्यान कर जो विलाप किया था, उस करण विलाप को आप श्रवण कीजिये । पद्मा ने देखा कि सभी राजागण मुझे देखते ही अपने हाथी, अश्व, रथ आदि से विलग होकर स्त्री रूप में मेरी सहेली होकर साथ-साथ चल रहे हैं, तो वह अत्यन्त दीनतापूर्वक अपने आभूषणों को त्याग कर धरती को कुरेदने लगी । फिर वह शिवजी के वरदान की सफलता के हेतु भगवान् विष्णु का पति भाव से ध्यान करने लगी । २७-२६।

— ◆ —

## षष्ठि अध्याय

तत् सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता ।  
हरि पति चिन्तयन्तो प्रोवाच विमला स्थिताम् ॥  
विमले कि कृत धात्रां ललाटे लिखन मम ।  
दर्शनादपि लोकाना पुसा स्त्रीभावकारकम् ॥२॥  
ममापि मन्दभाग्यया पापित्या शिवमेवनम् ।  
विफलत्वं मनुप्राप्तं बीजमुष्टं यथोपरे ॥३॥  
हरिलक्ष्मीपति सर्वजगतामधिप प्रभु ।  
मत्कृतेऽप्यभिलाष कि करिष्यति जगत्पति ॥४॥  
यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।  
तदाहमनले देह त्यक्ष्यामि करिभाविता ॥५॥

शुकदेव जी बोले—तदनन्तर विस्मित मुख वाली पद्मा अपनी सहेलियों के मध्य स्थित हुई, भगवान् विष्णु को पतिरूप मे विचार करती हुई, अपने निकट स्थित विमला नाम की सहेली से कहने लगी ॥१॥ पद्मा बोली—हे विमले ! क्या ब्रह्मा ने मेरे भाग्य मे यही लिख दिया है कि जो पुरुष मुझे देखे, वह तुरन्त स्त्रीत्व को प्राप्त हो जाय ॥२॥ हे सखी ! जैसे मरुभूमि मे बोया गया बीज निष्फल होता है, वैसे ही मुझ अभागिनी एव पापिनी द्वारा भगवान् शकर की, की गई उपासना व्यर्थ होगई ॥३॥ भगवान् रमापति विष्णु सम्पूर्ण विश्व के श्रधीश्वर और प्रभु हैं मैं उन्हे पति रूप मे प्राप्त करने की कामना करूँ तो क्या वे मुझे स्वीकार करेंगे ? ॥४॥ यदि भगवान् शम्भु का वचन मिथ्या हो गया और भगवान् विष्णु ने मेरी कामना नहीं की तो मैं उन्हीं भगवान् श्री हरि का ध्यान करती हुई अपने देह को अग्नि कुण्ड मे डाल कर भस्म कर दूँगी ॥५॥

कव चाह मानुषो दोना कवाते देवो जनार्दनः ।  
 निगृहीता विधात्राह शिवेन परिवचिता ।६।  
 विष्णो च परित्यक्ना मदन्या नात्र जीवति ।७।  
 इति नाना विलपिन्या वचन शोचनाश्रयम् ।  
 पद्मायाश्रूरुचेष्टाया । श्रुत्वायातस्तवान्तिके ।८।  
 शुकस्य वचन श्रृत्वा कल्पः परमविस्मितः ।  
 त जगाद् पुनर्याहि पद्मा बोध्यितु प्रियाम् ।९।  
 मत सन्देशहरो भूत्वा यदूरुपगुणकीर्तनम् ।  
 श्रावित्वा पुन कीर । समायास्याति बांधव ।१०।

कहाँ तो मैं दीन मानुषो और कहाँ वे जनार्दन प्रभु—इन दोनों में विवाह की कल्पना करने से ही मैं तो यह समझती हूँ कि विधाना मुझ से विमुख है, तभी तो शिवजी ने मुझे वैसा वर देकर ठग लिया है— ।६। भगवान् श्री हरि के द्वारा परित्यक्ता होकर मेरे अतिरिक्त और कौन जीवित रह सकता है ।७। सुन्दर चरित्र वाली पद्मावती इस प्रकार मे विनाप करती थी । उसके शोकाकुल वचनों को सुनकर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए कल्प जी ने शुक के प्रति कहा—हे शुक मेरी प्रिया पद्मा को आश्वासन् देने के निमित्त तुम पुनः सिंहल देश को प्रस्थान करो ।८। हे शुक ! तुम हमारे सदेश वाहक होकर पद्मा को हमारे रूप गुण का वृत्तन्त सुनाना और फिर हे खग ! तुम शीघ्र ही यहाँ लौट आना ।१०।

सा मे पतिरह तस्या देवविनिर्मितः ।  
 मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भावध्यति ।११।  
 सर्वज्ञसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतै ।  
 तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहरः ।१२।  
 इति कल्केवंचः श्रृत्वा शुक परमहर्षितः ।  
 प्रणम्य त प्रोत्सनाःप्रययौ सिंहलं त्वरन् ।१३।

खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पय ।  
 बीजपूरफलाहारो ययौ नाजजिनिवेशम् ।१४।  
 तत्र कम्यापुर ग्रत्वावृक्षे नागेश्वेर वसन् ।  
 पद्मालोक्य तां प्राह मुको मानुष भाषया ।१५।

अबश्य ही पद्मा मेरी पत्नी और मैं उसका पति हूँ । विधाता ने ही यह सयोग नियत किया है और यह कार्य तुम्हारी मध्यस्थता में ही सम्पन्न होना है । ११। तुम सर्वज्ञ हो, नियम और काल के भी ज्ञाता हो । तुम अपने वचनामृत से समझा कर और मेरे द्वारा ग्रहण किये जाने का आश्वासन देकर यहाँ लौट आओ । १२। कलिकंजी का ऐसा आदेश पाकर मुदित हुए शुक ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रतापूर्वक सिहल-देश को प्रस्थान किया । १३। मार्ग में, समुद्र के पार जाकर शुक ने स्नान करके उस अमृतोपम जल का पान और बिजीरे के फलको भक्षण किया और फिर राजभवन में प्रविष्ट होगया ।१४। वह अन्त पुर में पहुँच कर राजकन्या के निवास स्थान पर जाकर नागकेशर के एक वृक्ष पर चढ़ गया और पद्मा को देख कर मनुष्यों की भाषा में उससे बोला ।१५।

कुशलं ते वरारोहे ! रूप यौवन शालिनी ।  
 त्वा लोलनयनां मन्ये लक्ष्मी रूपमिवापराम् ।१६।  
 पद्मानना पद्मगन्धां पद्मनेत्रा कराम्बुजे ।  
 कमल कालयन्तौं त्वां लक्ष्यामि परां श्रियम् ।१७।  
 कि धात्रा सर्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् ।  
 निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणि । ।१८।  
 इति भाषितमाकर्णं कीरस्यामितमद्भुतम् ।  
 हसन्ती प्राह सा देवी त पद्मा पद्ममालिनी ।१९।  
 कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथ मा शुकरूपधृक् ।  
 देवो वा दानवो वा त्वभागतोऽसि दयापरः ।२०।

शुक ने कहा—हे वरारोहे ! हे रूप योवन सम्पन्ने तुम कुशल पूर्वक तो हो ? तुम अपने चबल नेत्रों से सुशोभित द्वितीय लक्ष्मी ही प्रतीत होती हैं । १६। तुम कमल जैसे मुख वाली, कमलगदा, कमलाक्ष तथा कमल के समान हाथों वाली हो । अपने हाथ से तुमने कमल धारण किया हुआ है, यह लक्षण तुम्हारा लक्ष्मी होना सूचित करता है । १७। हे वरारोहे ! विद्याता ने क्या सम्पूण विश्व का रूप लावण्य तुम्हीं मेरे भर कर तुम्हें ही सब जीवों को मोहित करने वाली बना दियो है । १८। शुक के यह अद्भुत वचन सुनकर पद्ममालधारिणी पद्मा ने हँस-कर कहा १९। तुम कौन हो ? कहाँ से आगमन हुआ है ? तुम इस शुक देश मेरे देवता हो अथवा दानव ? तुम यहाँ आकर किसलिए ऐसी दया प्रदर्शित कर रहे हो । २०।

सर्वज्ञोऽह कामगामी सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।

देवगन्धर्वभूपानां सभासु परिपूजित । २१।

चरामि स्वेच्छाया खे त्वामीक्षणार्थमिहागतं ।

त्वामह हृदि सतसां त्यक्तभोग मनस्विनोम् । २२।

हास्यालाप-सखी-सङ्घ देहाभरण-वर्जिताम् ।

विलोक्याह दोनचेता पृच्छामि श्रोतुमोरितम् ।

कोकिलालाप-सन्ताप-जनक मधुर मृदु । २३।

तव दन्तौष्टजिह्वाप्रलुलिताक्षरपत्तय

यत्करणंकुहरे मरग्नास्तेषा कि वर्ण्यते तत । २४।

सौकुमार्य शिरोषस्य कव कान्तिवर्ति निशाकरे ।

पायूष कव वद-त्येवानन्द ब्रह्मणि ते बुवा, । २५।

शुक ने कहा—देवी ! मैं सब कुछ जानने वाला तथा सब शास्त्रों का तत्वज्ञानी हूँ । मैं स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र गमन करने मेरे समय हूँ । देवता, गधवं अथवा राजायों की सभा मेरे पूर्ण सम्मान होता है । २१। मैं गगन महन मेरे अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ । तुम हृदय

मे सन्तस तथा भोग सुख से परे एवं मनसिवनो के दर्शनार्थ ही यहाँ आ पहुँचा हूँ । २२। तुमने हास्यालाप, सखियोंका सग और आभरणाको त्याग रखा है । तुमको उस स्थिति में देखकर दीन-हृदय हुआ मैं तुम्हारी कोकिल जैसी मधुर वाणी मे तुम्हारे मन्त्र सहने कारण जानना चाहना हूँ । २३। तुम्हारे, ओष्ठ और जिह्वा के अग्र भाग मे निसृत अधर पक्षियाँ जिसके कानों को मुनाई पड़ जाय, उसकी तपस्था का प्रभाव कहाँ तक कहा जा सकता है ? । २४। तुम्हारे समक्ष गिरस के पुष्पों की कमनीयता भी क्या है ? तथा चन्द्रकान्ति भी क्या वस्तु है ? ज्ञानीजन जिस ब्रह्म रूपी पीपूष का वर्णन करते हैं, वह आनन्द भी तुम्हारी क्या समता करेगा ? । २५।

तिलकालक्समिश्र लोलकुण्डलमण्डितम् । २६।

लोलेक्षणोल्लसद्वक्नेत्र पश्यताम् न पुनर्भव । २७।

वृहद्रथसुते । स्वाधि वद भामिनि यत्कुने ।

तप क्षीणामिव तनू लक्षयामि रुज विना ।

कनकप्रतिमा यद्रत मासुभिर्मलिनीकृता । २८।

कि रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।

सर्वं निष्फलतामेति यस्यदैवमदक्षिणाम् ॥ २९॥

श्रुणु कीर समाख्यान यदि वा विदित तव ।

बाल्य-पौगण्ड-कंशोरे हरसेवा करोम्यहम् ॥ ३०॥

तुम्हारे तिलक, ग्रलक से युक्त चचल कुण्डलो से मणिङ्डत तथा चचल नेत्रों से सुशोभित सुन्दर मुख कर दर्शन करने वाले को पुनर्जन्म धारण नहीं करता होता । २६ २७। हे वृहद्रथसुते ! अपने मान-सिक दुख का कारण मुझे बताओ । हे भामिनि ! तुम्हारी देह बिना रोग के ही, तप से क्षीण दिखाई दे रही है । जैसे मैल के कारण कचन की प्रतिमा मैली हो जाती है, वैसे ही तुम्हारा देह भी मलीन होगया है । २८। पद्मा ने कहा—घन प्रथवा उच्च कुल मे उत्पन्न होने से ही

क्या प्रयोजन सिद्ध होना है, अर्थात् दैव की प्रतिकूलता हो तो यह सभी निषेध हैं । २६। हे कीर ! यदि तुम्हे हमारा वृत्ताभ्यन्तर न हो तो सुनो— मैंने अपनी बाल और किशोर अवस्था में भगवान शकर की आराधना की थी । ३०।

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वर ।  
 वर वरय पद्मे । त्वमित्याह प्रियया सह ॥३१॥  
 लज्जयेद्घोमुखीमग्रे स्थिता मा वीक्ष्य शङ्कर ।  
 प्राह ते भविता स्वामी हरिनरीयण प्रभु ॥३२॥  
 देवो वा दानवो वात्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् ।  
 कामेन मनसा नारी भविष्यन्ति न सशय ॥३३॥  
 इति दत्त्वा वर सोम प्राह विष्णवच्चन यथा ।  
 तथाह ते प्रवश्यामि समाहितमना श्रुणु । ३४।  
 एता सर्वयो नृपा पूर्वमाहृता ये स्वयम्बरे ।  
 पित्रा धर्मार्थिना दृष्ट्वा रम्या मा यौवनान्विताम् । ३५।

मेरे द्वारा किये गये उम पूजन से प्रसन्न हुए शिवजी ने पार्वतीजी के सहित प्रश्ट होकर मुझे कहा कि हे पद्मे । वर मांगो । ३१। किर मुझे लज्जा पूर्वक सिर झुकाये देख कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे पति भगवान् नारायण होगे । ३२। देवता, दानव, गन्धर्व अथवा जो कोई भी हो, यदि तुम्हे काम-भाव से देखेगा तो तुरन्त स्त्री-रूप हो जायगा, इसमें मन्देह नहीं है । ३३। यह वर देने के पश्चात् शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजन विधि बताई थी, वह कहती हूँ, समाहित चित्त से सुनो । ३४। यह जितनी भी सखियाँ हैं, सभी पहिले राजा थे । मेरे पिता ने मेरी यौवनावस्था देख कर वर्ष की रक्षा के निमित्त इन सब राजाओं को मेरे स्वयम्बर मेरु लाया था । ३५।

स्वागतास्ते सुखामीना विवाहकृतनिश्चय ।

युवानो गुणवन्तश्चरूपद्रविणासम्मता । ३६।

स्वयवरगता मा ते विलोक्य रुचिरप्रभास् ।  
 रत्नमालाश्रितकरा निपेतु काममोहिता ॥२७॥  
 तत उत्थाय सभ्रान्ता सप्रेक्ष्य स्त्रोत्वमात्मन ।  
 स्तनभार नतम्बेन गुहणा परिणामिता ॥३८॥  
 हिंया भिया च शत्रूणा मित्राणामतिदुखदम् ।  
 स्त्रीभाव मनसा ध्यात्वा मामेवाननगता शुक ।  
 पारिचर्य्या हररता सरूप सवगुणान्विता ।  
 मया सम तपोध्यानं पूजा, कुब्बर्णिति सम्मता ॥४०॥  
 तदुदितमिति सनिशम्य कीर श्रवणमूखं निजमानसप्रकाशम् ।  
 समुचितवचनैःप्रतोक्ष्य पदमा मुरहरयजनं पुनं प्रचट्टे ॥४१॥

यह सभी युवावस्था वाले, रूप, गुण एव ऐश्वर्य से सम्पन्न थे ।  
 यह सभी मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से आकर स्वयवर-स्थल में  
 मुख्यपूर्वक बैठ गये ॥३६॥ मुझ सुन्दर प्रभा वाली को हाथ मे रत्नमाला  
 लेकर स्वयवर-स्थल मे धून-ी देखकर यह सभी काम मोहित राजागण  
 पृथिवी पर गिर गये ॥३७॥ फिर जब सचेत होकर उठे तो अपने को  
 स्त्रीत्व के सभी लक्षणो से युक्त अर्थात् स्त्री रूप मे पाया ॥३८॥ तब ता  
 यह अपने को स्त्री हुआ जान कर बडे दुखी हुए और शत्रु मित्र आदि की  
 लज्जा छोड कर मेरे ही साथ चल पडे ॥३९॥ अब यह सर्वगुण सम्पन्न  
 नारी रूपी राजागण मेरी सखी होकर मेरे साथही भगवान् विष्णुका तप,  
 ध्यान एव पूजन करते है ॥४०॥ अपनी इच्छा के अनुकूल, सुनने मे सुख-  
 दायक इस वार्ता को सुन कर शुक ने समुचित वाणी से पद्मा को प्रसन्न  
 किया और फिर भगवान् विष्णु के पूजन के प्रसङ्ग मे प्रश्न किया ॥४१॥

## समाम अंदपाथ

विष्णवच्चन शिवेनोवत श्रोतुमिच्छाम्य ह शुभे ।  
 धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यत्वमागता ॥१॥  
 अह भाग्यवशादत्र समागम्य तवःन्तिकम् ।  
 शृणोमि परमाश्चर्य कोराकारनिवारणम् ॥२॥  
 भगवद्वक्तियोगच्च जपध्यानविधि मुदा ।  
 परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्ष श्रुतिप्रियम् ॥३॥  
 श्रीविष्णोरचन पुरुषशिवेन परिभाषितम् ।  
 यच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥  
 मद्य पापहर पुसा गुरुगोब्रह्मधातिनाम् ।  
 समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥५॥

शुक बोला—हे शुभे ! शिवजी ने भगवान् विष्णु की जो पूजा-विधि तुम्हें बताई थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। तुम धन्य हो, तुम अपने पुण्य कर्म द्वारा भगवान् शिव की शिष्या हो गई हो ।१। मैं भाग्य-वगात ही यहाँ आ पहुँचा हूँ। अब मैं अपने शुक-शारीर का निवारण करने वाली आश्रयमयी पूजन विधि का श्रवण करूँगा ।२। भगवान् विष्णु का जप-ध्यान एव पूजन की यह विधि भगवद्भक्ति के देने वाली, श्रवण में सुखद एव परमानन्ददायिनी है ।३। पद्मा ने कहा—शिव-वर्णित विष्णु के पूजन की विधि अत्यन्त पुण्यमयी है । इसके श्रद्धापूर्वक सुनने, अध्ययन करने या कहने से गोहत्या, गुरुहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी नष्ट हो जाते हैं । हे कीर ! इसका वर्णन शिवजी ने जिस प्रकार किया था, उसे समाहित चित्त से सुनो ।४-५।

कृत्वा यथोक्तकपर्मणि पूर्वाङ्गे स्नानकुच्छुचि ।  
 पूज्ञालय पारणो पादौ च स्पृष्टवाप स्वासने वसेत् ॥६॥  
 प्राचोमुख, सयतात्मा साङ्घन्यास प्रकल्पयेत् ।  
 भूतशुद्धि ततोऽधर्षस्य स्थापन विधिव चक्रेत् ॥७॥  
 तत्, केशवकृत्यादिन्यासेन तमयो भवेत् ।  
 आत्मान तन्मय ध्यात्वा हृदिस्थ स्वासने न्यसेत् ॥८॥  
 पाद्याधर्याचिमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणै ।  
 यथोपचारे, सपूज्य मूलमन्त्रेण देशिक ॥९॥  
 ध्यायेत्यादामदकेशान्त हृदयाम्बुजमध्यगम् ।  
 प्रसन्नवदनं देव भक्ताभोष्टकनप्रदम् ॥१०॥

प्रात कान स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर हाथ-पांत्रों का प्रश्नालन कर, जन स्पर्श करके अपने आसन पर बैठ जाय ॥६॥ फिर सयतात्मा होकर पूर्वभिमुख हो और प्रङ्गन्यास भूतशुद्धि तथा विधिवत् अधर्ष स्थापन करे ॥७॥ फिर केशव कृत्यादि न्यास युक्त होकर हृदय में विष्णु का ध्यान करता हुआ, उन्हे कलिपत आसन पर प्रनिष्ठित करे ॥८॥ फिर पाद्य, अर्ध, आचमनीय, स्नानार्थ जल, वस्त्राभूषण आदि भेट करे और यथोपचार देशिक मूलमन्त्र में पूजन करे ॥९॥ तदुपरान्त भवतों को इच्छित फलदायक, हृदयाम्बुज में रमण करने वाले, प्रसन्न मुख भगवान विष्णु का चरणकमलों में वेश पर्यन्त ध्यान करे ॥१०॥

योगेन सिद्धिविवृधे परिभाव्यमान लक्ष्म्यालय  
 तुलसिकाचिचत्वभक्तभृज्म् । प्रोत्तुज्जरक्तनखराङ्गु-  
 लिपत्रचित्र गङ्गारस हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥१॥  
 गुलफन्मणिग्रचयघ दृतराजहसिचत्सुद्रुरयुत  
 पद्मपद्मवृत्तम् । पीताम्बराङ्गव नविलाललवलत्पता-  
 क स्वरंत्रिवक्वलयच्च हरेः स्मरामि ॥२॥  
 जये सुपर्णोगलनील मणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुण-  
 मणिदुयतिचंचुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशो-

भभाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरे स्मरामि । १३

ते जानुनी मखपतेर्भजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृतत-  
डिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गंतसामगीन  
विस्तारितात्मप्रशसी च हरे स्मरामि । १४

विष्णो कटि विधिकृतान्तमनोजभूमि जीवाण्ड-  
कोषनणसङ्गदुकूलमध्याम् । मानागुणप्रकृतिपी-  
तविचित्रवस्त्राद्यायेन्निबद्धवसना खगपृष्ठस्थाम् । १५

ध्यान के पश्चात् ‘३५ नमो नारायणाय स्वाहा’ कहे और इस स्तोत्र का उच्चारण करे—योग के द्वारा सिद्ध हए ज्ञानीजन जिनके ध्यान में सा रत रहते हैं, जो लक्ष्मी के आश्रय हैं, जिनके भन्नगण भृङ्ग रुग्णी तुनसी का सदा सेवन करते हैं, जिनके लोहित वर्ण कमलो-पम नखयुक्त और गुलिपक्षो से गगाजल निकल रहा है, उन कमल जैसे चरणो वाले नारायण की शरण लेना हूँ । ११। जिनके चरणो में विभू-पित मणिमान युक्त नूपुर हस के कलरव जैसा शब्द करते हैं, जिन चरणो में पीताम्बर का छोर उड़ती हुई घ्वजा जैसा लगता है, जिन चरणो में स्वर्णिम त्रिवक्र नामक कडा शोभित है, उन कमल के समान चरणाम्बुजो का मैं स्मरण करता हूँ । १२। गरुड के कण्ठ भूषण अप नीलकान्त मणि की प्रभा से समुज्ज्वल जिन जघाओ के मध्य में गरुड की अरुण-मणि के समान लाल चोच सुशोभित है, जिन जघाओ के नीचे लाल पादतन रथि हैं, उन विश्व-लोचन के परमानन्द रूप भगवान् की जघाओ का मैं स्मरण करता हूँ । १३। सामगान के द्वारा गरुड जिनका यशोगान करते हैं उत्सव के अवसर पर चित्र विचित्र रगो से युक्त वस्त्रों की विद्युत आभा से विभूषित भगवान् की उन जघाओ का स्मरण करता हूँ । १४। ब्रह्मा, काल और कन्दर्प की आश्रयभूता जो कटि है तथा जो कटि दुकूल से सुशोभित रहती है, गरुड की पीठ पर रथित विष्णु की उस कटि का मैं ध्यान करता हूँ । १५।

शातोदरं भगवत्खिवलिप्रकाशभावत्तेनाभि-  
 विकनद्विधिजन्मपदनम् । नाडीनदीगणरसोत्थ-  
 सितन्त्रसिन्धु ध्यायेऽण्डकोषनिलय तनुलोमरेखम् । १६  
 वक्षः पयोधितनयाकुङ्कमेन धारेण कौस्तु-  
 भभणिप्रभयां विभातम् । श्रीवत्सलक्ष्म हरि च-  
 न्दनजप्रसूममालोचित भगवतः सुभग स्मरामि । १७

जो उदर त्रिवाली से सुशोभित हैं, जिस उदर के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिस उदर मे नाडी रूपी सरिताश्रो के रथ से अन्त्र रूप समुद्र तरगित हो रहा है, ब्रह्माएङ्ड के आश्रय रूप जिस उदर मे लोभ रेखाएँ सुशोभित हैं, भगवान् के उस उदर का मैं स्मरण करता हूँ । १६। जिस हृदय मे समुद्रजा लक्ष्मी के वक्षस्थल की केसर लगी हुई है, जो हृदय कठहार और कौस्तुभ मणि से दमक रहा है, जो हृदय श्रीवत्स के चिह्न से युक्त है और जिस पर हरिचन्दन फूलो की माला विभूषित है उस प्रभु-हृदय का मैं स्मरण करता हूँ । १७।

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुर्गित  
 दैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासु-  
 नाभतेजोजितौ सुलितितौ मनसा स्मरामि । १८  
 वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपदनशखौ श्यामौ करीन्द्रकर  
 वन्मणिभूषणादयौ । रक्ताङ्गलिपृचयचुम्बिमजानु  
 मध्यौ पदनालयापियकरौ रुचिरौ स्मरामि । १९  
 करेठ मृणालमर्लं मुखपङ्कजस्य लेखाब्रयेणावन  
 मालिकाया निवतम् । किवा मुक्तिवसमन्त्रकस  
 तफनस्य वृन्ते चिरं भगवत् सुभग स्मरामि । २०

जिन श्रेष्ठ भुजाश्रो मे वलय अ गड आदि सुदर आभूषण सुशोभित हैं, जो भुजाएँ असख्य दानवो का संहार कर चुकी हैं, जिन भुजाश्रो की प्रभा के समक्ष गदा और चक्र आदि अस्त्रो का तेज भी नगरण है, मैं

उन्हीं भुजाप्रो का मन मे स्मरण करता हूँ ।१६। हाथी की सूड जैसी जिन भुजाप्रो मे मणिमय आभूषण और शाल पद्म आदि विभूषित हैं, जिन भुजाप्रो की लाल वर्ण वाली अगुलियाँ; जानु स्पर्श कर रही हैं, उन कमलासना पद्मा को प्रसन्न करने वाली भुजाप्रो का मैं स्मरण करता हूँ ।१६। मृणाल के समान जिस कठ मे मुखारविन्द की तीन रेखाये और वनमाला। सुशोभित है तथा जो कठ मोक्ष-मत्र के शुभफल का गुच्छा-स्वरूप है, उस श्रीहरि-कठ का मैं स्मरण करता हूँ ।२०।

रक्तम्बुज दशनहासविकाशरम्य रक्ताघरौष्ठधर  
कोमलवाक्सुधाद्यम् । सनमानसीदभवचलेक्षणपत्रवित्रं

लोकाभिराममलञ्च हरे. स्मरामि ।२१  
शूरात्मजावसथगन्धविदसुनाश भ्रूपल्लव स्थितिल-  
यादयकर्मदक्षम् । कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रका-  
श सञ्चिन्तयामि हरिवक्तविलासदक्षम् ।२२  
कण्ठै लसनमकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाञ्च  
नभसश्व विकासगेहौ । लोलालकप्रचयचुम्बनकु-  
ञ्चिताग्रौ लग्नो हरेमर्णिकीरीतटे स्मरामि ।२३  
भाल विवितिलक प्रियचारुगन्धगग्नेरोचनारचनया  
ललनाक्षिसख्यम् । ब्रह्मैकधाममणिकान्तकिरीट  
जुष्ट ध्यायेन्मनोनयनहारकमोश्वरस्य ।२४।

लाल कमल के समान लाल अधरो के मध्य मुसकराते हुए दीर्त,  
शोभामय कोमल वचन, मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाले चचल नैत्र,  
जिस मुखमडल मे सुशोभित हैं, प्रभु के उस मुखारविन्द का मैं स्मरण  
करता हूँ ।२१। जिन भृकुटि पत्रों की कृपा से यम सदन की गध भी नहीं  
आती जिनके समीप ही नासिका सुशोभित रहती है, जिनके संकेतमे सृष्टि,  
स्थिति एव प्रलय निहित है, जो मदनोत्सव को प्रकट करने वाले एवं

लक्ष्मीजी के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले हैं, हरि के उन भूकुटि-पत्रों का मैं स्मरण करता हूँ । २२। जिनमें मकराकार कुरुड़ल शोभा पाते हुए दिशाओं और आकाशको प्रक्षाशित करते हैं, जो अग्रभाग में चचल अलको के स्पर्श से कुछ सकुचित हुए प्रतीन होते हैं, जो मणिमय किरीट के तीर पर स्थित हैं, भगवान के उन कानों का मैं स्मरण करता हूँ । २३। जिस ललाट में सुगवित अद्भुत गोरोचन तिलक नेत्रों में मैत्री भाव प्रकट करता है, जो ललाट रूपी ब्रह्मावाम मणिमय मुकुट से दीसिमान् है, उस नेत्रों को आनन्द देने वाले हरि के ललाट का मैं स्मरण करता हूँ । २४।

श्रीवासुदेवचिकुर कुटिल निबद्धम् नानासुगन्धिकुसुमैः

स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमने धुनतं

ध्यायेऽम्बुवाहरुचिर हृदयाब्जमध्ये । २५

मेघाकार सोमसूर्यप्रकाश सुभ्रून्नस चक्रचापैक  
मानम । लोकातीत पुण्डरीकायताक्ष विद्युच्चैल-  
च्चाश्रेयेऽहं त्वपूर्वम् । २६।

दीनं हीन सेवया वेदवत्त्या पास्तपैः पूरित मे  
शरीरम् । लोभाकान्त शोकमोहाधिविद्ध कृपा  
टृष्ण्या पाहि मा वासुदेव । २७

जिन कुटिल केशों में सुगवित पुष्प गूँथ कर स्वजनों ने वेणी बनाई तथा जिन चचल केशों के दर्शन से लक्ष्मीजी का मन शान्त होना है, उन नील मेघ जैसे दीर्घ एव मनोहर केशों का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ । २५। मेघवर्ण वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, हन्द्र-धनुष के समान भाँह वाले, विद्युन जैसे समुज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, लोकातीत, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु की मैं शरण लेता हूँ । २६। मैं अत्यन्त दीन, वेदोक्त सेवा से हीन और पाप-ताप युक्त देह वाला हूँ । मैं लोभ, शोक, मोह और मानसिक व्यथा से व्यथित हूँ । हे वासुदेव ! अपनी कृपा हृष्ट द्वारा मेरी रक्षा कीजिये । २७।

ये भक्त्याद्या ध्यायमाना मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णुः;

षोडशश्लीकपुष्पे: । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः  
 शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ।२८।  
 पद्मोरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।  
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गं स्वस्त्यनं दरम् ।२९।  
 पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेऽहसोऽखिलात्  
 धर्मर्थिंकाममोक्षाणां परत्रेहं फलप्रदम् ।३०।

इस विधि को जानकर जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् विष्णु के इस रूप का ध्यान करके षोडश श्लोक रूपी पुष्पों से स्तुति और नमन करके पूजा करते हैं, वह शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं ।२८। शिवोक्त यह स्तोत्र, जिसे पद्मा ने कहा है, अत्यन्त पुण्यमय है तथा धन, यश, आयुष्य, स्वर्ग एवं मगल का देने वाला है ।२९। यह स्तोत्र इहलोक और परलोक में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पदार्थों का दाता है । इसका पाठ करने वाले महाभाग पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

द्वितीयांश—

## प्रथम अध्याय

इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीर सता मतः  
कल्किदूतं सखीमध्ये स्थिता पद्मामथाब्रवीत् । १।  
वद पद्मे साङ्गपूजा हरेरदभुतकर्मणः ।  
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् । २।  
एव पादादि केशान्तरं ध्यात्वा त जगदीश्वरम् ।  
पूर्णांतिमा देशिको मूल मन्त्रं जपति मन्त्रवित् । ३।  
जपादनन्तरं दण्ड-प्रणति मतिमाश्चरेत् ।  
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्वा विष्णुनिवेदितम् । ४।  
तत उद्वास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।  
नृत्यन्गायहरेर्ताम त पश्यन्सर्वतं स्थितम् । ५।

सूत जी बोले—पद्मा के वचन सुन कर सत्य मत वाले धीर एव कल्कि-दूत शुक ने सखियों के मध्य बैठी हुई पद्मा से कहा । १। हे पद्मे । अद्भुत कर्म वाले भगवान् विष्णु की पूजा का सागोपाग वर्णन करो । क्योंकि मैं उसका विधिवत् अनुष्ठान करके तीनों लोकों में विचरण कहँगा । २। पद्मा बोली—इस प्रकार चरणों से केश पर्यन्त भगवान् विष्णु का ध्यान करके मन्त्र के ज्ञाता को मूल मन्त्र का जप करना चाहिए । ३। जप के पश्चात् भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करे । फिर विष्वक्सेन आदि को पाद्य, अर्ध्यं नैवेद्य आदि समर्पित करके भगवान् को निवेदन किये गये वस्त्र को धारण कर विष्णु का स्मरण करता हुआ नृत्य-गान और हरिनाम का कीर्तन करे । ४-५।

तत् शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।  
 इत्येतत्कथितं कीर ! कमलानाथसेवनम् ।६।  
 सकामता कामपूरणाकामामृतदायकम् ।  
 श्रोत्रानन्दकर देव-गन्धवर्व-नर-हृतिरयम् ।७।  
 ममीरितं श्रुतसाधिव भगवद्भक्तिलक्षणम् ।  
 त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिम् ।८।  
 किन्तु त्वा काञ्चनमयी प्रतिमा रत्नभूषिताम् ।  
 सजीवामिव पश्यामि दुर्लभा रूपिणी श्रियम् ।९।  
 नान्या पश्यामि सदृशी रूपशीलगुणैस्तव ।  
 नान्यो योग्यो गुणी भर्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ।१०।

फिर भगवान् का निर्मलिय क्षेष मस्तक पर धारण करे और नैवेद्य ग्रहण करे । हे शुक ! कमलानाथ की सेवा का यह विधान मैंने तुमसे कह दिया ।६। इस प्रकार की पूजा से कामना वालों की कामना पूर्ण होती और कामना न करने वाले को मोक्ष मिलता है । यह कथा देवता, गन्धवर्व और मनुष्य सभी के श्रोत्रों को आनन्द देने वाली है ।७। शुक बोला—हे साध्वी ! तुमने मुझ परिष्ठ तोते को भी मोक्ष देने वाली हरिभक्ति की विवि कही है, उमे तुम्हारी कृपा से मैंने भली प्रकार सुना है ।८। परन्तु मैं तुम्हे रत्नालकारों से विभूषिता, स्वर्णमयी प्रतिमा के समान तीनों लोकों मे दुर्लभ साक्षात् लक्ष्मी रूप से देख रहा हूँ ।९। ससार मे तुम्हारे समान रूप शील और गुणमयी अन्य नारी, मुझे दिखाई नहीं देती तथा तुम्हारे योग्य कोई अन्य गुणवान् भर्ता भी मुझे लोक मे दिखाई नहीं देता ।१०।

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्यंरूपवान् ।  
 गुणवानीश्वर साक्षात्कश्चिह्नेऽतिमानुष ।११।  
 न हि धातृकृत मन्ये शरीर सर्वं सौभगम् ।  
 यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तर ध्यानयोगतः ।१२।

त्वया ध्यात तु यद्रूप विष्णोरमित्तेजसः ।  
 तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् । १३।  
 ब्रूहि तन्मम कि कुञ्च जातः कीर परावरम् ।  
 जानासि तत्कृतं कर्म विस्तरेणात्रवर्ण्य । १४।  
 वृक्षादागच्छ पूजा ते करोमि विषिवोधिताम् ।  
 बोजपूरफलाहार कुरु साधु पयः पिब । १५।

किन्तु, समुद्र के उस पार एक परम आश्चर्यमय रूप वाला, गुणी, अलोकिक एव साक्षात् ईश्वर स्वरूप मनुष्य मुझे दिखाई दिया है । ११। उसका सर्व सौन्दर्यमय देह ब्रह्मा द्वारा रचित प्रतीत नहीं होता । ध्यान-योग से देखे तो उसमे और भगवान् वासुदेव मे कुछ भी अन्तर नहीं मिलेगा । १२। हे पश्च ! तुम भगवान् विष्णु के जिस अमित तेजमय स्वरूप का ध्यान करती हो, उस रूप मे और उस मनुष्य के रूप मे कोई अन्तर दिखाई नहीं देता । १३। पश्चा ने कहा—हे शुक ! तुमने अभी क्या कहा है ? उस बात को पुनः कहो । उन्होने अवतार लिया है ? यदि तुम उनका पूर्ण वृतान्त जानते हो तो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ । १४। तुम वृक्ष से उतर आओ, मैं विषिवत् तुम्हारा सत्कार करूँगी । तुम बीजपूर फलो का भक्षण और दुर्घट का पान करो । १५।

तव चचुयुग पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।  
 रत्नसघट्टितमह करोमि मनसः प्रियम् । १६।  
 कन्धर सूर्यकान्तेन मणिना स्वर्णवट्टिना ।  
 करोम्याच्छादनं चारु-मुक्ताभिः पक्षति वव । १७।  
 पतञ्च कुंकुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् ।  
 क्ररोमि नयनानन्ददायक रूपमीदृशम् । १८।  
 पुच्छमच्छमणिक्रात्-घघंरेणातिशब्दितम् ।  
 पादयोन्मुरुरालाष्णापिनं त्वा करोम्यहम् । १९।  
 तवामृतकश्चव्रातत्यक्त्वा शशिस्त्रामिह ।

सखीभि सगीताभिस्ते कि करिष्यामि तद्वद् ।२०।

मैं तुम्हारी चोच को पद्मरागमणि और रत्नो से मड़ित करा कर उन्हे मनोमोहक अरुण वर्ण की और दीमिसयी कराहूँगी ।१६। तुम्हारे कठ मे सूर्यकान्त मणि जटित स्वर्ण पट्टिका बाँध कर दोनो पखो को मोतियो से सजाऊँगी ।१७। तुम्हारे पख और शरीर को कुंकुम से चवित करके ऐसा सुशांमित करूँगी कि सब तुम्हे देखते ही अत्यन्त आनन्दित हो जाय ।१८। तुम्हारी पूँछ को स्वच्छ मणि से गूँथ ढूँगी, जिससे तुम्हारे चलने पर सुन्दर धर्घर शब्द सुनाई देगा । तुम्हारे पाँवो मे तुपुर बाँध ढूँगी, जिनसे सुमधुर ध्वनि निकलेगी ।१९। तुम्हारा कथामृत सुनकर ही मेरे मन की व्यथा मिट गई । मुझे बताओ कि मुझे क्या करना है ? सखियों के सहित मैं तुम्हारी परिचर्या करूँगी ।२०।

इति पदमावच. श्रूत्वा तदन्तिकमुपागत ।

कीरो धार. प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ।२१।

ब्रह्मणा प्रार्थित, श्रीशो महाकार्हणिको वभौ ।

शभले विष्णुयशसो गृहे धमं-रिर्क्षिषुः ।२२।

चतुर्भिभ्रातृभिज्ञाति-गात्रजे, परिवारितः ।

कृतोपनयनो वेदमवीत्य रामसन्निधौ ।२३।

घनुर्वेदञ्च गान्धवं शिवादश्वमर्मि शुकम्

कवचञ्च वर लघ्दा शम्भल पुनरागतः ।२४।

विशाख्यूपभूपाल प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।

घर्मानारुयाय मतिमान् अधर्मश्च निराकरोत् ।२५।

पद्मा के वचन सुन कर हार्षित हुआ शुक पद्मा के पास जा पहुँचा और श्रेष्ठ प्रसग करने लगा ।२१। शुक बोला—भगवान् लक्ष्मीपति ने धर्म स्थापन-हेतु ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर शम्भल ग्राम निवासी विष्णुयश के यहाँ अवतार लिया है ।२२। वे चार भाई अपने योग एक परिवार बालों के साथ स्थित हैं, उपनयन सक्षात् होने

के बाद उन्होने परशुरामजी से वेद की शिक्षा प्राप्त की । २३। फिर उन्होने घनुर्वेद और गाधर्व वेद की शिक्षा ली और शिवजी से अश्व, असि, शुक, कवच और वरदान पाकर शम्भल शाम मे अपने घर लौटे । २४। फिर उन कलिक भगवान् से विशाख्यु राजा ने भेट की, तब उन्होने अपने धर्माल्यान द्वारा राजा की अधर्मयुक्त शकाश्रो का तिराकरण किया । २५।

इति पद्मा तदाख्यान निशम्य मुदितानना ।  
 प्रस्थापयामास शुक कलकेरानयनाद्वता । २६।  
 भूषयित्वा स्वर्णंरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलि । २७।  
 निवेदित तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।  
 स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभु । २८।  
 तथापि मे कर्मदोषात् प्रणति कथयिष्यसि ।  
 शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवति॑ल । २९।  
 पुंसा मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कमतः शुक ।  
 श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः । ३०।

इस प्रसग को सुन कर पद्मा बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कलिक भगवान् को आदरपूर्वक वहाँ लिवा लाने उद्देश्य से शुक को भेजा । २६। पद्मा ने शुक को स्वर्ण एवं रत्नों से सुसज्जित किया और हाथ जोड़ कर कहने लगी । २७। पद्मा बोनी—मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हू, उसे तुम भले प्रकार जानते हो, तो फिर अधिक क्या कहूँ ? मैं स्त्री स्वभाव-वश भयभीत हो रही हूँ । यदि प्रभु यहाँ न आवे तो तुम मेरी ओर से प्रणाम करके मेरे कर्म-दोष के विषय मे उन्हें बताना और कहना कि मुझे शिवजी से जो वर प्राप्त हुआ है वह इस मर्यो-शाप के समान हो रहा है । शिवजी के वरदान के अनुसार जो पूरुष मेरी ओरै काम-भाव से देखता है, वही नारी हो जाता है । पद्मा की यहें बात सुन कर शुक ने उसे बारम्बार प्रणाम किया । २८-३०।

उड्डीयं प्रथयौ कीरः शम्भल कलिकपालितम् ।

तमागम समाकर्ण्य कलिक, परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥

क्रोडे कृत्वा तददर्शं स्वरंगंरतनविभूषितम् ।

सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तदा ॥ ३२ ॥

कलिकः परमतेजस्वीं परस्मिन्नमलं शुकम् ।

पूजयित्वा करे स्पृष्टवा पयःपापेन तर्पयन् ॥ ३३ ॥

तन्मुखे स्वभुख दत्वां प्रच्छ विविधां कथाः ।

कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्ट्वापूर्वं किमागतः ॥ ३४ ॥

कुत्रोषितं कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् ।

अहर्निशं त्वन्मिलनं वाचिष्ठं तम सवतः ॥ ३५ ॥

फिर वह शुक उड़ कर कलिकजी द्वारा रक्षित शम्भन ग्राम मेरा गया शत्रुपुर-विजेता कलिकजी ने उसे आया देख कर शुक को गोद मेरे लेकर उसे स्वर्ण रत्नों से मणित देखा। तो अत्यन्त हर्षित होते हुए बोले । ३१-३२। अत्यन्त तेजस्वी कलिकजी ने शुक का सत्कार करते हुए उसे दुर्घट-पान कराया और उससे सब प्रसग पूछा—हे शुक! तुम इस समय किस देश से आरहे हो? वहाँ तुमने कौन-सी अद्भुत वस्तु देखी है? । ३३ ३४। तुम कहाँ थे? किसके द्वारा मणियो और स्वर्ण से विभूषित किये गये? रात दिन मैं तुमसे मिनते के लिए उत्सुक रहा हूँ । ३५।

तवानालोकनेनापि क्षणे मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥

इति कलकेवचः श्रुत्वा पुणिरत्वं शुको भृशम् ।

कथयामास पद्माया, कथा पूर्वोदिता यथा । ३७।

सवादमात्मनस्त्वया तिजालङ्कार धारणम् ।

सर्वं तद्वर्णं ग्रामास तस्याः प्रणातिपूर्वं कम् ॥ ३८ ॥

श्रुत्वेति वचन कलिक; शुकेन सहितो मुदा ।

जगाम् त्वरितोऽस्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥

हे शुक! मैं जब तुम्हे नहीं देखता, तब मेरा एक क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है । ३६। कलिक की यह बात सुनकर शुक ने हेतु बारम्बार प्रणाम कर पद्मा की पूर्व कथित कथा को कह

मुनाया । ३७। फिर पद्मा के साथ जो सवाद हुआ वह तथा स्वर्ण-  
मणियों की उपलब्धि ग्रादि सब वृत्तान्त विनष्ट होकर शुक ने उन्हें  
मुनादिया । ३८। व लिंगजी ने जैसे ही यह वृत्तान्त सुना, वैसे ही प्रसन्न  
हीते हुए वे शिवदत्त अरुच पर चढ़ कर शुक के साथ चल दिये । ३९।

समुद्रपारममल सिंहल जलसकुलम् ।

नानाविमानवहूल भास्वर मणिकाञ्चनै ॥ ४० ॥

प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम् ।

श्रेणीसभापणाद्वाल-पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥

पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम् ।

पुरी कारुमती तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥

मराल-जाल-सञ्चाल-विलोल-कमलान्तराम् ।

उन्मीलताब्जमालालिकलिताकुलित सर ॥ ४३ ॥

जलकुक्कुटदात्यूह-नादित हससारर्णः ।

ददर्श स्वच्छपथसा लहरीलोलवीजितम् । ४४ ॥

चलते-चलते समुद्र पार पहुंच कर उन्होने स्वच्छ जल से घिरे  
हुए, विभिन्न विमानों से युक्त, मणियों और स्वर्ण से दमकते हुए,  
श्रद्धालिकाओं और भवनों के समक्ष पताकाओं और तोरणों से सजे हुए  
सभामण्डप वाले, दुकानों और गोपुरादि से समन्वित, पद्मिनी नारियों के  
पद्मगध से हरित मँडराते हुए अमर समूह से युक्त कारुमती सिंहल पुरी  
को देखा । ४०-४२। जहाँ जलाशयों में हस-समूह किलोल कर रहे हैं,  
कमलों पर भ्रमर गुंजार रहे हैं, जलकुक्कुट, दात्यूह, हस, सारस ग्रादि  
कलरव कर रहे हैं तथा जल की लोल लहरी के साथ इठलाती वायु  
प्रवाहित है । ४३-४४।

वन कदम्बकुद्दाल-शालताला ग्रकेसरै ।

कपितथाश्वत्थखजूरबीजपुरकरंजकै ॥ ४५ ॥

पुन्लागपूलसैमूर्गरज्जुरज्जनशक्षपै ।

कमुकेनरिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् ।

वन ददर्श हृचिर फलपुष्पलावृतम् ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा हृष्टदृत् शुक सकरण. कलिक पुरान्ते वने

प्राह प्रीतिकर वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृत् ।

तछुत्वा विनयान्वित. प्रभुमताया मोति पद्माश्रम

तत्सन्देशमिह प्रथाणमधुता गत्वा स कोरोऽवदत् ॥ ४७ ॥

वन कदम्ब, कुदाल, शाल, ताल, आम, केसर, केष, अश्वत्थ,  
खूर, बीजपूर, करज, पुन्नाग, पनस, नारगी, अर्जुन, शिशपा, क्रमुक,  
नारियल आदि विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित और फल, पुष्प,  
पत्रादि से परिपूर्ण उस स्थान को कलिकजी ने देखा । ४५-४६। यह सब  
देखते हुए पुरी के सभी पस्थ वन में पहुच कर पुलकित देह हुए कलिकजी  
ने आदर सहित शुक से कहा—‘इस सरोवर में स्नान करने की इच्छा  
है’। यह सुनकर शुक ने विनय पूर्वक कहा—अच्छा, अब मैं भी पद्मा के  
निवास स्थान पर जाता हूँ। यह कह कर शुक पद्मा के पास गया और  
उससे कलिक भगवान् के आगमन का प्रसंग कह दिया । ४७।

## द्वितीय अध्याय

कलिक सरोवराम्यासे जलाहरणवर्त्मनि ।  
 स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ॥१॥  
 सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते ।  
 कदम्बपालपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ॥२॥  
 समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः ।  
 कलिकः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रममुदा ॥३॥  
 स नागेश्वरमध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम् ।  
 हर्म्यस्थां विमिनोपत्रशायिनी सखीभिवृताम् त ॥४॥  
 निश्वासवाततापेन म्लायती वदनाम्बुजम् ।  
 उत्क्षपन्ती सखीदत्तकमलचन्दनोक्षिनम् ॥५॥

सूतजी बोले—कलिकजी ने अश्व से उत्तर कर सरोवर के समीप वाले जल लाने के मार्ग में प्रवालों से युक्त, कमल की सुगंध से व्यथित, भ्रमर समूह द्वारा निनादित, उज्ज्वल स्फटिक मणि निर्मित सोगान पर स्थित एव कदम्ब के वृक्षों की नवीन पत्तियों से स्पर्श करती हुई सूर्य किरणों से आच्छादित चबूतरे पर बैठ कर उन्होंने शुक को पद्मा के निवास स्थान पर भेजा ॥१-३॥ वहाँ पहुँच कर वह शुक नाग-केशर के वृक्ष पर जा बैठा और उसने ग्रटारी के ऊपर पत्तों की शय्या बनाकर शयन करने वाली पद्मा को सखियों के सहित है खा ॥४॥ उस समय उषण वायु के ताप से मलीन मुख हुई पद्मा सखी द्वारा प्रदत्त

चदन चर्चित कमल-पत्र क हिलान्ती हुई हवा कर रही थी । ५।

रेवावारिपरिस्नात परगास्ये समागतम् ।

धृतनीर रसगत निन्दन्ती पवनप्रियम् ॥६॥

शुकं सकरुण साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।

सा, त्वमेहो हि तेस्वस्ति स्वागत? स्वस्ति मे शुभे! । ७।

गते त्वव्यतिव्यग्राह शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।

रसायन दुर्लभ मे, सुलभ ते शिवाश्रमे । ८।

कत्र मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।

देविं तं सरमस्तरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् । ९।

परागमय जलगर्भ से सरस हुआ प्रिय पवन उस समय पद्मा  
के द्वारा निन्दा को प्राप्त हो रहा था । ६। तभी शुक ने करुणामय सुन्दर  
वचन कह कर पद्मा को आश्वासन दिया । जिसे सुन कर पद्मा  
बोली—तुम्हारा स्वागत है । यहाँ आओ, तुम्हारा मगल हो । शुक  
बोला—हे शुभे ! मेरा सबे प्रकार से मगल ही है । ७। पद्मा बोली—  
हे शुक ! तुम्हारे जाने से मैं अत्यन्त व्यग्र रही हूँ । शुक ने कहा—  
तुम्हारे सब दुख ताप रसायन के द्वारा शान्त हो जायगे ।  
पद्मा ने कहा—मेरे लिए तो रसायन भी दुर्लभ है । शुक ने कहा— हे  
शिवजी की शिष्ये ! रसायन तुम्हारे लिए सुलभ ही है । ८। पद्मा  
बोली—मुझ भाग्यविहीना की कामना किस प्रकार और कहाँ पूर्ण होगी ?  
शुक बोला—हे वरवर्णिनि । तुम्हारी अभिलाषा यही पूर्ण होगी । मैं उन्हे  
सरोवर के टट पर विराजमान करके तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ । ९।

एवमन्योन्यसम्बाद-मुदितात्मनोरथे ।

मुख मुखेन नयन नयने साढ़ता ददौ । १०।

विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला ।

विलासिनी चारुमनी कुमुदेत्यष्ट नायिका: । ११।

सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रोडार्थमुद्यता: ।

पद्मा प्रह, सरस्तीरमायान्तु सा मया स्त्रियः । १२।

इत्याख्यायासु शिविकामारुह्यं परिवारिता ।  
 मखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्नपुराद्विहि ।  
 प्रययौ त्वरित द्रष्टृ भैष्मी यदुपनि यथा ।१३।  
 जना पुमास पश्य ये पुरस्था प्रदु ब्रु स्त्रीत्व-  
 भयाद्विग्न्तरम् । शृङ्गाटके वा विपणि स्थिता  
 ये निजाङ्गगास्थापितपुण्यकार्या ।१४।  
 निवारिता ता शिविकां वहन्त्यः नार्योऽतिमत्ता  
 वलवत्तराश्च । पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्युपस्था  
 जगाम ताभि परिवारिताभि ।१५।

इस प्रकार परस्पर सम्बाद हीने पर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई वह उसके मुख के समक्ष मुख, नेत्र के समक्ष नेत्र करके उसे आनन्द पूर्वक देखने लगी ।१०। उसकी ग्राठ नायिका सखियाँ हैं—विमला, मालिनी, लोला, कगला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती और कमुदा । उन सखियों सहित जल-क्रीडा के लिए नतपर होकर पद्मा उनसे बोली कि यह सखियाँ मेरे साथ सरोवर क टट पर चले ।११-१२। यह कह कर पद्मा पालकी पर आरूढ होकर सखियों सहित अत्त पुर से चल पड़ी । कृष्ण के दर्शनार्थ जाती हुई रुक्मिणी के समान ही कलिक भगवान् के दर्शन के लिए पद्मा ने भी शीघ्रता पूर्वक प्रस्थान किया ।१३। पद्मा जिस मार्ग से जा रही थी, उस मार्ग से स्थित पुरुष उसे देखते ही कही ल्ली त बन जाय इप आशका से इधर-उधर भाग गये । उन भागने वालों को पत्नियाँ उनके निरापद रहने के लिए पुराय कर्मों का अनुष्ठान करने लगी ।१४। इस प्रकार मार्ग को पुरुषों से रहित देख कर शक्ति-मती स्त्रियाँ पालकी को स्वच्छन्दता से वहन करने लगी - शुक के कथनामुझार पालकी पर चढ़ी हुई पद्मा को धेर कर उसकी सखियाँ भी साथ चल रही थी ।१५।

सरोजल सारसलुसनादिटप्रफुल्लपद्मोऽवरेणुवासितम् ।  
 चेहर्विगाह्याशु सुधाकरालसा कुमुद्वतीनामुदयाशोभन्नः ।१६।

तासा मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि  
 मुखारविन्दे । लग्ना सुगन्धाधिकमाकलय्य  
 निवारिताइचापि न तत्यजुस्ते । १७।  
 हासोपहासः सरसप्रकार्श्वर्विश्व नृत्यश्व जले  
 विहारै । करग्रहेष्टा जलयोधनात्तरिश्वकर्ष  
 ताभिर्वनिताभिरुच्चै १८।  
 सा कामातसा मनसा शुकोर्क्ति विविच्य पद्मा  
 सखिभि, समेता । जनातसमुत्याय महार्हभूषा  
 जगाम निर्दिष्टकदम्बवण्डम् । १९।  
 सुखे शयान मणिवेदिकागतं कल्पि पुरस्तादतिसु-  
 यंवच्चर्चंसम् । महामणिव्रातविभूषणाचित शुकेन सःद्वा  
 तमुदेक्षतेशम् २०।

फिर सारम्, हस आदि के मधुर निनाद और पद्म-रेणु से  
 सुरंगित सरोवर के जल में स्नान करके वह चन्द्रवदनी छियाँ कुमुदनी  
 युक्त चन्द्रमा की आशा में विचरण करने लगी । उनके देह की कमल-  
 गध से मत्त हुए भ्रमर उनके मुखों पर गु जा रने लगे । छियों द्वारा  
 उड़ाये जाने पर भी वे भ्रमर उन पद्मगधाओं के मुखों से हटते ही  
 नहीं थे । १६-१७। रसमय हास-परिहास, वाच्य, नृत्य तथा परस्पर हाथ  
 पकड़े हुए विविध प्रकार का जलविहार करती हुई पद्मा ने सखियों के  
 मन को और सखियों ने पद्मा के मन को हर लिया । १८। फिर सकाम  
 भाव वाली पद्मा शुक के वचनों का स्मरण करके सखियों सहित जल से  
 बाहर निकली और वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर उस बताषे हुए  
 महान् कदम्ब के वृक्ष के नीचे गई । १९। वहाँ उसने मणिमय चबू-  
 तरे पर महामणियों से विभूषित, सूर्य के तेज से भी अधिक तेजोमय  
 कलिकजी को शुक के सहित सुखपूर्वक शयन करते देखा । २०।

तमालनील कमलापति प्रमु पीताम्बर चारुसरोजलोचनम् ।  
 आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षस श्रीवत्सस्तकौस्तुभकान्तिराजितम्

तदद्भुतरूपमवेक्ष्य पद्मा सस्तम्भताविस्मृतसत्क्याथि  
सुप्त तु खबोधयितु प्रवृत्त निवारयामाविशङ्कितात्मा । २२  
कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपति  
साक्षात् । तदात्र फि मे भविता भवस्य वरेण शापप्रति-  
मेन लोके । २३।

चराचरात्मा जगतामधीश प्रबोधितस्तदधृदय विविच्य ।  
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभा यथा रमा श्रामधुसूदनाग्रे । २४।  
सवीक्ष्य मायामिव मोहिनी ता जगाद कामाकुलित् स  
कलिकः । सखीभिरीशा समुपागता ता कटाक्षविक्षेपत्रि-  
नामितास्यम् । २५।

उसने देखा कि तमाल जैव नीलबर्ण वाले, पीताम्बरधारी,  
कमल जैसे नेत्र वाले, लम्बी भुजाओ, विशाल वक्ष और श्रीवत्स से  
चिह्नित हृदय वाले, कौस्तुभ मणि की कान्ति से प्रश्नाशित भगवान् कलिक  
विराजमान है । २१। उस अद्भुत रूप को देखकर पद्मा ऐसो स्तम्भित  
हुई कि उनका सत्कार भी करना भूल गई और उसने शका के कारण  
उहे जगाना उचित नहीं समझा । २२। उसने सोचा कि कहीं यह महा-  
वली अत्यन्त रूपवान् पुरुष मुझे देखकर स्त्री न बन जाय ? यदि ऐसा  
हो गया तो शिवजी का वरदान यहाँ भी अभिशाप हो जायगा । २३।  
फिर पद्मा के आन्तरिक प्रभिप्राय का जान कर चराचर के  
एव विश्वेश्वर कलिक भगवान जाग पडे । उन्होने देखा कि लक्ष्मीजी के  
समान महान् रूपवनी पद्मा सामने खड़ी है । २४। सखियों के सहित  
आई हुई, अपलक देवता हुई पद्मा को देखकर उस मोह को उत्पन्न  
करने वाली पद्मा से कलिकजी सकाम-भाव पूर्वक बोले । २५।

इहैहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।  
तत्वाननेन्दुः किल कामपूरतापापतोदाय सुखाय कान्ते ! २६।

लोलाक्षि ! लावण्य-रसामृत ते कामहिदष्टस्य विधातुरस्य ।  
 तनोतु शान्तिसुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य २७॥  
 बाहूतवैतौ कुरुता मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम् ।  
 चार्वायितौ चारुनरवाँकुशेन द्विप यथा सादिविदीर्णकृम्भम् २८  
 पादाम्बुज तेऽङ्गलिपत्रचित्रित वर मरालकवणानूपुरा-  
 वृतम् । कायाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितो प-  
 द्वमघनेसुशोभने ॥२९॥  
 श्रुत्वैतद्वचनामृत कथिकुलध्वसस्य कल्केरल  
 द्वृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिवृता ।  
 कान्ता क्लान्तमना कृताङ्गलिपुटा प्रोवाचतत्सदरं  
 और धीरपुरुस्कृतौ निजपर्ति नत्वा नमत्कन्धरा ।३०।

हे कान्ते ! तुम मेरे पास आओ, तुम्हारे मिलने से मेरा मंगल हुआ है । तुम्हारे चन्द्रमुख की देखकर मेरा सताप मिट गया ।२६। हे चवलाक्षि । मुझ सासार के रचने वाले को इस समय वासना रूपी सर्पे ने दिशित किया है । तुम्हारे लावण्य-रस रूपी अमृत के पान से उसकी शान्ति स भव है । यह शान्ति सुकृत्यों से भी दुर्लभ और जीवन के लिए आश्रय स्वरूप होगी ।२७। जैसे महावत अपने अ कुश से गजराज का कुम्भ भेदन करता है, ठोक वैसे ही तुम्हारी यह सुरम्य भुजाएँ नख रूप अ कुश के द्वारा मेरे हृदयस्थ कामरूप हाथी के कुम्भ का भेदन करें ।२८। मेरे हृदयोदयि के स्वचक्ष नीर मे स्थित अ गुलि रूपी कमल-पत्र द्वारा चित्रित हस जैसा शब्द करने वाले एव नूपुरों से सुशोभित मंजु धोष करने वाले पादाम्बुज के द्वारा काम-जनित विष का शमन हो ।२९। कलिकुल विध्व सक कलिकज्जी के वचनामृत सुनकर और उन्हे सत्पुरुषत्व से युक्त जान कर पद्मा अत्यन्त हर्षित हुई । फिर वह क्लान्त मन हुई पद्मा सखियों सहित मस्तक झुकाकर अपने पति कलिक भगवान् से मद स्वर में कहने लगी ।३०।

द्वितीयांश—

## तृतीय अध्याय

मा पद्मात हीर मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।  
तुष्टाव ब्रीडिता देवी करुणावहणालयम् ॥१॥  
प्रसीद जगता नाथ । धर्मन् । रमापते । ।  
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् । वशगा त्राहि मा प्रभो । ॥२॥  
घन्याह कृतपुण्याह तपोदानजपव्रतैः ।  
त्वा प्रतोष्य दुराराध्य लब्ध तव पदाम्बुजम् ॥३॥  
आज्ञा कुरु पदाम्भोज तव सस्पृश्य शोभनम् ।  
भवनं यामि राजानमाख्यातु स्वागत तव ॥४॥  
इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितर नृपम् ।  
वाचागमनम कल्केविष्णोरशस्य दौत्यकेः ॥५॥

सूतजी बोले—प्रेम से गद्गद होकर भाषण करने वाली पद्मा ने कल्किजी को भगवान् विष्णु के रूप में जान कर उनकी स्तुति की ॥१॥ हे जगदीश्वर । हे धर्मवर्मन् । हे लक्ष्मीपते । मैं आपको जान गई हूँ । अब आप मुझ शरणागता की रक्षा कीजिए ॥२॥ मैं घन्य हो गई प्रभो ! जो अपने पुण्यकर्मों धर्थात् तप, दान, जप और व्रतादि के सहित आपकी आराधना करके आपके दुष्प्राण्य चरण कमलों को प्राप्त कर सकी ॥३॥ अब आप मुझे आज्ञा दे कि मैं आपके पदाम्बुजों का स्पर्श करके अपने घर जाऊँ और महाराज से आपके आगमन की बात सूचित करूँ ॥४॥ यह कह कर श्रेष्ठ रूप वाली पद्मा ने अपने पिता राजा

बृहद्रथ के पास जाकर भगवान कलिक के आगमन का वृत्तान्त निवेदन किया ॥५॥

सखो मुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।  
हरेरागमनश्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथ ।६।  
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रे सुमङ्गलै ।  
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ।७।  
जगामानयितु कलिक साढु निजजनैः प्रभु ।  
मण्डयित्वा कारुमती पताकास्वर्णतोरणैः ।८।  
ततो जलाशयाभ्यास गत्वा विष्णुयश सुतम् ।  
मणिवेदिक्यासीन भुवनैकर्गति पतिम् ।९।  
ग्रनाधनोपरि यथा शोभन्ते रुचराण्यहो ।  
विद्युदिन्द्रायुधादोनि तथैव भूषणान्युत ॥१०॥

राजा बृहद्रथ ने पद्मा की सखी के मुख से पद्मा के पाणिग्रहण की कामना से भगवान् का आगमन सुन कर हर्ष धक्क किया ।६। फिर उसने पुरोहित, ब्राह्मण, परिवारीजन, मित्र, बन्धु आदि को साथ लेकर मगल गीत, वाद्य, नृत्य आदि करते हुए कलिक भगवान् को लाने के लिए प्रस्थान किया । स्वर्ण के तोरण और पताकादि से वह कारुमती नगरी अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥७-८॥ राजा बृहद्रथ ने जलाशय पर पहुँच कर देखा कि विष्णुयश के पुत्र कलिकजी मणिमय वेदी पर स्थित हैं ।९। जैसे घनघोर मेव पर विजली अथवा इन्द्र-घनुष आदि अत्यन्त शोभा पाते हैं, वैसे ही कलिकजी के कृष्णाग पर भूषण दमक रहे हैं ।१०।

शरीरे पौत्रासाग्रघोरभासा विभूषितम् ।  
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ॥११॥  
ददर्शपुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।  
सात्रु सपुलक् श्रीश दृष्ट्वा साधु तमच्चर्यत ।१२।  
ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।

यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ।१३।  
 इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।  
 हर्ष्यप्रासादसबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ।१४।  
 पद्मा पद्म पलाशाक्षी पद्मनेत्राय पद्मनीम् ।  
 पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद्यथाक्रमम् ।१५।

उन रूप-लावण्य के घर, कामदेव के उद्यम को नष्ट करने वाले, देह के अग्रभाग मे पीताम्बर धारणा किये हुए तथा रूप,शील और गुण की खान लक्ष्मीपति कल्किजी को देख कर अश्रुयुक्त पुलकित देह के सहित राजा ने उनका विष्व पूर्वक पूजन किया ।११-१२। राजा बोला— हे ईश्वर ! जैसे यदुनाथ वन मे जाकर मान्धाता के पुत्र से मिले थे, वैसे ही आप ज्ञानदोचरातीत का आगमन मेरे लिए हुआ है ।१३। यह कह कर कल्किजी का पूजन करके राजा उन्हे अपने भवन में ले आये और सुसज्जित गृह मे टिका कर उन्हे अपनी कन्या का दान कर दिया ।१४। पद्मोत्पन्न ब्रह्माजी के आदेशानुसर पद्मनाभ एव पद्मलोचन भगवान् कल्कि को पद्म-पत्र जैसे नेत्र वाली पद्मिनी सजक पद्मा का यथाविविदान किया ।१५ ।

कल्किलंडध्वा प्रिया भार्या सिंहले साधुसत्कृत ।  
 समुवास विशेषज्ञ समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ।१६।  
 राजान् स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखिता गताः ।  
 द्रष्टु समीयुस्त्वरिता, कल्कि विष्णु जगर्त्पतिम् ।१७।  
 ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य सस्पृश्यचरणाम्बुजम् ।  
 पुनः पु स्त्व समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ।१८।  
 पद्माकल्की गौरकृष्णो विपरीतान्तरावुभौ ।  
 बहिःस्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन पश्यतु ।१९।  
 दृष्ट्वा प्रभाव कलकेस्तु राजानः परमाङ्गुतम् ।  
 प्रणाम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ।२०।

आपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त कर साधुजनों से सत्कृत हुए कल्किजी सिंहल द्वीप को श्रेष्ठ स्थान देख कर कुछ दिनों तक वहाँ रहे। १६। जो राजा स्त्रीत्व को प्राप्त होकर पद्मा की सखी बन गये थे, वे सभी भगवान् कलिक के दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए। १७। वे सभी स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजागण भगवान् के दर्शन प्राप्त कर उनके चरण स्पर्श करते हुए उनकी आज्ञा से रेवा नदी पर पहुँचे और स्नान करते ही पुरुषत्व को प्राप्त हो गये। १८। पद्मा और कलिक गौर तथा कृष्णा वर्ण वाले हैं। दोनों विपरीत वर्णों के सम्मिलन से पद्मा के नीलाम्बर और कलिक के पीताम्बर द्वारा एक बाह्य वर्ण प्रकाशित हुआ और परस्पर समन्वित दिखाई देने लगा। १९। कलिकजी का अत्यन्त अन्धुर पराक्रम देख कर सभी राजागण उनकी शरण को प्राप्त होकर भवित्पूर्वक प्रणाम और स्तुति करने लगे। २०।

जय जय निजमायया कल्पिदाशेषकल्पनापरिणाम ।

जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय भनुमनिशम्य पूरितमर्वि-  
जनाविजनाविभूतमहामीनशरीर ! त्व निजकृतधम्मसेतुसर-  
क्षणकृतावतारः । २१।

पुनरिहदितिज-बल-परिलाङ्घत-वासव-सूदनादृत-जितत्रिभुवन  
पराक्रम-हिरयाक्षनिधन पृथिव्युद्धरणासकल्प-भिनिवेशेन धृय-  
कोलावतारः पाहि नः । २२।

पुनरिह जलधि मथनादृत-देवदानवगणा मन्दराचलानयनव्या-  
कुलिताना साहाय्येनादृतचित्त. पर्वतोद्धरणामृतप्रासनरचना  
वतारः कूर्माकारः प्रसीद परेश । त्व दोननृपाणाम् । २३।

हे प्रभो ! आपकी जय हो। आपकी ही कल्पना-शक्ति से सप्तार विविध प्रकार से कल्पित हुआ है। जब तीनों लोग प्रलय में लीन हो गये, तब आपने जनमूल्य स्थल में प्रकट हुए थे। आपने ही धर्म-सेतु के सर-क्षण हेतु महामीन (मत्स्य) देह धारण किया था। २४। जब दनुज-सेन्य

से इन्द्र पराजित होने लगे और त्रैलोक्य-विजयी हिरण्याक्ष इन्द्र को मरने में तत्पर हुआ, तब आपने ही वाराह स्वप्न धारण कर उसका सहार कर डाला। ऐसे आप हमारी रक्षा कीजिये । २२। जब देवता और देव्य दोनों ही मिल कर समुद्र-मन्थन में तत्पर हुए, तब नदगाचल पर्वत को टिकाने की समझा लत्पन्न हई। उम समय आपने कूर्मावतार धारण कर अपनी पीठ पर मन्दगाचल को टिका लिया। आपका वह कूर्मावतार देवताओं को सुवा-पान कराने के लिये ही हुआ था। हे परेश! आप ही हम दीन राजाओं की रक्षा कीजिये । २३।

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोर-  
दिद्वाना देववरागा भयभीताना कल्याणाय दितिसुतवधप्रे-  
प्सुब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्वरात्रि दिवास्वर्गम-  
त्यंपातालतले देवगन्धवर्वकिन्नरनरनार्गेरिनि विचिन्त्य नर-  
हरिरूपेण नाखाग्रभिन्नोरु दष्टवन्तच्छद त्यक्तासु कृत  
वानसि । २४।

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बले, सत्र शक्रानुजो वटुवामनोदैत्यसु  
माहनाय क्षिपदभूमियाच्चाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जल-  
सस्पर्श-विवृद्धमनोऽभिलाषस्तव भूले बलेदौत्रारिकत्वमङ्गो-  
कृतमुचित दानफलम् । २५।

पुनरिह हैह्या दिनपाणामितबलपराक्रमाणा नानामदोलल-  
च्छ्रुतमर्थदावत्मेना निधनाय भृगुवशजो जामदग्न्य पितृहो-  
मधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्रिसप्तकृत्वो नि.क्षत्रिया पृथिवी कृ-  
तवानसि परशुरामावतारः । २६।

फिर जब त्रैलोक्य विजयी, महाबली और पराक्रमी हिरण्यक-  
कशिपु देवताओं का उत्पोड़न करने लगा, तब आपने भयभीत देवताओं के  
रक्षार्थ उस दैत्यराज का सहार करने का निश्चय किया। ब्रह्माजी के  
वर्स से दैत्य, देवता मन्त्रवर्त, किन्नर, नाग, शस्त्रास्त्र, दिवस, रात्रि, स्वर्ग,

मर्यंलोक या पाताल लोक मे कही भी, किमी के द्वारा भी मरने वाला नहीं था । इन सब बातों पर विचार करके आपने नृसिंहावतार धारण किया और जब आपके उम रूप को देख क्रोधित हुआ दैत्य आपसे युद्ध करने लगा, तब आपने अपने नखों से उसका देह विदीरण कर डाला । २४। फिर त्रैलोक्य विजयी राजा बलि के यज्ञ मे आपने इन्द्र के लघु भ्राता बन कर वामनावतार धारण कर दानवराज के समोहनार्थ तीन पद पृथिवी माँग ली । उत्सर्ग के लिये जल छोड़ते ही आपने छलपूर्वक विराट स्वरूप धारण किया । फिर आप त्रैलोक्यदान के फलस्वरूप राजा बलि के द्वारपाल बन गये । २५। फिर जब महाबल-पर्वक्रम बलि हैह्य आदि राजाओं ने धर्म की मर्यादा को लांघा, तब आपने उनके विनाशार्थ भृगुवश मे परशुराम का अवतार लिया और अपने पिता की होमधेनु के हर लिये जाने पर आपने इक्कीष बार इस पृथिवी को क्षत्रियों से रहित कर दिया । २६।

पुनरिह पुलस्यवशावत सस्य विश्वस पुत्रस्य निशाचरस्य  
रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररोकृत्य रविकूलजातद-  
शरथात्मजो युश्वामित्रादस्त्राण्युपतभ्य वने सीताहरणवशा  
त्प्रवृद्धमन्युना अभ्युधि वानर्निबध्य सगण दशकन्धर हतवा-  
नसि रामावतारः । २७।

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधि सकलसुरगणसेवितपादार-  
विन्दद्वन्द्व. विविधदानवदेत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदे-  
वात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि । २८।

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्मनुष्ठान-विहित-नानादर्शनसघृण  
ससारकर्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिवि-  
माननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि । २९।

फिर पुलस्यवशावतस विश्वापुत्र रावण ने अपने बल से तीनों लोकों को भय-सत्त्व कर दिया, तब आपने उसका विनाश करने के लिये सूर्यवशी राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया और विश्वामित्र से अस्त्र-

विद्या प्राप्त कर वन-गमन करने और रावण द्वारा सीता का हरण करने पर आपने वानर सेना को साथ लेकर कुन सहित रावण को मार डाला । २७। फिर आप यदुकुल जनवि-मयङ्ग वसुदेवजी के पुत्र रूप श्रीकृष्ण हुए और अनेक दैत्य-दानवों को मार कर तीनों लोकों को पाप-मुक्त किया । इसलिये मभी देवता आपके उप श्रीकृष्ण रूप के चरण कपलों की सेवा में तत्पर हुए । उसी कान में आपने ही बलभद्रजी का भी अवतार धारण किया था । २८। फिर आपने ब्रह्मा द्वारा निश्चित वेद-वर्म में अनेक बाधाएँ देख कर मिथ्या प्रपत्र को नष्ट करने के निमित्त एव प्राकृतिक विषय की अवमानना न करने के उद्देश्य से बुद्ध का अवतार लिया । २९।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धगाखडम्प्लेच्छादीनाऽच्चवे-  
दधर्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कलिकर्पेणास्मान् स्त्री-  
त्वनिरयादुदधृतवानसि तवानुकम्पा किमिह कथयोमः । ३०।

कव ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरण

कव नः कामा वामाकुलतमृगतृष्णातंमनसाम् ।

सुदुष्प्राप्य युष्मच्चरण जलजालोकनमिद

कृपापारावारं प्रमुदितदृश्वाश्वामय निजान् । ३१।

अब आप कलिकुल को नष्ट करने तथा बौद्ध पाखण्डियों और म्लेच्छों पर शासन करने के लिये कलिक अवतार लेकर वेद धर्म रूपी सेतु की रक्षा कर रहे हैं । आपने ही स्त्रीत्व रूपी नरक से हमारा उद्धार किया है । हम आपकी इस कृपा का वर्णन किस प्रकार करे ? । ३०। ब्रह्मादि देवता भी आपकी लीला को जानने में समर्थ नहीं हैं । आपको अवतार विषयक कोई कामना नहीं रहती । हम स्त्री के देखते ही काम-बाण के द्वारा जर्जर एव मृगतृष्णा से सतप्त हृदय वाले विषयी प्राणियों के लिये आपके पदाम्बुजों का दर्शन दुष्प्राप्य था । हे अपार कृपा वाले प्रभो ! हम अनुगामियों की ओर आप एक बार अपना कृपा कटाक्ष करके हमें याश्वासन दीजिये । ३१।

द्वितीयांश—

## चतुर्थ अध्याय

श्रृत्वा नृपाणा भक्ताना वचन पुरुषोत्तमः ।  
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वण्णाना धर्ममाह यत् ॥१॥  
पवृत्ताना निवृत्ताना कर्म यत्परिकीर्तिरत्म् ।  
सर्वं सश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥२॥  
इति कल्केवर्चं श्रृत्वा राजानो विशदाशयाः ।  
प्रणिपत्य पुन ब्राहु पूर्वान्तु गतिमात्मनः ॥३॥  
स्त्रीत्व वाप्यथवा पू स्त्व कस्य वा केन वा कृतम् ।  
जरा-योवन-बाल्यादि सुखदुःखादिक च यत् ॥४॥  
कस्मात्कृतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।  
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्माणि वर्णय ॥५॥

सृतजी बोले—राजाओं के यह वचन सुन कर पुरुष श्रेष्ठ कलिक-  
जी ने उनके प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के धर्म का  
वर्णन किया । १। स सार मे श्रासक्त एव संसार से विरक्त दोनों के ही  
जो कर्म हैं, उनका वर्णन उन्होने किया । २। कलिकजी का उपदेश सुनकर  
राजाओं के हृदय पवित्र होगये । फिर उन्होने प्रणाम करके कलिकजी से  
अपनी पूर्ववस्था के विषय मे पूछा । ३। हे प्रभो ! स्त्रीत्व और पुरुषत्व  
भेद से मनुष्यों की निवृत्ति किस प्रकार होती है ? जरा, योवन और  
बाल्यावस्था एव सुख, दुखादि के कारण क्या हैं ? इनके अतिरिक्त भी  
जिन विषयों से हम अनभिज्ञ हैं, उनका भी वर्णन कीजिये । ४-५।

( तदा तदाकृष्णं कलिकरनन्त मुनिमस्मरत् ) ।

सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहदव्रत ॥६॥  
 कलकेदर्शनितो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरत् ।  
 समागत्य पुनः प्राह कि करिष्यामि कुत्र वा ।  
 यास्यामीति वचः श्रुत्वा कलिकः प्राह हस्तमुनिषु ।७।  
 कृत दृष्ट त्वया ज्ञात सर्वं याद्यनिवर्त्नकम् ।  
 अदृष्टमकृतच्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनि ।८।  
 गमनायोद्यत त तु दृष्ट्वा नृपगणास्तरः ।  
 कलिकं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतस ।९।

( यह सुन कर कलिक जी ने अनन्त मुनि का स्मरण किया ) यह जान कर महानन्त्रिए एव दीर्घ काल से तीर्थ मे निवास करने वाले मुनिवर अनन्त, कलिकजी के दर्शन से अपनी मुक्ति सभव समझ कर शीघ्र ही वहाँ आ उपस्थित हुए । उन्होने भगवान् कलिक के पास आकर पूछा— मुझे क्या करना है ? कहाँ जाना है ? यह सुन कर कलिक जी हँस कर मुनि से बोले ।१। हे मुने ! आपने मेरे सब किये हुए कर्म देखे हैं । अदृष्ट को कोई काट नहीं सकता और कर्म के बिना फल भी नहीं मिल सकता । यह सुन कर मुनि को प्रमन्ता हुई ।२। और फिर जब मुनि वहाँ से जाने लगे, तब उन्हे देख कर आश्चर्य चकित हुए राजागण कलिकजी से बोले ।३।

किमनेनापि कथितंत्वया वा किमुतांयुत ।  
 सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छाम् कथोपकथनं दूयोः ।१०।  
 नृपाणां तद्रचं श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।  
 पृच्छतामु मुनिं शान्तं कथोपकथनादृताः ।११।  
 इ तिकलकेर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।  
 अनन्तमातुं प्रणाताः प्रश्नपारतितीर्षवः ।१२।  
 मुने ! किमत्र कथन कलिकना धर्मवर्मणा ।  
 दुर्बोधः केन वा जातस्त्व वण्य न प्रभो ।१३।

पुरिकाया पुरि पुरा पिता मे वेदपारग. ।  
 विद्रुमो नाम धर्मज्ञः ख्यात. परहिते रतः । १४।  
 सोमा मम विभो । माता पतिधर्मपरायणा ।  
 तयोर्वेदः परिणतौ काले षण्डाकृतिस्त्वद्दम् । १५।

राजाश्रो ने कहा—हे प्रभो ! मुनि ने आपसे क्या कहा और आपने क्या उत्तर दिया ? आपका कथोपकथन किम विषय मे हुआ था ? यह मुनने की हमे इच्छा है । १०। राजाश्रो की जिज्ञासा सुनकर भगवान् कलिंग ने कहा—इमरे कथोपकथन के विषय मे इन शान्त हृदय वाले मुनि से ही प्रश्न करो । ११। कलिंगजी के बचन सुनकर वे सब श्रेष्ठ राजागण प्रश्न का भेद जानने के लिए मुनि को प्रणाम करके पूछने लगे । १२। राजाश्रो ने कहा—हे मुने ! भगवान् कलिंग से आपका कथोपकथन गृहरूप से क्यो हुआ ? हे प्रभो ! इसका रहस्य हमे बताइये । १३। मुनि बोले—पूर्वकाल की बात है—पुरिका नाम पुरी मे वेदो मे पारंगत विद्रुम नामक एक धर्मज्ञ मुनि रहते थे, वही मेरे पिता थे । १४। हे विभो ! मेरी माता का नाम सोमा था, उसी पतीत्रता से मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं पु सत्वहीन था । १५।

सजात. शोकद पित्रोलोकाना निन्दिताकृति ।  
 मामालोक्य पिता क्लीबदुखशोक भयाकलः । १६।  
 त्यक्त्वा गृह शिववन गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।  
 सपूज्येश विधानेन धूपदीपानुलेपने । १७।  
 शिवं शान्तं सर्वलोकैकनाथं भूता-वासं वासुकीकण्ठभूषम् ।  
 जटाजूटाबद्धगङ्गा तर्णगवन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् । १८।  
 इत्यादि बहुभि. स्तेत्रैः स्तुतः स शिवदः शिव ।  
 वृषारूढः प्रसन्नत्मा पितर प्राह मे वृणु । १९।  
 विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पु स्त्वं तापतापित ।  
 हसञ्जिद्वो ददौ पूस्त्वं पार्वाया पृतिमोदितः । २०।

मुझे इस प्रकार का उत्पन्न हुआ देख कर मेरे माता-पिता को बड़ा दुख हुआ । मेरी आकृति निन्दा योग्य थी । यह देख कर दुख, शोक और भय से व्याकुल हुए पिताजी शिव वन में जाकर धूप, दीप, गध आदि से विविवत् पूजन करके शिवजी की स्तुति करने लगे । १६ १७। उन्होंने कहा—हे शिव ! हे शान्त स्वरूप ! आप सब लोकों के नाथ और भूतों को आश्रय स्थान हैं । आपके कठ में वासुकी नाग और जट जाल में गंग-तरण सुशोभित हैं । आप आनन्द भडार के दाता शिव को मैं प्रणाम करता हूँ । १८। कल्याण के दाता भगवान् शकर इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर वृषभारु छोड़ होकर प्रकट हुए और उन्होंने मेरे पिता को वर मागने की आज्ञा दी । १९। तब मेरे पिता विद्रुम मुनि ने उनसे कहा—हे नाथ ! मेरा पुत्र पुस्तवहीन है, इसमें मैं अत्यन्त दुखी हूँ । तब शिवजी ने हँस कर मेरे पुरुषत्व युक्त होने का वर दिया और पार्वतीजी ने भी उनकी बात का अनुमोदन किया । २०।

मम पुस्व वर लब्ध्वा पितायात् पुनर्गृहम् ।

पुरुष मा समालोक्य सहर्षः प्रियथा सह । २१।

ततः प्रवयसो तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके ।

विवाह मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुर्दमापतुः । २२।

यज्ञरातसुतां पत्नी मानिनी रूपशालिनीम् ।

प्राप्याह परितुष्टात्मा गृहस्थ, स्त्रीवशीभवम् । २३।

ततः कनिपये काले पितरौ मे मृतो नृपा ।

पारलौकिककार्यार्थिणि सुहृदभिर्ब्रह्मणैवृतः । २४।

तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून् ।

पित्रोवियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम् । २५।

मेरे पुरुष होने का वर प्राप्त कर पिताजी घर लौट आये और तब मुझे पुरुषाकार हुआ । देव कर माता के सहित ने बड़े प्रसन्न हुए । २६। फिर जब मैं बारह वर्ष का होगया, तब उन्होंने बन्धु-वान्वयों सहित मोद मनाते हुए मेरा विवाह कर दिया । २७। यज्ञरात की पुत्री को

अपनी भार्या के रूप में प्राप्त करके मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उस अत्यन्त रूपवती एवं माननी छों के वशीभूत हो गया । २३। फिर कुछ काल बीतने पर मेरे माता-पिता मर गये तब मैंने अपने सुहृदों और ब्राह्मणों के साथ उनका परलोक सङ्कार किया । २४। माता-पिता का मृतक सङ्कार करके मैंने अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया । फिर उनके विरह से दःखी होकर मैंने भगवन् विष्णु को आराधना की । २५।

नुष्ठी हरिम् भगवाञ्जप पूजादिकर्मभि ।  
स्वप्ने मामाह मायेय स्नेहमोहविनिर्मिता । २६।

अय पितेय मातेति भमताकुलचेतसाम् ।

शोकदुखभयोद्व गजरामृत्युविधायिका । २७।

श्रुत्वेति वचन विष्णो, प्रतिवादार्थमुद्यतम् ।

भामालश्वन्तर्हित, स विनिद्रोऽहवम् । २८।

सविस्मयः सभार्थ्योऽह त्यक्त्वा ता युरिकां पुरोम्

पुरुषोत्तमाख्य श्रीविष्णोरालवञ्चवागम नृपा । २९।

तत्रैव दक्षिणो पाश्वे निर्मायाश्रममुन्तमम् ।

सभार्थ्यं सानुगामात्वः करोमि हरिसेवनम् । ३०।

मेरे जप, पूजन आदि कर्म से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने एक दिन स्वप्न में मुझमे कहा कि स्नेह, मोह आदि सब मेरी ही माया है । २६। यह मेरे पिता हैं, यह मेरी माता हैं ऐसी भमता जिनके चित्त को व्याकुल करती हो तो समझ लो कि इस शोक, दुख, भय, द्वेष, वृद्धामरथा और मृत्यु आदि के क्लेश रूप का कारण मेरी माया ही है । २७। भगवान् की वरणी सुन कर मैं जैसे ही प्रतिवाद करने को हुग्रा, वैसे ही वे अन्तर्धान होगये और मेरी नीद टूट गई । २८। हे राजाओ ! फिर मैं विस्मय मे भर कर पुरिका नामक उस पुरी को छोड़ कर अपनी पत्नी के सहित पुरुशोत्तम सङ्कक विष्णुधाम में जा पहुँचा । २९। उस पुरुषोत्तम धाम के

दक्षिण भाग में श्रेष्ठ ग्राश्रम बनाकर मैं अपनी पत्नी और अनुग मियो के सहित हरि-सेवा में तत्पर हो गया । ३०।

मायासदर्शनाकाङ्क्षी हरिसदमनि सस्थितः ।

न्यायन्त्रत्यञ्जपनाम चिन्तयच्छमनापहम् । ३१।

एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्या पारणादिने ।

स्नातुकाम समुद्रेह बन्धुमि, सहितो गत । ३२।

तत्र ममन जलनिधौ लहरीलोलसकुले ।

समुत्थातुमशक्त मा प्रतुदन्ति जलेचरा । ३३।

निमज्जनो मज्जनेन व्याकुलो कृतचेतसम् ।

जलहृलोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् । ३४।

जलधेदक्षिणे कूले पतित पवनेरितम् ।

मा तत्र पतित दृष्टवा वृद्धशर्मा द्विजोत्तम ॥ ३५॥

सन्ध्यामुपास्य सघृण स्वपुर मा समानयत् ।

स वृद्धशर्मा धर्मतिमा पुत्रदारवनान्वितः ।

कृत्वारुग्रान्तु मा तत्र पुत्रवत्पर्यंपालयत् । ३६।

भगवान् के उम धाम में रहता हुप्रा प्रभु माया का दर्शन करने की कामना से मैं नृत्य, गायन तथा जप पूर्वक यम का भय दूर करने वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगा ॥ ३१॥ इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होगए । एक दिन द्वादशी का पारण था, तब मैं स्नान करने के विचार से अपने बन्धुओं सहित समुद्र के तट पर पहुँचा ॥ ३२॥ जैसे ही गोता लगाया, वैसे ही मैं समुद्र की भयकर नरगराशि से व्याकुन हो गया । मुझमे उठने की शक्ति नहीं रही । तभी जलचर जीव मुझे व्यथित करने लगे ॥ ३३॥ मैं कभी उछलता था, कभी हूँक्ता, इससेमेरा चित्त बड़ा व्याकुल हुप्रा । जल की तरणों के थपेडों से शिथिल प्रग हुप्रा मैं अचेन होइक्या ॥ ३४॥ फिर मैं वायु की हिलोर से बहता हुप्रा समुद्र के दक्षिण किनारे पर लग गया । मुझे अचेतावस्था में पड़ा देख कर वृद्ध शर्मा

नामक एक ब्राह्मण सध्योपासन से निवृत्त हो कर मुझे अपने घर ले गये । स्त्री पुत्रादि से युक्त, धनवान् एव धर्मात्मा वृद्ध शर्मा मुझे स्वस्थ करके पुत्र के समान पालने लगे ॥३५-३६॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न ।  
 दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावस नृपाः ॥३७॥  
 स मा विज्ञाय बहुधा वेदधर्मोऽवनुष्ठितम् ।  
 प्रददौस्त्वा दुहितर विवाहे विनयान्वित ॥३८॥  
 लड्डवा चामीकराकारा रूपशीलगुणान्विता ।  
 नाम्ना चारुमती तत्र मानिनी विस्मितोऽभवम् ॥३९॥  
 तथाह परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वित ।  
 जनयित्व पञ्चपुत्रान्समदेनावृतोऽभवम् ॥४०॥

हे राजाश्री ! उस स्थान पर रहते हुए मुझे दिशा और देश का भी ज्ञान न रहा, इसलिए दुःखित हृदय से उन ब्राह्मण दम्पति को ही अपना माता-पिता मानता हुआ, वही रहने लगा ॥३७॥ उन ब्राह्मण ने मुझे सब प्रकार से वेद-धर्म का अनुष्ठाता जान कर विनय पूर्वक अपनी कन्या का दान कर दिया ॥३८॥ उस तस्वीर जैसे वर्ण वाली, रूप, शील और गुण से युक्त कन्या का नाम चारुमती था । उस मानिनी को भार्या रूप में प्राप्त का मैं विस्मय में पड़ गया ॥३९॥ चारुमती ने मुझे सेवा द्वारा सदा सतुष्ट रखा और मैं उसके साथ विभिन्न प्रकार के सुखों का उपभोग करने लगा । उससे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरे सुख की वृद्धि होने लगे ॥४०॥

जयश्च विजयश्चेव कमलो विमलस्तथा ।  
 बुध इत्यादय. पञ्च विदितास्तनया मम ॥४१॥  
 न्स्वजनेर्बन्धुभिः पुत्रैर्दानैर्नानिविधौरहम् ।  
 विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ॥४२॥  
 बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थ समुद्यतम् ।

दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजा सुताम् । ४३।  
 दित्युः कमर्गिण वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि ।  
 वार्यगर्गितैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैः स्वर्णभूषते । ४४।  
 अह च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् ।  
 कत्तुं स मुद्रवेलाया प्रविष्ट परमादरात् । ४५।

मेरे पाँच पुत्र जय, विजय, कमल, विमल, और दुध इत्यादि नामों से जने गये । ४१। मैं स्वजनों और पुत्रों से युक्त तथा विविध प्रकार के धनों का स्वामी होकर इन्द्र के समान पूजनीय तथा प्रसिद्ध होगया । ४२। जब मैंने अपने ज्येष्ठ पुत्र दुध का विवाह करने ना विचार किया तब धर्मसार नामक एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा प्रकट की। फिर उसने अपनी कन्या का वैवाहिक सम्पर्क करने के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुला कर आभ्युदयादि कर्म को पूर्ण कराया। उस समय स्वरणभूषणों से विभूषित स्त्रियाँ वाद्य, गीत और नृत्य कर रही थीं । ४३-४४। तब मैं भी पुत्र के आभ्युदय की अभिलाषा करके पितर, देवता और ऋषियों का तर्पण करने के लिए समुद्र के किनारे गया । ४५।

वेलालोलायिततनुर्जलादुत्याय सत्वरः ।  
 तीरे सखीन्स्तानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मना । ४६।  
 सद्यः समभव भूपा । द्वादश्या पारसणादृतान् ।  
 पुरुषोत्तमसवासान्विष्णुसेवार्थमुद्यतान् ॥ ४७ ॥  
 तेऽपि मामग्रत, कृत्वा तद्रूपवयसा निधिम् ।  
 विस्मयावृष्टमनस दृष्ट्वा मामब्रुवज्जना । ४८।  
 अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले कि दृष्टवानिह ।  
 स्थले वा व्यग्रमनसं लक्षयाम, कथ तव । ४९।  
 पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मम् ।  
 तानब्रुवमह नैव किञ्चिचदृष्ट श्रुत जनाः । ५०।  
 कामात्मा तत्कृपणघीर्मया सन्दर्शनादृतः ।

तया हरेमर्ययाह मूढो व्याकुलितेऽद्रियः ।५१।

जब मैं स्नान — तर्पणादि से निवृत्त होकर जल से निकल कर तट की ओर चला, तभी देखता हूँ कि मेरे पहिले के सभी बघु बाष्व सन्ध्यादि कर्म कर रहे हैं । यह देख कर मेरा मन उद्धिग्न हो उठा ।४६। हे राजाश्रो ! मुखोत्तम घाम मे रहने वाले उन द्वाह्यणों को भगवान् विष्णु की सेवा एव द्वादशी के पारण मे तत्पर देख कर मैं चकित हुआ ।४७। मेरे रूप और वय मे पहिले से कुछ भी परेवर्तन न हुआ देख कर और मुझे विस्मयपूर्वक अपने को देखता देख कर उन्होने कहा ।४८। हे अनन्त ! तुम विष्णु भक्त हो । क्या तुमने जल अथवा स्थल मे कही कुछ ऐसा दृश्य देखा है, जिससे इतने व्यग्रचित्त दिखाई दे रहे हो ! ।४९। यदि कुछ देखा हो तो बनायो और विस्मय को छोड कर पारण करो । यह सुन कर मैंने कहा— मैंने कही कुछ भी नहीं देखा-सुना । परन्तु मैं काम से मोहित होकर दुर्बल हृदय हो गया हूँ । मैं भगवान् श्रीहरि की माया से ही विमूढ और व्याकुल इद्रिय वाला हो रहा हूँ ।५०-५१।

न शर्म वेदपि कुत्रापि स्नेहमोहवश गतः ।

आत्मनो विस्मृतिरिय को वेद विदिता तु ताम् ।५२।

इति भार्या धनागार-पुत्रोद्वाहानुरक्तधी ।

अनन्तोऽह दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ॥५३॥

मां वीक्ष्य मानिनो भार्या विवशं मूढवस्थितम् ।

क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ।५४।

इह ता वीक्ष्य तास्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।

हसोऽप्येको बोवयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ।५५।

घोरो विदितसर्वार्थः पूर्णः परमधर्मवित् ।५६।

सूर्यकार तत्त्वसार प्रशान्त दान्त शुद्ध लोकशोकक्षयि-  
ष्णम् । ममाग्रे त पूजयित्वा मदञ्जाः प्रच्छुस्ते मच्छुभद्या-  
नकामाः ।५७।

मैं स्नेह और मोह के वशीभूत होकर आत्मविस्मृति को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु इस बोत को कौन जानता है ? ।५२। इस प्रकार मैं भार्या, घन के भड़ार और पुत्र के विवाहादि मे अत्यन्त अनुरक्त शोक और दुख से युक्त हो गया। मैं सोचने लगा कि मैं अनन्त कौन हूँ ? परन्तु कुछ भी नहीं समझ पाया। सभी विषय स्वप्न के समान लगने लगे ।५३। तभी मेरी मानिनी पन्नी मुझे उस विवश और मूढ़ के समान अवस्था मे देख कर मेरे पास आकर रोती हुई चिल्लाने लगी कि हा, यह क्या हुआ ! ।५४। वहाँ अपनी पूर्व भार्या को इस प्रकार देख कर और फिर उन स्त्री-पुरुषों का स्मरण करके अत्यन्त कातर हृदय तथा सन्तुष्ट हो उठा। तभी एक बीर, सर्वज्ञानी, पूर्ण धर्मज्ञ, सूर्य के समान तेजस्वी, सतोगुणी, शान्त, शुद्ध तथा स सार-शोक का नाश करने मे समर्थ परमहस मुझे ज्ञान देने के निमित्त वहाँ पधारे। तभी मेरे बाध्वों ने उनका पूजन किया और मेरे कल्याण का उपाय पूछने लगे ।५५-५७।

द्वितीयांश —

## पंचम अध्याय

उपविष्टे तदा हसे भिक्षा कृत्वा यथोचिताम् ।  
तत प्राहुरनन्तस्य शरीररोग्यकाम्यया ।१।  
हसस्तेषा मत ज्ञात्वा प्राह मा पुरत स्थितम् ।  
तव चारुमती भार्या पुत्रः पच बुवादय, ।२।  
धनरतनन्वित सद्मा सम्बाध सौवसकुलम् ।  
त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ।३।  
समुद्रतीरसन्वारः पुराद्वर्मजनादृतः ।  
निमन्त्य मामिहायात, शोकसविग्नमानसः ।४।  
त्वज्ज्ञ सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।  
त्रिशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे सभ्रमो महान् ॥५॥

सूतजी बोले — यथोचित भिक्षा प्राप्त करके परमहस जब  
विराजमान हुए, तब पुरुषोत्तन नीर्य के निवासिरो ने उनमे पूछा कि  
अनन्त का शरीर रोग-रहित कब होगा ? ।१। परमहंस उनके प्रश्न का  
तात्पर्य जान कर और मुझे अगले सप्तऋति देख कर बोले — हे  
अग्रनन्त ! तुम अपनी पत्नी चारुमती, बुवादि पाँचो पुत्र घन रत्नादि से  
युक्त भवन आदि को त्याग कर यहाँ कब आये ? क्या आज तुम्हारे  
पुत्र का विवाह-दिवस है ? ।२-३। मैं प्राज भी तुम्हें इस समुद्र तट पर  
घूमते देखता हूँ । वहाँ के सभी धार्मिक वृत्ति तुम्हारा आदर करते हैं ।  
मैं भी आज निमत्रित हूँ । परन्तु तुम यहाँ आकर शोक से सन्तप्त होरहे  
दिखाई देते हो ।४। हे प्रभो ! वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के वृद्ध थे, परन्तु

यहाँ तीस वर्ष के युवक कैसे दिखाई दे रहे हो ? ।५।

इय भार्या सहाया ते न तत्रालोकिता वच्चित् ।

अह वा कव कुतस्तस्मात्कथ वा काशित ।६।

स एव वा न वापि त्व नाह वा भिक्षुरेव स. ।

आवयोरिह सयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ।७।

त्व गृहस्थ स्वधर्मज्ञो भिक्षुकोऽह परात्मक. ।

आवयोरिह सवादो बालकोन्मत्तयोरिव ।८।

तस्मादीशस्य मायेय त्रिजन्मोहकारिणी ।

ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येहमिति भा द्विज । ।९।

तुम्हारी इस सहायिका भार्या को मैंने वहाँ कभी भी नहीं देखा ।  
मैं भी यह नहीं जानता कि मैं इस स्थान १२ कहाँ से और किस प्रकार  
आ गया ? तथा मुझे यहाँ कौन लाया है ? ।१०। क्या तुम वही अनन्त हो  
या और कोई हो ? मैं भी वही भिक्षुक हूँ या कोई अन्य हूँ ? यहाँ मेरा  
तुम्हारा मिलन भी इद्रजाल के समान ही प्रतीत होता है ।११। तुम अपना  
धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्तक भिक्षुक ।  
यहाँ हम-तुम दोनों का पारस्परिक सवाद एक बालक और उन्मत्त के  
सवाद के समान निरर्थक है ।१२। हे द्विज ! इससे मैं समझता हूँ कि यह  
भगवान् की बैलोबय-मोहिनी माया है । इस माया का रहस्य साधारण  
ज्ञान से नहीं, अद्वैत बुद्धि से ही समझा जा सकता है ।१३।

इति भिक्षुः समाश्राव्य यदन्यतप्राह विस्मित ।

मार्कण्डेय ! महाभाग ! भविष्य कथयामि ते ।१०।

प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।

सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ।११।

तमोद्युग्ननसन्नापा नोदनोद्यतमक्षरी

ययेदमखिलं लोकमवृत्या वस्थयास्तितम् ।१२।

लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।

निरूपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ।१३।

ब्रह्मण्यपि द्विधाभूते पुरुष प्रकृती स्वया ।

भासा सजनयामास महान्त कालयोगतः ॥१०॥

कालस्वभावकर्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत्

त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मय, ससारकारणम् ॥१५॥

विस्मयान्वित हृदय से भिक्षुक परमहस ने मुझसे इतना ही बहा ।

फिर उन्होंने माकरण्य से कहा — हे मार्करण्य ! हे 'महाभाग ! मैं शब्द तुम्हें भविष्य की बात सुनाता हूँ ॥१०॥ प्रलयकाल में उस परम पुरुष के उद्दर मैं स्थित जल में, पथ में बैठने वाली गणिका के समान, सब में मोह उत्पन्न करने वाली माया निवास करती है ॥११॥ तमोगुण रूप हूँ यही माया अनन्त सन्ताप उत्पन्न करने वाली और इस मिथ्या जगत में सब की गति करने वाली है । यही माया तीनों लोकों में व्याप्त होकर उन्हें मिथ्यत करती है । इस मायाका नाश सभव नहीं है ॥१२॥ प्रलयकाल में तीनों लोकों के लीन हो जाने पर सर्वत्र अधकार छा जाता है, तब दिशा देश और काल आदि का भी कोई चिह्न नहीं रहता । उस समय ब्रह्म ही सृष्टि करने की इच्छा से, अपनी हीं महिमा द्वारा प्रकृति और पुरुष इन दो रूपों में विभक्त हो जाते हैं । तब काल के सहयोग से प्रकृति और पुरुष, का सयोग होने पर महत्त्व उत्पन्न होता है ॥१३-१४॥ प्रकृति से काल और स्वभाव उत्पन्न हुए । महत्त्व से अहंकार हुआ । वही अहंकार तीनों गुणों में विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव का उत्पन्न करने वाला हुआ । यही ब्रह्मा, विष्णु और शिव सम्पूर्ण विश्व के कारण हैं ॥१५॥

तन्मात्राणि तत पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च ।

महाभूतान्यपि तत प्रकृतौ ब्रह्मसश्रयात् ॥१६॥

जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः ।

ब्रह्माण्डभाण्डसभार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ॥१७

मयया मायया जीव-पुरुष परमात्मनः ।

ससारशरण्यग्रो न वेदात्मगति क्वचित् ॥१८॥

अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थितः ।

गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धा. खगा इव । १६।  
 ता माया गुणमया ये तितीष्टन्ति मुनीवरा । ।  
 स्वन्ती वासनानकां त एवार्थविदो भुवि ॥२०॥

अहंकार से प्रथम त्रिगुणात्मक पचतन्मात्र प्रकट हुप्रा । पचतन्मात्र से पचमहाभूत हुए । इस प्रकार प्रकृति में पुरुष के अधिष्ठान करने से ही सृष्टि का उदय होता है । १६। फिर देवना, दानव, मनुष्य तथा अन्यान्य जीव श्रथति जिन्हें भी जन्म लेने वाले और मरणावर्मी प्राणी हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं । १७। ईश्वर की माया के वश में पड़े रहने से सभी जीव सांसारिक कार्यों में लिप्त रहे आते हैं तथा अपने उद्धार का प्रयत्न नहीं कर पाते । १८। अहो, यह माया केमी बलवती है, जिसके वश में ब्रह्मादि देवता भी नाथे हुए बैल और डौरी से बंधे हुए पक्षी के समान नाचते करहते हैं । १९। जो मुनिवर इस प्रकार के वामना रूपी नक्ष की उत्पत्ति-त्री गुणमयी माया से मुक्त होने का उपाय करते हैं, उन्हीं ज्ञानियों का जन्म सार्थक समझो । २०।

मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।  
 श्रुत्वा गुरुवचो भूय. किमाहु श्रवणाद्वता । २१।  
 राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।  
 कि वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय । २२।  
 इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य त पुनः ।  
 कथयामास कात्स्म्येन शोकमोहविघातकम् । २३।  
 तत्रानन्तो भूपगणै. पृष्ठ प्राह कृतादर ।  
 तपसा मोहनिघनमिन्द्रियाणाच्च निग्रहम् । २४।  
 अतोऽहवनमासम्य तप कृत्वा विवानत ।  
 नेन्द्रियाणा न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन । २५।

शोनक बोले — हे ब्रह्मन ! मार्कण्डेय, वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्यान्य मुनियों ने परमहस्य के वक्त्वा भुज-कर क्या कहा था ? तथा ग्रनन्त के इस उपाख्यान को सुनके बाले राजा म्यो ने अनुन्तर के सुराम्ब के समन

वचन सुन कर क्या कहा ? यह सभी भविष्य-वार्ता हमें सुनाइये ।२१-  
२२। यह सुन कर सूतजी शोक-मोह का नाश करने वाली एवं तत्व-  
ज्ञानमयी उस वार्ता का बरेनि पुनः करने लगे ।२३। सूतजी ने कहा—  
फिर उन राजागण के विज्ञासा करने पर अनन्त ने तपस्या के द्वारा  
माया का निवारण और इन्द्रियों के निग्रह का प्रसग कहा ।२४। ॥  
बोला— मैं वन में पुन जाकर विविवत तप करने लगा, तो भी अपनी  
इन्द्रियों और मन का निग्रह नहीं कर पाया ।२५।

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्यापुत्रघनादिकम् ।  
विषयचान्तरा शश्वत्सस्मारयति मे मनः ।२६।  
तेषा स्मरणामात्रेण दुखशोकभयादयः ।  
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशका ।२७।  
ततोऽह निश्चितमतिरिन्द्रियाणांच धातने ।  
मनसो निग्रहस्तेन भविति न सशय ॥२८॥  
अतो मार्मिन्द्रियाणाऽच निग्रहव्यग्रचेतसम् ।  
तदविष्ठानुदेवाश्च दृट्वा मामीयुरञ्जसा ।२९।  
रूपिणो मामथोचुस्ते भोडनन्त ! इति ते दश ।  
दिग्व तार्कप्रचेतोऽश्विन-दन्हीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥

मैं जब-जब ब्रह्म का ध्यान करने में तत्पर होता, तब-तब ही  
मुझे स्त्री, पुत्र, घनादि की बातें स्मरण हो आनी और मेरा ध्यान भग हो  
जाता ।२१। इस प्रकार स्त्री, पुत्र तथा घनादि का स्मरण होते ही मेरा  
अन्तरात्मा दुख, शोक और भय आदि से ब्याकुन हो जाता । इस प्रकार  
ध्यान में बाधा उपस्थित हो गई ।२२। मैंने पुनः यह विचार करके कि  
इन्द्रिय-निग्रह से मन भी वश में हो जायगा, इन्द्रियों के निग्रह का ही  
संकल्प किया ।२३। ऐसा संकल्प करके जब मैं इन्द्रियों के दमन में तत्पर  
हुआ, तब इन्द्रियों के अविष्ठानु देवता मेरी ओर ताकने लगे ।२४। तब  
दशो इन्द्रियों के अविष्ठानु देवताओं ने साक्षात् प्रकट होकर मुझसे कहा--

हे प्रमन्त ! हम दिशा, वात, प्रचेना, अशिवद्वय, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र देवता हैं । ३०

इन्द्रियाणां वर्यं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।

तस्माग्रकाण्डसभिन्नात्तास्मान्कर्तुं मिहाहूंसि । ३१

न श्रयो हि तवानन्त ! मनोनिग्रहकर्मणि ।

छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नममर्मा मरिष्यसि । ३२।

अन्वानां ब धिराणाच विकलेन्द्रियजीविनाम् ।

वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे । ३३।

जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेह मनोऽनुग ।

बुद्धिभर्या तदनुगा वयमित्यवधारय । ३४।

कर्मायतस्य जोवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।

संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया । ३५।

हम दश इन्द्रियों के अधिष्ठात्रृ देवगण तुम्हारे देह में स्थित हैं ।

हमको नवाग्र से लिङ्ग-भिन्न करना सर्वथा अनुचित है । ३१। इस प्रकार मन को वश करने के प्रयत्न में तुम्हारा क्लयाण नहीं होगा । इन्द्रियों के छेदन-भेदन से मर्म-स्थल आहत हो जायगा तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी । ३२। अथे, वहरे प्रथमा विकल इन्द्रियों वाले जीव भी निर्जन वन में वास करते हुए विषयासक्त दिखाई देते हैं । ३३। जीव रूपी गृहस्थ का घर यह देह ही है तथा मन की अनुगता बुद्धि ही इसकी भार्या है । इस प्रकार हम सभी उस बुद्धि रूपी भार्या के ही अनुगत रहते हैं । ३४। सभी जीव अपने कर्म के वश में हैं । मोक्ष और बधन आ कारण मन है । प्रभु-माया का प्रनुगत हुआ मन ही इस लेलुप प्राणी को भवचक में डालता रहता है । ३५।

तस्मान्मनोनिग्रहाथं विषणुभक्तिं समचरा ।

सुखमोक्षप्रदा नित्य दाहिका सर्वकर्मणास् ॥ ३६॥

द्वैताद्वै तष्ठदमुद्दन्स न्दोहा हरिभक्तिको ।

रिभक्त्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ॥ ३७॥

परं प्राप्तस्य सि निर्वाण कल्केरालोकनात्त्वया ।

इत्यह बोधितस्तेन भवत्वा सपूज्य केशवम् । ३८।

कल्कि दिदृक्षुरायात् कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥३९॥

दृष्ट रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तपदपल्लवः ।

अपदस्य श्रूत वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः । ४०।

इसलिए यदि मन का निप्रह करना है तो भगवान् विष्णु की भक्ति करो। क्योंकि वही सब कर्मोंकी दाहिना और मोक्ष-सुख के देने वाली है ॥२६॥ हरि-भक्ति ही द्वैत-शैष्ठ का ज्ञान एव आनन्द और अन्दोह के देने वाली है, उसी के द्वारा जीवकोष का दमन सभव है । २७। कल्कि भगवान् के दर्शन करने से ही तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे। अरमहस का यह उपदेश सुनकर मैं भक्ति सहित भगवान् केशव का पूजन करके कलिकुलनाशक कलिकरूप श्रीकृष्ण के दर्जनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ । २८-२९। यहीं धाकर निराकार ईश्वर के रूप का मुझे दर्शन हुआ । ३०। चरण-रहित परमात्मा के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ और वाच्य प्रभु की वाणी सुनाई दी । ४०।

इत्यनन्तः प्रमुदितः पदमानाथ निजेश्वरम् ।

कल्कि कमलपत्राक्ष नमस्कृत्व यथौ मुनिः ॥४१॥

राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवी गता ।

कलिकमस्यचर्च्य पदमाङ्चा नमस्कृत्य मुनिव्रता ॥४२॥

भ्रान्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्त-नाशिनीम्

मायानियन्त्री प्रपठञ्च्छृण्वन्वन्धादिमुच्यते ॥४३॥

सप्ताराब्धि-विलासलालसमति, श्रीविष्णुसेवादरो

भक्त्याख्यानमिद स्वभेद-र्हातं निर्माय धर्मतिमना ।

ज्ञानोल्लास-निशात-खङ्गमुदित, सदभक्ति-दुर्गश्रियः

षड्वर्गजयतादशेषजगतामात्मस्थित वैष्णव ॥४४॥

यह कह कर प्रत्यन्त हृषित हुए मुनिवर अनन्त पदमपत्राक्ष एवं पत्राक्ष के परिभर भगवान् कल्कि को नमस्कार करके वहाँ से चले गये । ४१।

मुनिवर अनन्त के इन वचनों को सुन कर राजाओं ने भी उनके ही समान व्रतादि का अनुष्ठान किया और पदमा सहित भगवान् कल्कि का पूजन करके निर्वाण-पदवी को प्राप्त हुए । ४२। शुक दोस्ता—अनन्त की इस कथा के पठने से अज्ञान रूपी अधकार दूर होता तथा मव-माया से छुटकारा होकर ससार-बधन से मोक्ष की प्राप्ति होती है । ४३। जो घर्मत्मा पुरुष विष्णु की सेवा तत्पर रह कर भी वासना जनित भवसिन्धु में गोते लगाते रहते हैं, वे इस प्रसग के द्वारा घर्मेद-ज्ञान स्वरूप उल्लङ्घित हुई तीक्ष्ण तलवार को धारण करके, हरि-भक्ति रूपी दुर्ग के आश्रय में स्थित हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य रूप अपने छ ओ शत्रुओं पर विजय प्रस कर लेते हैं ॥ ४४॥

द्वितीयांश—

## षष्ठम् अध्याय

गते नृपगणो कलिक; पदमया सह सिहलात् ।  
शम्भलगाम-गमने मर्ति चक्र स्वसेनया ॥१॥  
तत कल्केरभिप्राय विदित्वा वासवस्त्वरन् ।  
विश्वकर्माणगमा॑हूय वचनञ्चोदमब्रवीत् ॥२॥  
विश्वकर्मञ्चम्भलेत्वं गृहोद्यानाटु-घट्टिनम् ।  
रत्नस्फटिक-वैदूर्यं नानामणि-विनिमिते ।  
तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥४॥  
श्रुत्वा हरेवंचो विश्वकर्मा शर्म निज स्मरन् ।  
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखानुगृहात् ॥५॥

सूतजी बोले—फिर जब वे राजागण चले गए तब भगवान् कलिक ने पदमा और सेना के सहित सिहलद्वीप से प्रस्थान करने का विचार किया ।१। जब इन्द्र ने उनका यह अभिप्राय जाना, तब उसने उसी समय विश्वकर्मा को अपने पास बुला कर कहा ।२। इन्द्र बोला—हे विश्वकर्मन् ! तुम सम्भल ग्राम में जाकर स्वर्ण से पट्टालिकाघो से युक्त सुन्दर भवन और उद्यान आदि का निर्माण करो और उन्हे रत्न, स्फटिक तथा वैदूर्यादि विविध प्रकार की मणियों से जड़ कर अपना शिल्प-नैपुण्य दिखाओ ।३-४। इन्द्र के वचन सुन कर विश्वकर्मा अपना कल्याण जानता हुआ शम्भल ग्राम पहुंचा और वहाँ उसने पदमापति के निमित्त स्वस्ति आदि मगल चिन्हों से यूक्त सुन्दर भवनादि का निर्माण किया ।५।

हससिहसुपण्डिमुखाश्चक्रे स विश्वकृत् ।

पर्यंपरि तापचनवाताथनमनोहरान् ।६।  
 नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः ।  
 शम्भलञ्च्चाभवत्कत्केर्थेन्द्रस्यामरावती ।७।  
 कल्किस्तु सिहलादद्वीपादब्रह्मः सेनागणैर्वृत्ते ।  
 त्यक्त्वा कारुमती कूले पाथोधेरकरोत्स्थितम् ।८।  
 बृहद्द्रस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।  
 पद्मया सहितायास्म पद्मनाथाय विष्णुवे ।९।  
 ददौ गजानामयुत लक्ष मुख्यञ्च वाजिनाम् ।  
 रथानाञ्च द्विसाहस्र दासीना द्वे शता मुदा ।१०।  
 दत्त्वा वासासि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।  
 तथोमुखालोकनेन नाशकत्किवदीरितुम् ।११।

हस, सिह, गड़ आदि की आकृति से युक्त अनेक प्रकार के गृह बनाये गये। अनेक भवनों में कई-कई मजिने बनाइ गईं और गर्भों का ताप शान्त करने के लिए मनोहर वानायन तिर्पति किये गये।६। विविध प्रकार के बन, लताप्रो से युक्त उद्यान, सगोवर और वावडी आदि से समन्वित होने के कारण वह शम्भल ग्राम अमरावती के समान शोभा पाने लगा।७। इतर भगवान् कल्कि सेना के सहित मिहन द्वीप की कारु-मनी नगरी से निकल कर समुद्र तट पर आये।८। अरनी रानी कौमुदी के भाथ राजा बृहद्रथ स्नेह से कातर हो गया और उसने पद्मा सहित पद्मानाथ को दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े, दो हजार रथ, दो सौ दासियाँ और विविध प्रकार के वस्त्र-रत्नादि भक्ति सहित दिये और ग्रांखों में स्नेह के आँसू मर कर प्रपनी पुत्री और जामाता को अपलक देन्ते रहे।९-११।

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थांच्य पुनरागतौ ।  
 पूजितौ कल्किपद्माभ्या निजकारुमती पुरौम् ।१२।  
 कल्किस्तु जलधेरभ्यो विगाह्य पतना गणै ।  
 पार जिगमिषु दृष्ट्वा जम्बुक स्तुम्भिताऽभवत् ।१३।

जलस्तम्भमथालोक्य कलिक् सबलवाहन ।

प्रयथो पद्मा राशेषुगरि श्रीतिकेतन, १६।

गत्वा पार शुक् प्राह याहि मे शम्भलालयम् ।१५।

फिर राजा वृद्धश ने अपनी पुत्री और जामानी का पूजन कर उन्हे विदा किया और म्वयं अपनी काशमती नगरी मे नीट गया ।१२। फिर कलिक्जी ने सेना के सहित समुद्र के जल मे स्नान किया और तभी वहाँ एक श्रूगाल उस स्तम्भिन हए जन पर होता हुआ पार चला गया ।१६। जब कलिक्जी ने जल को इम प्रकार स्तम्भित हुआ देखा तो वे अपनी मेना और वाहनादि के महित समुद्र के जन पर चलते हुए पार हो गये ।१४। समुद्र के पार पहुँच कर उन्होंने शुक के प्रति कहा —हे शुक ! तुम शम्भल ग्राम स्थित मेरे घर पर जाओ ।१५।

विश्वकर्मकृत यत्र देवराजाजया बहु ।

सद्म सम्बाधमल मत्पियार्थ सुशोभनम् ।१६।

तत्रपि पित्रोज्ञतीनां स्वभित ब्रूया यथोचितम् ।

यदवाज्ञ । विवाहादि सर्वं वक्तु त्वमर्हति ।१७।

पश्चाद्यामि वृत्स्त्वेकस्त्वम्।दौ याहि शम्भलम् ।१८।

कलकेर्वचनमावर्यं कीरो धीरगततो यथो ।

आकाशगामी सर्वज्ञं शम्भल सुरपूजितम् ।१९।

सप्तदोजनविस्तोर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।

सूर्यं दिमपूतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ।२०।

देवराज इन्द्र की आज्ञा से मेरा प्रिय करने के लिए वहाँ विश्वकर्मा ने घनेको शोभा सम्पन्न भवनो का निर्माण किया है ।१६। तुम वहाँ जाकर मेरे माता-पिता और जाति-बन्धुओ को मेरा कुशल समाचार देकर विवाहादि का प्रसंग उन्हे बताना ।१७। तुम आगे-आगे शम्भल ग्राम पहुँचो, मैं भी सेना सहित पीछे पीछे अर रहा हूँ ।१८। कलिक्जी के वचन सुन कर वह शीर शुक आकाश मार्ग से होता हुआ शीघ्र ही शम्भल ग्राम

मे जा पहुचा ।१६। सात योजन विस्तार वाले उस शम्भल ग्राम मे चारो वर्ण निवास करते हैं । वहाँ सूय किरणो के समान चमचमाते हुए सैकड़ो प्रासाद सुशोभित हैं ।२०।

सर्वतुंसुखद रम्य शम्भल विह्वलोऽविशत् ।२१।

गृहाद्गृहान्तर हृष्ट्वा प्रासादपि चाम्बरम् ।

वनाद्ववनातर तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तर व्रजन् ।२२।

शुक. स विष्णुयशशः सदन मुदितोऽव्रजत् ।

त गत्वा स्त्रिरालापै कथयित्वा प्रिया कथा ।२३।

कलकेरागमन प्राह सिहलात्पदमया सह ।२४।

ततस्त्वरनिविष्णुयशाः समानोर्धप्रजाजनान् ।

विशाखयूपभूपाल कथयामास हर्षित ।२५।

सब श्रृतुओ में समान सुख देने वाले सुरम्य शम्भल ग्राम को देखते ही विह्वल हुए शूक ने उसमे प्रवेश किया । वह वहाँ एक घर से दूसरे में, प्रासाद के पागे से आकाश में, एक उद्यान से अन्य उद्यान मे तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर विचरने लगा ।२१-२२ इस प्रकार ह ष-विह्वल शूक विष्णुयशजी के घर में जाकर अपनी मधुर वाणी में उन्ही सम्पूर्ण प्रिय कथा सुनाने लगा ।२३। तथा पदमा के सहित भगवान् कलिक के आगमन को समाचार सुनाया ।२४। यह सुनते ही विष्णुयश हर्ष से पुलकित हो उठे और उन्होने विशाखयूप-नरेश आदि राजाओ और प्रजाजनो को वह सब समाचार सुना दिया ।२५।

स राष्ट्रा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम् ।

स्वर्णकुम्भै सदम्भोमि पूरितैश्चन्दनोथितं ।२६।

कालागुरुसुगन्धाद्यैर्दीपलाजाङ्कराक्षते ।

कुसुमै सुकुमारेश रम्भा-पूग-फलान्विते ।

शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधाना मनोहरः ।२७।

त कलिकः प्राविशादभीष-सेनागण-विलक्षण ।

काभिनी-नयनानन्दमन्दिराग कृपानिधि: ।२६।  
 पदमया सहित पित्रोः पदयो. प्रणतोऽपतत् ।  
 सुमतिमुदिता पुत्र स्नृषा शकं शचीभिव ।  
 दद्वशे त्वमरावत्या पूर्णकामा दिति सती ।२७।

तब विशाख्यूप-नरेश ने चन्दन युक्त जल को स्वर्णकलश में भरवा कर नगर और ग्राम में उससे छिड़काव कराया ।२६। उस समय वह शशभल ग्राम दीपमाल, पुष्पो, प्रगर आदि सुगचित द्रव्यो, कदली, पुरीफल, नवीन किसलय, अक्षत तथा ताम्बूल आदि से समन्वित होकर देवताओं की पुरी के सामान मनोऽन्दर दिखाई देने लगा ।२७। इसी अवसर पर स्त्रियों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् कलिक अपनी सेना आदि के सहित ग्राम में प्रविष्ट हुए ।२८। भगवान् कलिक ने पदमा के सहित अपने माता पिता के चरणों में प्रणाम किया । जैसे इन्द्र और शंखी को प्रणाम करते देख कर दिति की आनन्द हुआ था, वैसे ही सुमति भी अपने पुत्र और पुत्रवधू को देख कर पूर्ण मनोरथ एवं म्रत्यत हृषित हुई ।२९।

शम्भलग्राम नगरी पताका ध्वज-शालिनी  
 अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।  
 मयूरचूचका हस-सघहारमनोहरा ।३०।  
 पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्तना ।  
 सहासगोपुरमुखो वामनेत्रा यथांगना ।  
 कलिक पति गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ।३१।  
 स रेमे पदमया तत्र वष्टपूर्णानजाश्रय ।  
 शम्भले विह्वलाकारः कलिकः कल्कविनाशन ।३२।  
 कवे: पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनी ।  
 वृहत्कीर्तिवृहदवाहू महाबल पराक्रमौ ।३३।  
 पाज य सन्नतिर्भार्या तस्या पुत्रो बभूवतु ।

यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ । ३४।

सुमन्त्रकस्तु मालिन्या जनयामास शासनम् ।

वेगवन्तञ्च साधूना द्वावेतावुपकारकौ ॥३५॥

शम्भल ग्राम नामक वह नगरी ध्वजा-पताका से युक्त उन्नत प्रामादो वाली, मधूर, हसादि से सुशोभिता, सुगन्ध-धूम-वसना कोकिल के समान मधुरालाप युक्ता तथा कामिनी के समान सर्व प्रकार सजी हुई थी । वह कलिकजी को पति रूप में प्राप्त कर प्रत्यक्ष शोभामयी हो गई । ३०-३१। वे अग्नमा, सर्वश्रिय रूप एव कलि-विनाशक कलिकजी अनेक वर्ष तक शम्भन में रह कर पद्मा के साथ बिहार करते रहे । ३२। तदनन्तर कवि की पत्नी कामकला ने दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम बृहत्तर्तीति और बृहदबाहु हुए । यह दोनों अन्यन्त बली और पराक्रमी थे । ३३। प्राज्ञ की भार्या सुमति ने ब्रितेन्द्रिय और सर्वनोक पूजि, यज्ञ और विज्ञ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये । ३४। सुमति की पत्नी मालिनी ने शासन और वेगवान् नामक दो पुत्रों को जन्म दिया । यह दोनों साधुजनों का उपकार करने वाले हुए । ३५।

तद्वौतः कलिकश्च पद्माया जयो विजय एव च ।

द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥३६॥

एते परिवृतोऽमात्ये सर्वसम्पन्समन्तितौ ।

वजिमेधविधानार्थं मुद्यत पितर प्रभु । ३७।

समीक्ष्य कलिक प्रोवाच पितामहैनिवेश्वरर ।

दिशा पाला निविजित्याह धनान्यहृत इत्युत । ३८।

कारविष्वाम्याश्वर्मेध यामि दिविजयाय भो ! । ३९।

इति प्रणम्य त प्रीत्या कलिक पटपुरञ्जयः ।

सेनागणैः परिवृतः प्रवयौ कोकट पुरम् । ४०।

कलिकजी की पत्नी पद्मा ने जय, विजय नामक दो पुत्र प्रसव किये । यह दोनों महाबली तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुए । ३६। इस प्रकार उनका परिवार पुत्रवान् और सर्व ऐश्वर्यं सम्पन्न हो गया । फिर कलिक

जी ने अपने पिता को अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान में ब्रह्माजी के समान तत्पर देखकर कहा—हे पिताजी ! मैं दिक्षालोकों को जीत कर घन एकत्र कहूँगा, जिससे आपका अश्वमेव यज्ञ सम्पन्न होगा । अब मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ । ३७-३९। शत्रु-पुर पर विजय प्राप्त करने वाले कलिकजी ने यह कह कर प्रमन्ततापूर्वक अपने पिता को प्रणाम किया और सेना को साथ लेकर कीकटपुर की ओर चल दिये । ४०।

बुद्धालय सुविपुल वेदधर्मविहृष्टतम् ।

पितृदेवार्चनाहीन परलोकविलोपकम् । ४१।

देहात्मावादवहल कुलजातिविवजितम् ।

धने स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेददर्शिनम् । ४२।

नानाजनैः परिवृत पानभोजनतत्परैः । ४३।

श्रुत्वा जिनो निजगणै कल्केरागमन कुधा ।

अक्षोहिणीम्या सहित् सबभूव पुरादबहिः । ४४।

गजरथतुर्गं समाचिता भू कनक विभूषणभूषितवराङ्गं ।

शत शतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रैः । ध्वजपटराजि-

तिवारितपैर्वभौ सा ॥४५॥

प्रथम्न विस्तार वाला कीकटपुर बीड़ों का निवास स्थान था । यहाँ रहने वाले व्यक्ति वैदिक धर्म तथा देवता और पितरो के अर्चन से हीन और परलोक के न मानने वाले थे । ४१। यह लोग देहात्मवादी, कुल धर्म और जाति धर्म के न मानने वाले तथा घन, स्त्री और भोजनादि मे अभेद देखने वाले थे । ४२। पान एव भोजन मे ही व्यस्त रहने वाले विविध प्रकार के मनुष्यों से ही यह नगर परिपूर्ण था । ४३। वहाँ के अतिपिति जिन ने जब युद्ध के अभिप्राय से सेना रहित कलिकजी का आगमन सुना तो वह प्रतीकारार्थ दो प्रक्षोहिणी सेना को लेकर नगर से बाहर आया । ४४। असल्य हाथी, रथ, अश्व स्वर्ण के आभूषणों से भूषित श्रेष्ठ रथी और शक्तास्त्रधारी वीरों से पृथिवी ढक गई । सेनाओं के द्वजों से धूप भी रुक गई । ४५। —३—

द्वितीयांश—

## सप्तम अध्याय

ततो विष्णुः सर्वजिष्णु कल्कि कल्कविनाशनः ।  
कालयामास ता सेना करिणीमिव केसरी ॥१॥  
सेनागना ता रत्सगरक्षती रक्ताक्तवस्त्रा  
विवृतोरुमध्याम् । पलायती चारुविकीर्णकेशा  
विकूजती प्राह स कल्किनायकं ॥२॥  
रे बौद्धा ! मा पलायध्व निवर्त्तध्व रणाङ्गणे ।  
युध्यध्व पौरुष साधु दर्शयध्व पुनर्मम ॥३॥  
जिनो हीनबल कोपात्कलकेराकर्ण्य तद्वचं ।  
प्रतियोदधु वृषारुढः खञ्जचर्मधरो ययौ ॥४॥  
नाना प्रहरणोपेतो नानायुधविशरद  
कलिना युयुधे धीरी देवाना विस्मयावहः ॥५॥

सूतजी बोले—जैसे यिह हथियो पर आक्रमण करता है, वैसे ही पाप का नाश करने वाले तथा सब विजेता कलिकजी ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया ॥१॥ युद्ध सघिर रूपी वस्त्रो का धारण करने वाली विवृत ऊरु सम्पन्ना, विकीर्ण केशा प्रलाप करती हुई अर्थात् हाहाकार करती हुई, रति युद्ध में आहत नारी के समान भागने वाली उस सेना से कलिकजी ने कहा ॥२॥ अरे बौद्धो ! तुम इस युद्ध स्थल से मत भागो । आश्रो, लौट आश्रो और अृपना पौरुष दिखाने मे पीछे न हटो ॥३॥ कलिक की बात सुन कर बल से हीन हुआ जिन क्रोध पूर्वक चर्म की तलवार लेकर युद्ध करने के लिए उनके समझ आया ॥४॥ विविध प्रकार के युद्धो मे विशारद जिन कलिकजी से युद्ध करने लगा । उसका रणचातुर्य देख कर देवता भी आश्चर्य करने लगे ॥५॥

शूलेन तुरण विद्वा कलिक बाणेन मोहयन् ।  
 क्रोडीकृत्य द्रुत भूमेर्नाशकतोलना दृत ।५।  
 जिनो विश्वम्भर ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः ।  
 चिच्छेदास्य तनुत्राण कल्के; शस्त्रञ्च दासवत् ।६।  
 विशाख्यूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।  
 मूर्च्छित कलिकमागाय लीलया रथमारुहत् ।७।  
 लब्धसज्जस्तथा कलिकं सेवकोत्साहदायक ।  
 समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ।८।  
 शूलव्यथा विहायजौ महासत्वस्तुरज्ञम्  
 रिगणैर्भ्र्मणै पादविक्षेपहननैमुर्हुः ।९।  
 दण्डाधात्. सटाक्षेपंबौद्धसेनागणान्तरे ।  
 निजघान रिपून्कोपाच्छतशोऽथ सहस्रश ।११।

उसने अपने शूल से अश्व को विद्ध कर दिया तथा बाण से कलिकजी को समोहित कर अक मे भरने लगा, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली ।८। जिन न कलिक को विश्वभर रूप जान लिया और क्रोध पूर्वक नेत्रों से उन्हे वदी के समान देखना हुआ, उसने उनके शस्त्रास्त्र और कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया ।९। यह देख कर विशाख्यूप-नरेश ने अपनी गदा से जिन को आहत कर दिया और लीला पूर्वक मूर्च्छित हुए कलिकजी को लेकर रथ पर चढ़ गये ।१। जब उन्हे चेत हुआ, तब वे भक्तों को उत्साह देने वाले कलिकजी राजा के रथ से उत्तर कर जिन के सामने पहुँचे ।१। कलिकजी का अश्व भी शूल की वेदना को भूल कर युद्धभूमि मे कूद पड़ा और धूमता हुआ पदाधात्, दन्ताधात्, केशधात् आदि के द्वारा बौद्ध सेना के हजारों वीरों को क्रोधपूर्वक मारने लगा ।१०-११।

निश्वासवातेरुद्डोय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।  
 . हरत्याश्वररथसवाधा; पतिता रणमूर्द्धनि ।१२।

गर्यो जधनु षष्ठिशत भर्ग्यं कोटिशतायुतम् ।  
 विशालास्तु सहस्राणा पचाविंश रणे त्वरन् । १३।  
 अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्या सद्वितः कवि ।  
 दशलक्ष तथा प्राज्ञ पञ्चलक्ष सुमन्त्रक । १४।  
 जिन प्राह हन्सकल्किस्तिष्ठाग्रे ममदुर्मते ! ।  
 दैव मा विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् । १५।

अश्व के भयंकर श्वास से उड़ कर कोई-कोई वीर तो अन्य द्वीपों  
 में जाकर गिर गये तथा कुछ वीर गज, अश्व एव रथादि से टक्कर खा  
 कर युद्ध स्थल में ही धराशायी हो गये । १२। गर्यं ने अपने अनुगामियों  
 को साथ लेकर बौद्धों की छ. हजार सेना का सहार कर दिया । भर्ग्यं  
 और उसकी सेना ने दस हजार सेना मार दी तथा विशाल  
 और उसकी सेना ने पच्चीस हजार सेना नष्ट कर डाली । १३। कवि और  
 उमके दोनों पुत्रों ने बीस सहस्र सैनिक मार डाले । प्राज्ञ ने इस लाख  
 और सुमन्त्रक ने पाँच लाख सेना का सहार कर दिया । १४। फिर जिन  
 को भागता देख कर कलिकंजी ने हँस कर उससे कहा-अरे दुर्मते । भाग  
 कर न जा । तू मुझे अदृष्ट स्वरूप एव सभी शुभाशुभ फलों का देने वाला  
 समझ कर मेरे सामने आ । १५।

मदबाणजालभिन्नाङ्गो नि.सङ्गो यास्वसि क्षयम् ।  
 न यावत्पश्य तावत्व बन्धूना ललित मुखम् । १६।  
 कलकेरितीरित श्रुत्वा जिन ग्राह हसन्वली ।  
 देव त्वदृश्य शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृतः ।  
 प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वय यूय वृथाश्रमाः । १७।  
 यदि वा देवरूपस्त्व तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।  
 यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते । १८।  
 सोपालम्भ त्वया ख्यातं त्वयेवास्तु स्थिरो भव ।  
 इति क्रोधाद्वाद्वाजालैः कल्कि धोरैः समावृणोत् । १९।

स तु बाणमर्य वर्षा क्षय निर्येऽकवद्धिमम् ।२०।

तू मेरे बाणो से आहत होकर अभी परलोक को प्राप्त होगा । तब तेरा साथ कोई भी नहीं देगा । इसलिए अब तू अपने बधु-बाधियों का सुन्दर मुख देख ले । १६। कलिकजी के वचन सुन कर वह बली जिन हँसा हुआ बोला—अदृष्ट कभी प्रमक्ष नहीं हो सकतः । हम बौद्ध गण प्रत्यक्षके श्रतिरिक्त अन्य कुछभी नहीं मानते । हमारा शास्त्र कहता है कि हम अदृष्ट को नष्ट कर देंगे । १७। यदि तुम दैव रूप हो तो हम तुम्हारे सामने खड़े हैं । यदि तुम हमें बाण से आहत करोगे तो क्या बौद्ध गण तुम्हे छोड़ देंगे । १८। जो तुम हमारे प्रति तिरस्कार के वचन कहते हो, वे वचन तुम पर ही लौट जाएँगे, अब तुम सावधान होजाओ । यह कह कर जिन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से कलिकजी को समावृत्त कर दिया । १९। जैसे सूर्य के टिक्काई देने पर हिमपात नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही जिन द्वारा की गई बाण-वर्षा कलिकजी के स्पर्श से क्षीण होने लगी । २०।

ब्राह्म वायव्यमाग्नेय पार्जन्य चान्यदायुधम् ।

कल्के दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवक्षणात् ।२१।

यथोपरे बीजमुष्ट दानमश्रोत्रिये यथा ।

यथा विष्णौ मता द्वषाद्भक्तियेन कृताप्यहो ।२२।

कलिकस्तु त वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।

ततस्त्रौ पेननुभूमी ताम्रचूडाविव कुधा ।२३।

पतित्वा स कलिककच जाग्राह कत्कर करे ।२४।

तत् समुत्थितौ व्यग्रौ वया चाणारकेशवौ ।

धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ ।

युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ।२५।

जिन द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्र, वायव्या, ग्राग्नेयास्त्र, मेषास्त्र और अन्यान्य सभी अस्त्र कलिकजी के दर्शन मात्र फल-हीन हो गये । २६। जैसे

ऊपर मे बीज बोने पर भी अन्न उत्पन्न नहीं होता तथा अश्रोत्रिय को दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है, अथवा साधुजनों का अनिष्ट चाहते वालों की हरि-भक्ति फलवती नहीं होती, वैमे ही 'जिन' के सभी अस्त्र निष्फलता को प्राप्त हो गये । २२। फिर कलिकजी ने उछल कर वृषभ पर चढ़े हुए जिन के केश पकड़ लिए तथा दोनों ही पृथिवी क्रोधपूर्वक अरुण ज्वाल-शिखा के समान युद्ध मे गुंथ गये । २३। धरती पर गिरे हुए जिन ने भी अपने एक हाथ मे कलिकजी के केश और दूसरे से हाथ पकड़ रखे थे । २४। फिर जैसे चारांग और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ था, उसी प्रकार दोनों पृथिवी से उठ कर परस्पर केश और हाथ पकड़ कर निरस्त्र उसी प्रकार लड़ने लगे, जैसे दो महाबली रीछ परस्पर मे युद्ध करते हैं । २५।

तत् कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।  
 विभज्य पातयामास ताल मत्तगच्छो यथा । २६।  
 जिन निपतित वृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चक्रुशु ।  
 कलकेः सेनागणा त्रिप्रा जहृषु निहतारथ । २७।  
 जिने निपतिते भ्राता तस्या शुद्धोदनो बलो ।  
 पदाचारी गदापाणिं कलिक हन्तु द्रूत ययौ । २८।  
 कविस्तु त बाणवर्णै परिवार्य समन्ततः ।  
 जगज्ज परवीरधनो गजमावृत्य सिहवत् । २९।  
 गदाहरत तमालोक्य पति स धर्मवित्कवि ।  
 पदातिगो गदापाणिस्तथौ शुद्धादनाग्रत । ३०।

जैसे मदमत्त गजराज ताल के वृक्ष को उखाड़ कर धराशायी कर देता है, वैसे ही कलिकजी ने पदाघात करके जिन की कमर तोड़ कर उसे धरती पर गिरा दिया । २६। हे विप्रो ! उसको धराशायी हुआ देख कर बौद्ध सेना हाहाकार कर उठी तथा शत्रु का सहार हुआ देख कर कलिक-सेना हर्षित हो गई । २७। जिन को युद्ध स्थल मे गिरा देखते ही उसका भाई बलवान् शुद्धोदन गँदा लेकर कलिकजी को मारने के लिए

पैदल ही उन पर झटपटा । २८। हाथी पर सवार शत्रु-नाशक कवि ने शुद्धोदन को बाएँ से ढक दिया और सिंहबत् गर्जन करने लगे । २९। घर्मविद् कवि ने शुद्धोदन को गदा लिए पैदल ही युद्ध करते देखा तो वह भी पैदल ही उसके सामने जा डटे । ३०।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रम ।

गज प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदाबुभौ । ३१।

युयुधाते महावीरौ गदायद्ध विशारदौ ।

कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान् नवान् । ३२।

कविस्तु गदया गुव्या शुद्धोदनगदा नदन् ।

करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् । ३३।

गदाघातेन निहतो वीरं शुद्धोदनो भुवि ।

पतित्वा सहसोत्थाय त जघने गदया पुन । ३४।

सताङ्गितेन तेनापि शिरसा स्तम्भित कवि ।

न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुविद्व्वलेन्द्रिय । ३५।

जैसे हाथी शत्रु के हाथी से दाँतों के द्वारा युद्ध करता है, वैसे ही गदाघारी कवि और महापराक्रमी शुद्धोदन गदा-युद्ध में रत हो गए। युद्ध-मत्त दोनों वीर भयकर शब्द करते हुए परस्पर गदाओं को रोकने लगे । ३१-३२। फिर सिंहनाद करते हुए कवि ने अपने गदाघात द्वारा शुद्धोदन की गदा गिराई और फिर तुरन्त ही उसके हृदय पर पदाघात किया । ३३। गदाघात को प्राप्त हुआ शुद्धोदन तुरन्त ही पृथिवी पर पड़ा तथा पुन सहसा उठ कर उसने कवि पर गदाघात किया । ३४। गदा लगने से कवि विकलेन्द्रिय और मूर्छित के समान खड़े हो गये, परन्तु पृथिवी पर गिरे नहीं । ३५।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासार रथायुर्तः ।

प्रावृत तरसा माया-देवीभानेतुमाययौ । ३६।

यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।

निःसारा. प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रया । ३७।

बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः ।

योद्धु समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृत्ताः । ३८।

सिहृष्वजोत्थितरथा फेरु-काक-गणावृताम् ।

सर्वास्त्रशस्त्रजननी षड्वर्गपरिसेविताम् । १६।

नानारूपा बलवती त्रिगुणाव्यक्तिलक्षिताम् ।

माया निराक्षय पुरत कल्किसेना समापत्तव् । ४०।

तब शुद्धोदन ने कवि को अत्यन्त पराक्रमी और रथ-सेना से सम्मन देख कर कर माया देवी आहवानाथ तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान किया । ३६। जिस माया देवी का दर्शन करते ही देवता, देत्य, मनुष्य आदि सभी सासारिक जोव तंजहीन और प्रतिभा के समान निश्चेष्ट हो जाते हैं, उसी को साथ लेकर शुद्धोदन आदि बौद्धगण अपने करोड़ो म्लेच्छ वीरों के सहित रणस्थल मे पहुँचे । ३७-३८। सिहृष्वजा वाले रथ पर माया देवी आरूढ हुई और उसने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रकट किये । कोए और शृगाल उस माया देवी को सब और से घेरे हुए थे तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—यह षड्वर्ग उसकी सेवा कर रहे थे । ३९। वह अनक प्रकार के रूप-धारण मे समर्थ, बल-वतो, त्रिगुणात्मिका माया देवी जैस ही कल्कि सेना के समक्ष पहुँची, व से ही उसे देख कर कल्कि-सेना क्षीणता का प्राप्त हो गई । ४०।

नि:भारा प्रतिमाकाराः समस्ता शस्त्रपाणायः । ४१।

कल्किस्तानालोक्य निजान्नातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।

मायया जायया जीर्णनिवभुरासीतदग्रतः । ४२।

तामालोक्य वरारोहा श्रीरूपा हरिरीश्वरः ।

सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विश्वहे ॥ ४३॥

तामनोलोक्य ते बौद्धा मातर कतिभ्रा वरः ।

रुदुं सघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ॥ ४४॥

कलिकजी के शस्त्रवारी वीरगण प्रतिभा के समान चेष्टाहीन तथा बलहीन होंगए । ४१। फिर कलिकजी ने जब अपने बन्धु, जाति-बाधव और सुहृदो को मायालिंगी अपनी पत्नी के द्वारा जोर्ण होते देखा तो वे उसके समक्ष पहुँचे । ४२। जैसे ही उन्होंने श्रीस्वरूपा अपनी उम प्रिया की ओर देखा, वैसे ही वह वरागोहा उनके देह से प्रविष्ट हो गई । ४३। तब अपनी उस माता माया देवी को न देख कर सभी प्रमुख बौद्ध बल पौरुष से रहित होकर रुदन करने लगे । ४४।

विस्मयाविष्टमनस कत्र गतेयमथाबृवन् ।

कलिक समालोकनेन समुत्थाप्य तिजाञ्जनान् । ४५।

निशात्मसिमादाय म्लेच्छाहन्तु मनो दये ।

सन्तदध तुरगारूड डट्हस्तद्धृतस्तरम् । ४६।

धनुर्निषङ्गमनिश बाणजालप्रकाशितम् ।

धृतहस्ततुत्राणगोवाङ्गुलि वराजितम् । ४७।

मेघोपर्युप्तताराभ दशनस्वर्णबिन्दुकम् । ।

किरीटकाटिविन्यस्त-मणिराजिविराजितम् । ४८।

कामिनोनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।

विपक्षपक्षविक्षेपक्षिस्त्रक्षटाक्षकम् । ४९। ।

निजभक्तजनोल्लास-सवासचरणाम्बुजम् । ।

निरीक्ष्य कलिक ते बौद्धास्तत्रसुर्धमनिन्दका । ५०।

माया को न देख वे आश्चर्य चकित होकर परस्पर कहने लगे कि माया देवी कहाँ चली गई ? इधर कलिकजी ने अपनी सेना पर दृष्टि डाली यो यह स्वस्थ और सचेत हो गई तथा म्लेच्छों का सहार करने की इच्छा से कलिकजी तीक्षण खग लेकर घोड़े पर सवार हुए । ४५-४६। उस समय बाणों से परिपूर्ण तरकश श्रेष्ठ धनुष, कञ्च एव अ गुलित्राण

था तथा किरीट के अग्रभाग में विविध प्रकार की जड़ी हई मणियाँ चमक रही थीं। ४८। कामनियों के नयनों को आनन्द देने वाले रस के सदन रूप कल्किजी उस समय शत्रु-पक्ष को विक्षिप्त करने के उद्देश्य से उनकी ओर कटाक्ष करने लगे। ४९। भक्तजन अपने भगवान् कल्किजी के चरणानन्दों का दर्शन करके उत्सुक हो उठे और धर्म-निन्दक बौद्धगण भय से काँपने लगे। ५०।

**जहृषुः सुरभद्राः खे यागाहुतिहताशना । ५१।**

सुबलभिलनहृषः शत्रुनाशंतकर्षं समरवरविलास  
साधुसत्कारकाश । स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य  
भर्त्ता रचयतु कुशल व. कामपूरगवतार । ५२।

यह देख कर आकाश में स्थित देवता कहने लगे कि अब युद्ध-भूमि रूपी यज्ञस्थल में स्थित अग्नि में पुन आहुति डाली जाने को है। ५१। जो अस्त्रशस्त्रो से सुसज्जित सेनाओं को इकट्ठी करके शत्रुओं को नष्ट करने वाले, लीलापूर्वक सग्राम में तत्पर साधुओं के सत्कार-कर्त्ता, स्वजनों के दुखों का विनाश एवं मब प्राणियों का भरण करने वाले हैं, वे सतों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले भगवान् कल्किजी सब प्रकार कल्याण करे। ५२।

॥ ११। द्वितीय अंश समाप्त ॥

तृतीयांश —

## प्रथम अध्याय

नतः कलिकम्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।

बाणैः सन्ताडितानन्याननयद्यमसादनम् ।१।

विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रका ।

गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युग्रमक्षयम् ।२।

कपोतरोमा काकाक्ष काककृष्णादयोऽपरे ।

बौद्धा शौद्धोदना याता युयुधु कलिकसैनिकै ।३।

तेषा युद्धमभूद्धोर भयद सवदेहिनाम् ।

भूतेशानन्दजनक रुधिरारुणकर्मम् ।४।

गजाश्वरथसघाना पतता रुधिरस्त्वैः ।

स्वतन्त्री केशगंवाला वाजिग्रहा सुगाहिको ।५।

सूतजी बोले—फिर कलिकजी ने कुछ म्लेच्छों को बाणों द्वारा बीध दिया और कुछ को तलवार से मार कर यम लोक मे भेज दिया ।१। विशाखयूपनरेश, कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्रक, गर्ग्य, भार्ग्य और विशालादि ने भी उन म्लेच्छों को यमरुरी पठाया ।२। फिर कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्ण और शुद्धोदन आदि बौद्ध योद्धागण कलिक-सेना से युद्ध मे तत्पर हुए ।३। उस धोर सग्राम को देख कर सभी प्राणी भयभीत हुए । रक्त युक्त लाल कीचड़ से रणभूमि ढक गई, यह देख कर भूतनाथ हर्षित हो उठे ।४। युद्धस्थल मे गिरे हुए हाथियो, ग्रहवो और रथियो के

रक्तपात से लोहित की नदी वह चली, जिसमें केश सिवार जैसे लगने लगे और अश्व रूपी ग्रह धार में प्रवाहित होने लगे ।५।

धनुस्तरज्ञा दुष्पारा गजरोधः प्रवाहिणी ।

शिर कूर्मा रथतरि. पणिमीनासृगापगा ।६।

प्रवृत्ता तत्र बृंधा हर्षयन्तो मनस्विनाम् ।

दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ।७।

गजैर्गजा नरैश्वरा. खरेष्टा रथै रथाः ।

निपेतुबर्णाभिन्नाज्ञा छिन्नबाह्वड्यिकन्धरा ।८।

भस्मना गुणितमुखा रक्तवस्त्रा निवारता ।

विकीर्णकेशाः परितो तान्ति सन्यासिनो यथा ।९।

व्यग्रा केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्य जल पुन् ।

कल्किसेनाशुगक्षुणणा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे ।१०।

उस लोहित नदी में धनुष तरण के समान उछलने लगे<sup>हुए</sup> और इस नदी में सेतु के समान लगते थे, कटे हुए शीश कछुओं के समान, रथ नाव के समान और कटे हुए हाथ मछली के समान दिखाई देते थे ।६। लोहित नदी के किनारे गीदडों और बाज पक्षियों की हर्ष ध्वनि दु दुभि की ध्वनि जै भी लगती थी । उसे देख कर मनस्वी लोग हर्षित हो रठे ।७। युद्ध क्षेत्र में हाथी सवार हाथी सवार से, अश्वारोही अश्वारोही से, ऊट वाला ऊट वाले से, रथ रथी से भिड़ा हुआ था<sup>रहा</sup> । उस समय बाणों से कट-कट कर हाथ, पाँव और मस्तक धरती पर गिर रहे थे ।८। बहुत से वीरों ने भर्यमीत होकर गेहूँ वस्त्र धारण कर, भस्म रमा लो तथा विकीर्ण केश होकर संन्यासी बन कर रोके जाने पर भी पलायन कर गये ।९। कोई-कोई विकल होकर भागा, कोई जल माँगता रहा । इस प्रकार कल्कि-सेना के बाणों की मार से कोई म्लेच्छ वीर सकुशल न रहा ।१०।

तेषा स्त्रियो रथारुढा गजारुढा विहङ्गमा ।  
 समारुढा हयारुढा खरोष्ट्रघृषवाहना ११।  
 योदधु समाययुस्त्यक्त्वा पत्यापत्यसुखाश्रयान् ।  
 रूपवत्योऽतिबलवत्य पतिक्रता १२।  
 नानाभरणभूषाढच्चा सन्त्वावा विशदप्रभा ।  
 खङ्गशक्तिधनुबर्गावलयाक्तकराम्बुजा १३।  
 स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पृश्चल्यश्च पतिक्रता ।  
 मयुर्योदधु कलिसैन्ये पतीना निधनातुरा १४।  
 मृदमस्मकाष्ठचित्राणा प्रभुताम्नायशासनात् ।  
 साक्षात्पतीना निधन कि युवत्योऽपि सेहिरे १५।

उन म्लेच्छों की रूपवती बलवती, पतिक्रना युवती स्त्रियों भी सन्तान-सुख की और उनके आश्रय की कामना छोड़ कर कोई रथ पर चढ़ कर, कोई हाथों पर चढ़ कर, कोई विहग पर चढ़ कर, कोई घोड़े, गधे, ऊँट पर, कोई बैल पर चढ़ कर युद्ध करने के लिए अपने-अपने पति के पास पहुँची । ११-१२। इन्होंने अनेक प्रकार के उज्जवल आभूषण एवं शस्त्रास्त्र धारण कर रखे थे । इनके हाथों में कड़ो के साथ ही खड़ग और बाण भी सुशोभित थे । १३। मुन्दर लावण्यमयी यह स्त्रियों कोई स्वैरिणी, कोई वार-विलासिनी अथवा कोई पतिक्रता थी । यह पति-विद्योग में व्याकुल हुई स्त्रियों कल्पिक सेना से युद्ध करने को अग्रसर हुई । १४। क्योंकि मनुष्य मिट्टी, काष्ठ एवं राख की वस्तु पर भी प्राण देने में तत्पर हो जाते हैं, इनी प्रकार अपने प्राण के समान पति का मरण सहन करना युवनियों के लिए भी सभव नहीं होता । १५।

ता स्त्रिय रवपतोन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।  
 कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कलिकसैन्यैवृत्तायुधा १६।  
 ताः स्त्रीरुद्धीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसा ।  
 कलिकमागत्य ते योधाः कथयामासराटरात । १७।

स्त्रीरामेव युग्रत्सूना कथा श्रुत्वा महामति ।  
 कलिक समुदित प्रायात्स्वसंयै सनुगो रथः ।१८।  
 ता. समालोक्य पद्मेश सर्वशस्त्रास्त्रधारिणी ।  
 नानावाहनसारुडा कृतव्यूहा उवाच सः ।१९।  
 रे स्त्रिय शृणुतास्माक वचन पथ्यमुत्तमम् ।  
 स्त्रिया युद्धे न कि पु सा व्यवहारोऽत्र विद्यते ।२०।

वे म्लेच्छ लियाँ अपने पतियों को बाणों मे बिधे हुए तथा व्याकुल देख कर उन्हे पीछे हटाती हुई हथियार लेकर कलिक सेना से युद्ध करने लगी ।१६। उन लियों को युद्ध मे तत्पर देख कर कलिक-सेना आशर्वय में पड गई और उसने कलिकजी के सपक्ष जाकर उन्हे सब वृत्तान्त सूचित किया ।१७। युद्ध की इच्छा वाली उन स्त्रियों का युद्ध करना मुन कर प्रसन्न हुए कलिकजी रथ पर चढ़ कर सेना और अनुचरों के सहित रणभूमि मे पहुचे ।१८। अनेक शस्त्रास्त्रों से सुमजिना, अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़ो हुई, व्यूह रचना करके युद्ध मे तत्पर उन स्त्रियों को देख कर कलिकजी बोले ।१९। कलिकजी ने कहा — हे स्त्रियो ! मैं तुम्हारे हितार्थ श्रेष्ठ वचन कहता हूँ, वह सुनो । लियों को पुरुषों के साथ युद्ध नहीं करना चाहिए ।२०।

इति कलिकर्वचं श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुराहता ।  
 अस्माक त्व पतीन् हृति तेन नष्टा वर्य विभो ! ।  
 हन्तु गतानामस्त्राग्नि कराण्येवागतान्युत ।२१।  
 खङ्ग-शक्ति घनुर्वार्ण-शूल तोमर-यष्टय ।  
 ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्तिः कातंरस्वरविभूषणाः ।२२।  
 यामासाद्य वय नार्यो हिसायाम् स्वजेतसा ।  
 तमात्मन सर्वमय जानीत कृतनिश्चया ।२३।  
 तमीशमात्मना नार्यः । चरामो यदनुज्ञया ।  
 यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम् ।२४।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।  
चर्त्तन्त यदधिष्ठानात्सोऽय कल्कि. परात्मक ।२५।

कलिकजी के वचन सुन कर म्लेच्छ-पत्तियाँ हँस पड़ी । उन्होंने कहा—हे विभो ! जब तुम्हारे द्वारा हमारे पति ही नाश को प्राप्त हो गये, तब हम भी नष्ट हो चुकी । यह कह कर वे नारियाँ कलिकजी की मारने की तव्यर हुई । उन्होंने जो अस्त्र छोड़ने चाहे, वे अस्त्र उनके हाथों में ही रुके रह गये । २१। खड़ग, शक्ति, धनुष-बाण, शूल, तोमर, यट्टि आदि शस्त्रास्त्रों के स्वर्ण-सज्जित देवता साक्षात् प्रकट हो कर उन म्लेच्छ-पत्तियों के प्रति बोले । २२। एव रूपी अस्त्रो ने कहा—हे नारियो ! हम जिस तेज के द्वारा जीवों का सहार करते रहते हैं, वह तेज हमें जिनसे प्राप्त हुआ है, वह सर्वमय ईश्वर यही है, यह समझ लो । २३। हे स्त्रियो ! हम इन्हीं परमात्मा की प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होते हैं तथा इनके द्वारा ही हम नाम-रूप दो पाकर जाने जाते हैं । २४। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्दादि पचगुण के आश्रय रूप पचभूत जिनके अविष्टान से अनन्त-अपन कार्य में उद्यत रहते हैं, यह कलिकजी वही ईश्वर है । २५।

काल स्वभाव-स्स्कार-नामाद्या प्रकृति परा ।

यस्येक्षया सृजत्यण्ड महाहङ्कारकादिकान् ।२६।

य-मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता ।

य एवाद्यः स एवान्ते तस्याय सोऽयमीश्वर ।२७।

असौ पतिर्म भार्याहमस्य पुत्रास्वान्धवाः ।

स्वप्नोपमास्तु तनिष्ठा विविधाश्चैन्द्रजालवत् ।२८।

स्नेहमोनिबन्धाना यातायातद्वशा मतम् ।

न कलिकसेविना रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ।२९।

कुतः कालः कुतो मृत्यु वव यमः कवास्तिदेवताः ।

स एव कलिकर्भंगवान्मायया बहुलीकृत ।३०।

इन्ही की आज्ञा से काल, स्वभाव, सरकार तथा सज्जा आदि की आश्रयभूता परा प्रकृति, महत्त्व और अहकार आदि को उत्पन्न करने में समर्थ होती है । २६। सर्ग, स्थिति और प्रलयात्मक यह सम्पूर्ण विश्व जिनकी माया ही है, यह वही सबके आदि-रूप ईश्वर है । इनके द्वारा ही लोक में शुभाशुभ का प्रवर्तन होता है । २७। यह मेरा पति है और मैं इसकी भारी हूँ, यह मेरा पुत्र अथवा बान्धव है । ऐसे स्वप्न अथवा इन्द्रजाल के समान विविध प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति इन्ही के द्वारा होती है । २८। स्नेह और मोहादि के बन्धन में पड़े रह कर जो प्राणी इस विश्व के आवगमन में रहे आते हैं अथवा जो राग, द्वेष एवं विद्वेषादि के आश्रय रहने वाले जीव तथा भगवान् कल्कि की सेवा में अनुराग न रखने वाले हैं, वही इस जगत को सत्य मानते हैं । २९। काल कहा से आया ? मृत्यु कहाँ से उत्पन्न हुई ? यम तथा देवगण कौन है ? यह कलिकजी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है, यही अपनी माया के द्वारा बहुरूप हो गए हैं । ३०।

न शस्त्राणि वय नार्यः सप्रहार्या न च वच्चित् ।

शस्त्र प्रहर्तुभेदोऽयमविवेक परात्मन । ३१।

कलिकदासस्यापि वय हन्तु नार्हा कथोदभुतम् ।

हनिष्यामो देत्यपते प्रहलादस्य यथा हरिम् । ३२।

इत्यस्वाराणा वच श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसा ।

स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्त कलिक शरण ययुः ॥३३॥

ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञाननिष्ठ्या ।

प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योग कल्मषनाशनम् । ३४।

हे स्त्रियो ! हम शस्त्र नहीं हैं, हम किसी पर आघात करने में भी समर्थ नहीं हैं । यही परमात्मा स्वयं शस्त्र है और यही आघात करने की शक्ति से सम्बन्ध हैं । इनमें जो भेद प्रतीत होता है, वह सब इनकी माया ही है । ३५। देत्यराज प्रह्लद की प्रार्थना पर जब भगवान् विष्णु

विष्णु नृभिह रूप हुए थे, उम समय हम जैमे उन पर आधान करने में समर्थ नहीं हो सके थे, वैसे ही इन कलिकजी और उनके सेवको पर भी आधात करने में पूर्णतया असमर्थ हैं । ३२। अस्त्रों के यह वचन सुनकर स्त्रिया अत्यन्त विभिन्नत हुई और तब वे स्नेह और मोह से मुक्त होकर कलिकजी की शरण में पहुँची । ३३। भगवान् कलिक म्लेच्छ-नारियों को ज्ञाननिष्ठा में स्थित देखकर उनके प्रति पापों का नाश करने वाला भक्तियोग हँसते हुए कहते लगे । ३४।

कर्मयोगच्चात्मनिष्ठ ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् ।  
 नैषकर्म्यलक्षणं तासा कथयामास माधवः । ३५।  
 ताः स्त्रियः कलिक गदित ज्ञानेन विजितेन्द्रिया ।  
 भक्त्या परमवापुस्तत्त्वीगिना दुर्लभं पदम् । ३६।  
 दत्त्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धपियाणा कृत्वा युद्धं  
 भैरवं भीमकर्मा । हृत्वा बीद्वान् म्लेच्छं सघाश्र  
 कलिकस्तेषा ज्योति स्थानापूर्पं रेजे । ३७।  
 ये शृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादराल्लोका-  
 शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे ।  
 तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्वार्थसम्पत्करं  
 माया मोहविनाशनं प्रतिदिनं ससारतापच्छिदम् । ३८।

तदनन्तर उन्होंने उन नारियों को कर्मयोग, आत्मनिष्ठात्मक ज्ञानयोग, भेदाश्रय, निष्कर्मत्व के लक्षण आदि का प्रसाग सुनाया । ३५। इस प्रकार जब वे म्लेच्छ रमणीयाँ कलिक-प्रदत्त ज्ञानोपदेश से सचेत होकर इन्द्रियों का दमन करके, भक्ति करती हुई, योगियों को भी दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त हो गई । ३६। इस प्रकार उन भीमकर्मा कलिकजी घोर युद्धमें बौद्ध और म्लेच्छों का सहार कर दिया, और उनकी स्त्रियों को मोक्षपद प्रदान करके मरे हुए म्लेच्छों और बौद्धों को ज्योतिर्मय स्थान में स्थित कर विराजमान हुए । ३७। जो इस बौद्धों के निधन एव म्लेच्छों के क्षीण होने की कथा को सुनेंगे, वे सभी शोकों से मुक्त होकर कल्याण को प्राप्त होंगे । भगवान् के प्रति उनके हृदय में भक्ति का संचार होगा और वे जन्म-मरण के चक्र से छूट जायंगे । इस कथा के सुनने से सर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और माया-मोह का विनाश होता है, तथा संसार के ताप का सदा उच्छेद करने में समर्थ होता है । ३८। —\*—

तृतीयांश—

## द्वितीय अध्याय

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिके ।

घनान्यदाय रत्नानि कीकटात्पुनरव्रजत् ।१।

कलिकं परमतेजस्वी धर्मणा परिरक्षक ।

चक्रतीर्थं समागत्य स्नान विधिवदाचरत् ।२।

आत्रुभिर्लोकपालाभैवंटुभि स्वजनैर्वृत् ।

समाधातान्मुनी स्तत्र दद्वशे दीनमानसान् ।३।

समुद्भियागतास्त परिपाहि जगत्पते ।

इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानांह हरि पर ।४।

बालखिल्यादिकानल्पकायाऽचौरजटाधरान् ।

विनयावनतः कलिकरतनानाह कृपणान्भयात् ।५।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! बौद्धो और म्लेच्छो पर विजय प्राप्त करके भगवान् कलिक घन रत्नादि लेकर सेना के सहित उस कीकटपुणी से चल दिये ।१। फिर वे परम तेजस्वी एव धर्मवान् कलिकजी चक्रतीर्थ में पहुँचे और वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान किया ।२। तदनन्तर वे अपने बन्धु-बाधवों के साथ लोकपाल के समान सुशोभित होते हुए वही निवास करने लगे । कुछ समयोपरान्त उन्होंने दीनता पूर्वक आये हुए कुछ मुनियों को देखा ।३। वे भयभीत मुनिवण कलिकजी की शरण में पहुँच कर बोले—हे जगत्पते ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो । इस पर भगवान् श्रीहरि बोले ।४। उन्होंने अत्य देह वाले छिन्न वस्त्राभूषण और जटा धारण करने वाले बालखिल्यादि मुनियों से विनय और कृपा पूर्वक कहा ।५।

कस्माद्यूय समायाता केन वा भीषिता वत ।  
 तमह निहनिष्ठामि यदि वा स्यात्पुरन्दर ।६।  
 इत्याश्रुत्य कलिकवाक्य तेनोल्लासितमानसा ।  
 जगदु पुण्डरोकाक्ष निकुम्भदुहितु कथा ।७।  
 श्रुणुविष्णुप्रश्नपुत्र ! कुम्भकर्णत्मजात्मजा ।  
 कुथादरीति विख्याता गगनाद्वं समुत्थिता ।८।  
 कालङ्गजस्य महिषो विकञ्जजननी च सा ।  
 हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निष्पवाचले ।  
 शेते स्तनं पायथन्ती विकञ्ज प्रस्तुतणस्तनी ।९।  
 तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः ।  
 दैवेनैव समानीता सप्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् ।  
 मुनयो रक्षणीयास्ते रक्ष सु च विपत्तु च ॥१०॥

आप कहों से आ रहे हैं ? किससे डरे हुए हैं ? यह सब वृत्तान्त मुझे बताओ, फिर यदि आपका अपकार करने वाला इन्द्र भी होगा, तो भी मैं उसे नष्ट कर दूँगा ।६। पुराणीकाक्ष कलिकजी के वाक्य सुनकर आश्वस्त हुए मुनियों के हृदय प्रफुल्लित हो गये और तब उन्होंने दैत्यराज निकुम्भ की पुत्री की कथा मुनाई ।७। मुनियों ने कहा— हे विष्णुप्रश्न ! सुनिये, कुम्भकर्ण का एक पुत्र निकुम्भ था, उसकी एक कन्या कुथोदरी नाम की है। उसका आकार गगनमँडल से भी ऊँचा है ।८। वह कालकञ्ज नामक दैत्य को पत्नी है, उसका पुत्र निकज है। वह राक्षसी अपना मस्तक हिमालय पर और पाव निषध पर्वत पर रखकर विकञ्ज को स्तन पिला रही है ।९। हे देव ! हम उम की श्वासवायु से उत्तीर्णि होकर दैव-प्रेरणा वश यहाँ उपस्थित हुए हैं। अब हम आपके चरणाश्रय को प्राप्त हो चुके हैं अत, उससे हमारी शीघ्र रक्षा कीजिये ।१०

इति तेषा वच, श्रुत्वा कलिक परपुरञ्जय ।

सेनागणै परिव्रतो जगाम हिमबद्गिरिम् ।११।  
 उपत्यका स मासाद्य निशामेका तिनाव स. :  
 प्रातिंजिगमिषुः सैन्यैददेशे शीरनिम्नगाम् ।१२।  
 शखेन्दुघवलाकारा फेनिला बृहती द्रूतम् ।  
 चलन्ती वीक्ष्यते सर्वे स्नमिभता विस्मयान्विता ।१३।  
 सेनागणगजाश्वादिरथयोधं समावृत् ।  
 कल्किस्तु भगवास्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ।१४।  
 प्रच्छ का नदी चेयं कथ दुर्घटवहाभवत् ।  
 ते कलकेस्तु वच श्रूत्वा मुनयः प्राहुरा दरात् ॥१५॥

उनके यह वचन सुनकर शत्रु-नगरों को विजय करने दाले भगवान् कल्कि अपनी सेना के सहित हिमालय की ओर चले ।११। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक रात्रि निवास किया और प्रात कान्त होते ही, जैसे ही सना के सहित आगे चलने लगे, वैसे ही उन्हे एक दूध की नदी दिखाई दी ।१२। यह नदी शख तथा चन्द्रमा के समान श्वेत थी, वह दीर्घाकार वाली फेनिल नदी वेगपूर्वक बह रही थी। सेना के सभी लोग उस दूध की नदी को देखकर आश्चर्य से चकित हो गये ।१३। यद्यपि भगवान् कल्कि उस नदी के विषय में सब कुछ जानते थे, फिर भी गज, अश्व, गध तथा पदाति सैनिकों से युक्त कल्किजी ने उन मुनीश्वरों से पूछा — ‘इस नदी का नाम क्या है? इसमे यह दुर्घट किस प्रकार प्रवाहित है?’ यह सुनकर वे मुनिगण आदरपूर्वक बोले ।१४-१५।

शृणु कल्के पथस्वत्या प्रभव हिमबद्गिरौ ।  
 समावाता कुथोदर्या स्तनप्रस्नवनादिहि ।१६।  
 ग्रटिकासप्तकश्चान्या पयो यास्यति वेगितम् ।  
 त्रीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ।१७।  
 इति श्रूत्वा मुनीनान्तु वचन सैनिकैः सह ।  
 ग्रहो किमस्या राक्षस्या स्तनादेका त्विय नदी ।१८।

एक स्तन पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।  
 न जानेऽस्या शरीरस्य प्रमाणं कति वा भवेत् ॥१६॥  
 बल वास्या निशाचर्यो इत्यूचुविस्मयान्विताः ।  
 कल्कि. परात्मा सन्तद्यु सेनाभिं सहरा ययौ ॥२०॥

हे प्रभो ! हे कल्के ! इम पर्याप्तिनी नदी की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं, इसे सुनिये । उस कुथोदरी नाम की राक्षसी के स्तनों से निकला हुआ दूध हिमालय पर्वत से गिरता हुआ नदी रूप में वह रहा है ॥ १६ ॥ हे महामते ! सात घड़ी के पश्चात् इसी प्रकार को एक अन्य पर्याप्तिनी नदी प्रवाहित होगी । इसके पश्चात् यह नदी सूख कर तटाकार में परिवर्तित हो जायगी ॥ १७ ॥ सेना सहित मुशोभित कल्कि जी मुनियों के बचन सुनकर बोले—अहो, कैसे विस्मय का विषय है कि राक्षसी के स्तनों से निर्भन हुए दुध से इतनी वडी नदी उत्पन्न होकर वह रही है ॥ १८ ॥ वह अपना एक स्तन अपने पुत्र विकुञ्ज को पिला रही है तो इसके देह का परिमाण क्या होगा ? यह किस प्रकार जाना जा सकता है ? ॥ १९ ॥ तब सभी आश्चर्य में भर कर बोल उठे—अहो ! इस राक्षसी में कितना बल है ? तदनन्तर सेना से सुसज्जित हुए कल्कि जी उम राक्षसी की ओर चल पडे ॥ २० ॥

मुनिदर्शितमागर्णय यत्रास्ते सा निशाचरी ।  
 पुत्र स्तन पाययन्ती गिरिमूद्धर्धिनं घनोपमा ॥२१॥  
 श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपा ।  
 यस्या करण्डबिलावास प्रसुप्ताः सिंहस्कुलम् ॥२२॥  
 पुत्रपोत्रपरिवृता गिरिगत्वरविभ्रमाः ।  
 केशमूलमुपालम्ब्य हरिणा दोरते चिरम् ॥ २३ ॥  
 यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्क्षया भृशम् ।  
 तामालोक्य गिरेमूर्धिनं गिरितत्परमाद्भुताम् ॥२४॥  
 कल्कि. कमलपत्राक्ष. सर्वास्तानाह संनिकान् ।  
 भयोद्विग्नान्वुद्विहीनान्त्यक्तोद्यमशमपरिच्छदान् ॥२५॥

वे मुनिगण उस मार्ग का दर्शन करने लगे जो राक्षसी के स्थान को जाता था । वहाँ पहुंच कर उन्होंने उप मेवाकार राक्षसी को गिरि शिखर पर अपने पुत्र की स्तन-पान कराते हुए देखा ॥२१॥ बन के हाथी उसकी श्वास-बायु के थपेडे खाकर दूर जा गिरते हैं तथा उपके कानों के छेदों में सिंह पड़े सो रहे हैं ॥२२॥ उसके रोम छिद्रों को गिरि-गुहा समझ कर अपने पुत्र पौत्रों से युक्त हरिण गण भी उनमें घुप कर सी रहे हैं ॥२३॥ वहाँ रह कर व्याध के भय से बचे हुए हैं तथा लीख के समान स्थित हैं । पर्वत की चोटी पर अन्य पवत के समान स्थित उस राक्षसी को देख कर हत बृद्धि एव भयभीत तथा शस्त्रास्त्र त्याग कर भागने की उद्यत अपने सैनिकों से भगवान् कल्कि बोले ॥ २४-२५ ॥

गिरिदुर्गेवन्हिदुर्ग कृत्वा तिष्ठान्तु मामकाः ।

गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥२६॥

अह स्वल्पेन सैन्येन याम्यस्याः समुख शनैः ।

प्रहत्तुं बाणासन्दोहैः खङ्गशक्तिपरश्वर्धैः ॥२७॥

इत्युक्त्वास्थाप्य पश्चात्तान्बाणौस्ता समहनद्वली ।

भा क्रुधोत्थाय सहसा ननद्दै परमादभुतम् ॥२८॥

तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः

निपेतु सैनिका सर्वे मूर्च्छना भरणातले ॥२९॥

सा रथाश्च गजाश्चापि विवृतास्या भयानका ।

जघास प्रश्वासवातः समानीय कुथोदरी ॥ ३०॥

उन्होंने कहा — इस पर्वतीय, दुर्ग मे अग्नि दुर्ग बना कर तुम सब यही ठहरो तथा गजारूढ़, अश्वारूढ़ और रथी वीर हमारे साथ आगे बढ़े ॥ २६ ॥ मैं अल्प सेना को साथ लेकर बाणों, तलवारों और फरसों के द्वारा प्रहार करने के लिए 'अग्निसर होता हूँ' ॥२७ ॥ यह कह कर कल्कि जी ने सेना को तो पीछे छोड़ा और आगे बढ़ कर राक्षसी पर बाणों से प्रहार करने लगे । 'यह' देख कर राक्षसी ने भी

क्रोध पूर्वक अद्भुत नाद किया ॥ २८ ॥ उस घोर निनाद को सुन कर सभी भयभीत हो गये हथा सब सेनापति मूर्च्छित एव धराशायी हो गये ॥ २९ ॥ तब वह राक्षसी कुथोदरी अपने भयकर मुख को खोल कर अपने पश्वास के द्वारा ही रथ, अश्व, गजादि को खीच-खीच कर हडप करने लगी ॥ ३० ॥

सेनागणास्तदुदर प्रविष्टा कलिकना सह ।  
 यथक्षं मुखबातेन प्रविशन्ति पिपोलिकाः ॥ ३१ ॥  
 तट्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकार्ह प्रचकिरे ।  
 तत्रस्था मुनयः शेषु जंपुश्चान्ये महूर्षय ॥ ३२ ॥  
 निपेतुरन्ये दुखार्ता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः ।  
 रुदुः शिष्योधा ये जहृषुस्तनिशाचरा ॥ ३३ ॥  
 जगता कदन टट्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना ।  
 कलिकः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदन ॥ ३४ ॥  
 बाणाभिन चेलचर्माभ्या कर्म्मनैयानदासुभि ।  
 प्रजवाल्योदरमध्येन करवाल समाददे ॥ ३५ ॥

जैसे रीछ के पश्वास खीचने से चीटियाँ आक्षित होकर उसके मुख में पहुच जाती है, वैसे ही अपनी सेना के सहित भगवान कलिक उस राक्षसी के मुख में प्रविष्ट हो गये ॥ ३१ ॥ यह देख कर सब देवता-गन्धर्व हाहाकार कर उठे, मुनिगण ने उन राक्षसी को शाप दिये और महर्षिगण कलिक जी की कुशल के निर्दित मन्त्र-जप में सलग्न हुए ॥ ३२ ॥ वेदज्ञ ब्राह्मण दुव से अचेत हो गये, प्रभु-भक्त दीर रोने लगे और राक्षस गण आनन्द में तिमग्न हो गये ॥ ३३ ॥ देव शत्रुघ्नो के नाशक भगवान कलिक ने जब सम्पूर्ण विश्व को इस प्रकार दुखी देखा तो वे स्वयं अपना ही स्मरण करने लगे ॥ ३४ ॥ किर कलिक जी ने राक्षसी के उस अन्धकार मय उदर में अपने बाण द्वारा अग्नि उत्पन्न की और चर्म तथा रथ के काष्ठादि के द्वारा उस अग्नि को प्रज्वलित कर हाथ में तलवार गहण की ॥ ३५ ॥

तेन खड्गेन महता दाक्ष्यं निभिद्य बन्धुभिः ।  
 बलिभिभ्रतिभिवहैर्वृत् शस्त्रास्त्रपाणिभि ॥३६॥  
 बहिर्बभूव सर्वेशं कलिक. कलकविनाशनः ।  
 सहस्राक्षौ यथा वृत्रकुर्थित दम्भोलिनेमिना ॥३७॥  
 यानिरद्वादृगजरथस्तुरगाश्चाभवनन्बहिः ।  
 नासिकाकर्णविवरान्कर्डाप तस्या विनिर्गताः ॥३८॥  
 ते निर्गतास्ततस्तस्या सेनिका स्थिरोक्षिनाः ।  
 ता विव्यधुर्निक्षिपन्ती तरसा चरणौ करौ ॥३९॥  
 ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।  
 नादयन्ती दिशो द्यो. ख चूरणवन्ती च पर्वतान् ॥४०॥

जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर की कुक्षि को अपने वज्र से भेद कर बाहर आये थे, वैसे ही सर्वेश्वर एव पापो का नाश करने वाले कलिक-जी ने अपनी वृहद् तलवार से राक्षसी की दक्षिण कुक्षि चौर डाली और अपने शस्त्रास्त्र धारी बाधवों के सहित बाहर निकल आये ॥ ३६-३७ ॥ बहुत से गज, अश्व रथ और पैदल उसके अबो मार्ग मे और बहुत से उसके कानों तथा नासिका छिद्रों से होकर बाहर आ गये ॥ ३८॥ फिर वे रक्त से भीमे हुए बीर गण राक्षसी के देह से बाहर निकल कर, को हाथ-यैर चलाती देख कर बाणो ढारा उसका वेघन करने लगे ॥ ३९॥ जब उसके उदर मस्तक तथा अन्यान्व अग छिन्न-भिन्न होने लगे तब उसकी धोरु चीकार से दक्षों दिशाएँ गूँज उठी । फिर वह पर्वतो पर गिर कर उन्हे चूर-चूर करती हुई मृत्यु को प्राप्त हुई ॥४०॥

करञ्जोऽपि तथा बीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत् ।  
 स विकञ्जं क्रुद्धा धावन्सेनामध्ये निरायुध ॥४१॥  
 गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषण ।  
 महासंपर्कृतोष्णीषा केसरीमुद्रिताङ्गुलि ॥४२॥  
 ममद्रौ कलिकसेना ता मातुर्वर्यसनकर्षितः ।  
 स कलिकरत ब्राह्ममस्त्रं रामदत्तं जिघासया ॥४३॥

घनुषा पञ्चवर्षीय राक्षस शस्त्रमाददे ।  
 तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्वा भूमावपातयत् ॥४४॥  
 रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवदभुतम् ।  
 सपुत्रा राक्षसी हत्वा मुनीना वचनाद्विभुः ॥४५॥

जब विकज ने अपनी माता की यह दशा देखी तो वह क्रोध से कातर होकर निरस्त्र ही सेना में घुम पड़ा ॥ ४१ ॥ उसके हृदय में हाथियों दी माला, सब श्रगो में घोड़ों के आभूषण, मस्तक पर महा-सर्व का मुकुट और श्रगुलियों में सिंहों की मुद्रिकाएँ थीं ॥ ४२ ॥ वह अपनी माता के शोक से व्याकुल होकर कलिकजी की सेना का उत्तीर्णन करने लगा । नब कलिकजीने उस पांच वर्ष के राक्षस-बालकों को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र ग्रहण किया और उससे उसका मस्तक काट कर पृथग्नी पर गिरा दिया ॥ ४३-४४ ॥ इस प्रकार मुनियों द्वारा निवेदन करने पर कलिकजी ने गेह आदि से चित्रित किये के समान उस रक्ताक्त वर्षत पर पुत्र सहिं राक्षसी को नष्ट कर दिया ॥ ४५ ॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवास समकल्पयत् ।  
 देवाना कुमुनासारैर्मुनिस्तोत्रः सुपूजितः ॥४६॥  
 निनाय ता निशा तत्र कलिक. परिजनावृतः ।  
 प्रातर्दर्दशं गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ।  
 तस्या. स्नानव्याजविषणोरात्मनो दशो नाकुनान् ॥४७॥  
 हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिण्डारकवने ।  
 वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृत त मुनिगणाः ।  
 स्तवै स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जन्मुतनयां ।  
 प्रपश्यत कलिक मुनिजलगणा द्रष्टुमगमन् ॥४८॥  
 तदनन्तर उन्होने देवताओं द्वारा पुष्ट-वृष्टि और मुनियों के स्तोत्रों से भले प्रकार पूजित होते हुए वहाँ चल कर हरिद्वार में गङ्गा जी के

पावन तीर पर अपनी सेना सहित निवास किया ॥४६॥ अपने परिजनों के सहित कलिकज्जी ने वह रात्रि वही बिताई और प्रात काल उठने पर गगा स्नान के निमित्त आये हुए मुनिगण उनके दर्शनार्थ आते हुए दिखाई दिये ॥४७॥ वे हरिद्वार में गगातट के सभीप स्थित पिरडारक बन में अपनी सेना के सहित निवास करने लगे । एक दिन, जब वे कलिमल-नाशिनी भगवती जाह्नवी की स्तोत्रों के द्वारा स्तुति कर रहे थे, तभी मुनिगण उनके दर्शनार्थ वहाँ आये और विविध शब्दों से युक्त स्तोत्र करने लगे ॥ ४८ ॥

तृतीयांश—

## तृतीय अध्याय

सुस्वागतान्मुनीन् वृष्ट्वा कल्कि. परम धर्मविम् ।  
पूजावित्वा च विधिवत्सुखासीनासुवा चतान् ॥१॥  
कूय सूर्यसङ्खाशा मम भाग्यादुपस्थिताः ।  
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥२॥  
वय लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः ।  
यत कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥३॥  
ततस्ते वामदेवतत्रिवंसष्ठो गालवो भृगु. ।  
पराशरो नारदोऽश्रव्यथामा रामः कृपस्थितः ॥४॥  
दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः ।  
एते चान्ये च बहवी मुनय, सर्वशत्रवता, ॥५॥  
कृत्वाग्रे मरुदेवापो च द्रस्यकुलोद्भवी ।  
राजानौ तौ महावीर्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥६॥  
ऊचु, प्रहृष्टमनस, कल्कि कल्कविनाशनम् ।  
महोदधेस्तोरगत विष्णु सुरगणा यथा ॥७॥

परम धर्मविद कल्किजी ने उन मुनिगण को सुखपूर्वक वहाँ  
आये हुए देखकर स्वागत, आसन और विधिवत् पूजन करके उनसे  
बोले ॥१॥ सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, तीर्थाटन मे उत्सुक एवं  
तीनो लोको के कल्याण रूप उपकार की कामना वाले आप कौन हैं ?  
जो मेरे सौभाग्यवश यहाँ पधारे हैं ॥२॥ आपके द्वारा कृपा-कटाक्ष  
पूर्वक देखे जाने से मैं प्राज इस लोक मे अपने को पुण्यवान्, भाग्यवान्

और यशवान् ही मानता हूँ ॥ ३ । फिर वामदेव, श्रिति, बसिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, करव, वेद प्रमिति और अ गिरा आदि यह सब तथा अन्यात्य श्रेष्ठ व्रत वाले मुनिगण चन्द्र सूर्यवश मे उत्पन्न, महा वीर्यवान एव तपोनिष्ठ राजा मह और देवापि उनको सामने देख कर, जैसे प्रसन्न मनसे देवताओं ने महोददि के तीर पर भगवान् विष्णु से कहा था, वैसे ही पापो का नाश करने वाले कलिकजी के प्रति बोले ॥४-७ ॥

जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस ! । ✓

सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मप्रसीद नः ॥८॥

कालकर्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय ! ।

ब्रह्मादिनुतपादाब्ज ! पद्मानाथ प्रसीद न ॥९॥

इति तेषा वच श्रुत्वा कलिक प्राह जगत्पति ।

कावेतौ भवतामग्रे महासत्त्वौ तपस्त्विनौ ॥१०॥

कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गा मुदितमानसौ ।

का वा स्तुतिस्तु जाहाव्या युवयोर्नमिनो च के ॥११॥

तयोर्मरु प्रमुदितः कृताञ्जलिपुट कृती ।

आदावुवाच विनयी निजवशानुकीर्तनम् ॥१२॥

मुनियो ने कहा—हे स्वर्वविजयी जगदीश ! हे सम्पूर्ण विश्व के जीवो के घट-घट के ज्ञाता ! हे सृष्टि स्थिति और प्रलय के स्वामिन् ! हे परमात्मदेव ! प्रसन्न होइये ॥९॥ हे पदमा के पते ! काल, कर्म और गुण के आप ही आश्रय हैं । ब्रह्मादि देवता भी आपके ही चरणारविन्दो की पूजा किया करते हैं । आप हम पर प्रसन्न होइये ॥ ६ ॥

मुनियो के यह वचन सुन कर कलिकजी ने उनसे कहा—हे मुनियो ! आपके आगे यह महान् बल सम्पन्न एवं तपस्वी कौन हैं ? ॥१०॥

गगाजी की स्तुति करके अत्यन्त प्रसन्न हृदय से यह यहाँ क्यों पधारे हैं ? यह किस कारण भगवती जान्हवी की स्तुति मे लगे हैं ? इनके नाम क्या-क्या हैं ? ॥११॥ तब वेदोंको मह देवादि प्रसन्न हृदयसे हाथ

जोड कर बिनय पूर्वक अपने वश का यश-वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥

सर्ववेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिहृदि स्थिति ।

तवाज्ञया सर्वमेनत्कथयामि श्रणु प्रभो ॥ १३ ॥

तव नामेरभूद्व्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।

ततो मनुष्मत्सुतोऽभूद्विक्षाकु सत्यविक्रम ॥ १४ ॥

युवनाश्व इति ख्यातो मान्वाता तत्सुतोऽभवत् ।

पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूद्वनरण्यो महामतिः ॥ १५ ॥

त्रसदस्यु. पिता तस्माद्वर्यश्वख्यरुणस्त ।

त्रिशङ्कस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्रं प्रतापवान् ॥ १६ ॥

हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भूरुकस्तत्सुतो वृका ।

तत्सुत सगरस्तस्मादसमझास्तोऽशुमान् ॥ १७ ॥

मह बोले— हे प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी एव घट-घट मे निवास करने वाले हैं, आपको सब कुछ ज्ञात है । मैं आपकी आज्ञा के अनुसार सब कहना हूँ, उसे सुनिये ॥ १३ ॥ आपके नाभि कमल से ही ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के मनु और मनु के सत्य विक्रम इक्षवाकु हुए ॥ १४ ॥ इक्षवाकु का पुत्र युवनाश्व, युवनाश्व का मान्वाता, मान्वाता का पुरुकुत्स और पुरुकुत्स का पुत्र अनररण हुआ ॥ १५ ॥ अनररण का त्रसदस्यु, त्रसदस्यु का हर्यश्व, हर्यश्व का अरुण, अरुण का त्रिशङ्कु हुआ तथा त्रिशङ्कु के पुत्र महा-प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र हरित, हरित का भरुक, भरुक का वृक, वृक का सगर, सगर का असमजा और असमजा का पुत्र अशुमान हुम्रा ॥ १७ ॥

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः ।

येनानीता जन्म्हवीर्य ख्याता भागीरथी भुवि ।

स्तुता नुता पूजितेय तव पादमुसङ्क्रवा ॥ १८ ॥

भगीरथात्सुतस्तस्माज्ञाभस्तस्मादभूद्वली ।

सिन्धुइवीपसुतस्तस्मादायुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १९ ॥

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तन्मुतोऽभवत् ।

सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मत ॥२०॥

मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्तत ।

राजा विश्वसहस्तस्मात्खटवाङ्गो दीर्घबाहुक ॥२१॥

ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथःकृती ।

तस्माद्रामो हरि साक्षादाविर्भूतो जगत्पति ॥२२॥

अ शुमान के पुत्र दिलीप, दिलीप के परम प्रसिद्ध पुत्र भगीरथ हुए । वही भगवती जाह्नवी को भूतल पर लाये थे इसी विए गगा उनके नाम से भागीरथी कहलाई । आपके चरणों से उत्पन्न होने के कारण ही प्राणी इन गगा जी की स्तुति, प्रणाम तथा पूजन करने में तत्पर रहते हैं ॥१८॥ भागीरथ का पुत्र नाभ हुआ । नाभ का महाबलो सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ ॥१९॥ अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ । ऋतुपर्ण का सुदास, सुदास का सौदास और सौदास का पुत्र मेधावी अश्मक हुआ ॥२०॥ अश्मक से मूलक और मूलक का दशरथ हुआ । दशरथ का एडविड, और एडविड का विश्वसह, विश्वसह का खट्वाग और खट्वाग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ था ॥२१॥ दीर्घबाहु के पुत्र रघु हुए, रघु के अज और अज के दशरथ हुए । इन्ही दशरथ के पुत्र रूप में साक्षात् जगदीश्वर विष्णु ने अवतार लिया ॥२२॥

रामावतारमार्कण्य कल्कि परमहर्षित ।

मरु प्राह विस्तरेण श्रीरामचरित वद ॥२३॥

सीतापते कर्म वक्तु कं समर्थोस्ति भूतले ।

शेष, सहस्रवदनंरपि लालायितो भवेत् ॥२४॥

तथापि शेषुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया ।

रामस्व चरित पुण्य पापतापप्रमोचम् ॥२५॥

अजादिविकुष्ठार्थितोऽज्जनि चतुभिरशो कुले

रवेरजासुतादजो जगति यस्तुधानक्षय ।

शिशु कुशिकजाघ्वरक्ष्वकरक्षयो यो बला-

दृवलीललितकन्धसे ज्युक्ति जानकीवल्लभः ॥२६॥

रामावतार का प्रसग आने पर भगवान् कलिंग अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने मरु में कहा कि राम चरित्र का विस्तार सहित वर्णन करिये ॥२३॥ मरु बोले—सातापति श्रीराम के कर्मों का वर्णन करने में समर्थ इस पृथिवी पर कौन है ? क्योंकि सहस्रवदन शेष भी उनका यश वर्णन करने में समर्थ नहीं है । फिर भी मैं आपको आज्ञा के कारण भगवान् श्रीराम का पाप-ताप नाशक चरित्र को अपनी बुद्धि के अनुसार कहना हूँ ॥२४-२५॥ पुराकाल की बात है—ब्रह्मादि देवताश्रो के द्वारा राक्षसों के विनाशार्थ प्रार्थना किये जाने पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में सीतापति भगवान् रामचन्द्र जी ने सूर्यवश में अवतार लिया था । अपने शिशु-काल में ही उन्होंने प्रिश्वामित्र जी के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों का बलपूर्वक सहार किया था ॥२६॥

मुनेरनुसहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो ।  
 ययावर्तिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ॥२७॥  
 विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुहः ।  
 प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभजने जन्मन् ॥  
 तम प्रतिमतेजस दशरथात्मज सानुज  
 मुनेरनुयथा विधे शशिवदादिदेव परम् ।  
 निर्हीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापति समत  
 निजोचितपणक्षम मनसि भत्सयन्नाययी ॥२८॥  
 स भूपरिपूजितो जनकजेक्षितेरच्चितः  
 करालकठिनं धनु करसोरुहे सहितम् ।  
 विभज्व बलहृष्ट जय रथवद्देत्युच्चकैध्वर्णि  
 त्रिजगतीगत पारविधाय रामो वभौ ॥२९॥  
 ततो जनकभुपतिदर्शरथात्मजेभ्यो ददौ  
 चतस्र उषर्तीमुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।  
 स्वलक्ष्मिनिजात्मजा पथि ततो बल भार्गव-

अक्षरार उररीनिज रघुपतौ महोग्र त्वजन् ॥२०॥

जिनकी महिमा से कामना पूर्ति वाले ससार में पुर्णजन्म की प्राप्ति नहीं होती। वे महाबली, प्रभायुक्त तथा मम्पन्न शस्त्र विद्याविशारद भगवान् श्रीराम ससार को मोहित करने वाला रूप धारण किये हुए, लक्ष्मण और मुनियों के सहित जनक की राज सभा में गये ॥२७॥ ब्रह्माजी के पीछे सुशोभित चन्द्रमा के समान तेज वाले श्री राम अपने भाई लक्ष्मण के सहित मुनिवर विश्वामित्र के पीछे बैठ मये। तब आदि देव जगदीश्वर को देव कर जनक सोचने लगे कि यह सीता के योग्य श्रेष्ठ वर हैं। तब उन्होंने अपने द्वारा किये हुए प्रण की कठोरता देख कर अपनी भर्त्सना की ओर फिर श्री राम के समीप गये ॥२८॥ तब राजा जनक से आदर प्राप्त कर तथा सीता जी के कटाक्ष से प्रेम-पूजित होकर श्री राम ने उस घोर घनुष को हाथ में उठाया और उसके दो टुकड़े कर दिये। तब श्रीराम अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए और उनके जय-घोष से तीनों लोक व्याप्त हो गये ॥२९॥

तत् स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापर्ति

नृप सच्चिवसयुतो निजविचित्रसिहासने ।

विधातुममलप्रभ परिजने क्रियाकारिभि.

समुद्यतमर्ति तवा द्रुतमवारयत्केकयोः ॥३१॥

ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुत.

प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुत.

वनं निजगण्यत्यजन्मुहृष्टे वसन्नादरात्

विसृज्य नृपलाञ्छन रघुपतिं टाचीरभृत् ॥३२॥

उष राजा जनक ने अपनी चारों कन्या—सीता, उर्मिला, मार्गडवी और श्रुतिकीर्ति सब प्रकार से अलकृत करके दशरथ जी के चारों पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, शशुभ्व को क्रमशः लिए लेट रहे थे, तब मार्ग में परवृत्त रुप सीजी मिले और उन्होंने श्रीरामको अक्षर ध्वनार बल

दिखाने का निष्कल प्रयत्न किया ॥३०॥ फिर महाराज दशरथने श्रयोध्या पर्वंच कर अपने मन्त्रियों के परामर्श से सीनान्ति राम को श्रयोध्या के राज्य सिहासन पर अभिपिन्न करने का विचार किया । अभिषेक के लिए सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होकर जब पूर्ण तैयारी हो गई, तब श्रीराम का अभिषेक करने में तत्पर राजा दशरथ को कैकेयी ने वरदान माँग का रोक दिया ॥ ३१ ॥ तब महाराज की आज्ञा सुन कर जनक सुता और मुमित्रा पुत्र-लक्ष्मण सहित श्रीराम बन में गये । साथ चलते हुए पुर्वासियों को आगे चल कर छोड़ दिया तथा गुह के घर में जाकर राजकीय वस्त्राभूषणों का परित्याग कर जटोवल्क-ल धारण कर लिया ॥३२॥

प्रियानुजयुतस्तनो मुनिमतो वने पृजितः  
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुर सगतम् ।  
॒-वार्यं मरणं पितृं समवधार्य दुखानुर-  
स्तपोवनगतोऽवसद्रव्युन्तिस्ततस्ता समाः ॥३३॥  
दशाननहोदरा विषमवारावेधातुरां-  
समोक्ष्य वररूपिणीं प्रहसती सतीं सुन्दरीम् ।  
निजाश्रयमभीप्सती जनकजापतिर्लक्ष्मणा-  
त्करालकरवालत समकरोद्विरूपा तत ॥३४॥  
समाप्य पथि दानव खरशरै शनैर्नशयन्  
चतुर्द्वंशसहस्रक समहनन्खर सानुगम् ।  
दशाननवशानुग कनकचारुच्चन्मृग  
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्वलाद्राक्षसम् ॥३५॥

सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ मुनिवेश धारी श्री राम पूजा-मन्त्रन होकर विविध में वनो निवास करने लगे । इसके पश्चात् कातरता पूर्वक भरतजी वहाँ आये । उनसे विता का मरण सुन कर श्रीराम को बड़ा दुःख हुआ और भरत जी को समझा कर लौटा दिया और तपोवन में रहने लगे ॥३६॥ फिर कामदाण से विद्ध

सुन्दर रूप वाली, हास्त्रवदना, वर की कामना करनी हुई रावण की बहिन शूर्पणखा को आते देख कर लक्ष्मण जी को सकेत किया, जिसके अनुसार लक्ष्मण जी ने तीक्षण तलवार से उस राक्षसी का रूप भ्रष्ट कर दिया ॥३४॥ फिर उन्होंने मार्ग मे एक दानव का मार कर, चौदह हजार सेना के अधिपति एव रावण के अनुगामी खरदूषण को सेना सहित नष्ट कर दिया । फिर सीता जी की इच्छा से स्वर्ण-मृग रूपी राक्षस को मार डाला ॥३५॥

ततो दशसुखस्थ्यरस्तमभिवीक्ष्य राम रूप्य  
व्रजन्तमनुलक्ष्मण जनकजा जहाराश्रमे ।

ततो रघुपति प्रिया दलकुटीरसस्थापिता  
न वीक्ष्य तु विमूच्छ्रितो वह विलप्य मीतेति ताम् ॥३६॥

वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले  
विचित्य पतित खग पथि ददर्श सौमत्रिणा ।

जटायुवचनान्ततो दशमुखाहृता जानकी  
विवच्य कृतवान्मृते पितरि कहिकृत्य प्रभु ॥३०॥

प्रियाविरहकातराऽनुजपुर सरो राघवो  
धनुर्धरन्धरो हरिबल नवालायिनम् ।

ददश ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानज-

प्रिय पवननन्दनं परिणतं हित प्रेषितम् ॥३८॥

फिर राम लक्ष्मण को गया हुआ देख कर रावण ने उनके आश्रम से अर्केली सीताजी का हरण कर लिया । तदनन्तर श्रीराम ने वहाँ आकर जब सीता को न देखा, तब वे 'हा सीते' 'हा सीते' आदि शोक युक्त शब्दो मे विलाप करते हुए मूर्छा को प्रस हो गये ॥३६॥ फिर वे ऋषियो के आश्रम, पर्वतो की गुफा, जल और स्थल आदि विविध स्थानो मे सीताजी को ढूढ़ने लगे । आगे चलने पर उन्हें मार्ग मे जटायु पड़ा मिला । उससे उन्हे सीता हरण का समाचार प्राप्त हुआ । जटायु के मरने पर उन्होंने अपने पिता के समान उसका

मृतक सस्कार किया ॥३७॥ सीताजी के वियोग से व्याकुल हुए धनुर्धरो में श्रीष्ठ श्रीराम लक्षण के महित नव-परिचय प्राप्त बानर मेना मे मिले और उनकी सूर्य पुत्र बालि के छोटे भाई सुग्रीव द्वारा भेजे हुए उसके मत्री हनुमान से भेट हुई ॥३८॥

ततस्तदुदितं मत पवनपुत्रसुग्रीवयो-  
स्तृणाधिपतिभेदन निजनृपासनस्थापितम् ।  
विविच्य व्यवसायकैनिजसखाप्रिय बालिनम्  
निहत्य हरिभूपति निजसख स रामोऽकरोत् ॥३९॥  
श्रथोत्तरमिमा हरिजनकजा समन्वेषयन्  
जटायुसहजोदितैर्जलनिधि तरन्वायुजः ।  
दशाननपुर विशङ्गनकजा समानन्दय  
नशोकवनिकाश्रमे रघुपति पुन प्राययौ ॥४०॥  
ततो हनुमता बलादभितरक्षसा नाशन  
ज्वलज्ज्वलनसकुलञ्जवलितदग्धलङ्घापुरम् ।  
विविच्य रघुनायको जलनिधि रुषा गोषयन्  
वबन्ध हरियूथप. परिवृतो नगरीश्वर ॥  
बभञ्ज पुरपत्तन विविधसर्वदुर्गक्षमम्  
निशाचरपते. कृधा रघुपतिः कृती सद्गति ॥४१॥

फिर सुग्रीव और हनुमान की प्रार्थना पर उन्होंने ताल के सात वृक्षों को काट गिराया और बालि का वध करके सुग्रीव को बानरों का राजा बना कर उससे मित्रता स्थापित की ॥३९॥ फिर पवनसुन हनुमान सीता की खोज मे गये और सपाति की प्रेरणा पर लकापुरी मे उत्थित अशोक वाटिका पहुंच कर उन्होंने सीताजी को राम-सुदेश से आनन्दित किया और रामचन्द्रजी के पास लौट आये ॥ ४० ॥ फिर श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा अनेकों राक्षसों का मारा जाना और लका का जलाया जाना सुना तो वे शिलाओं द्वारा समुद्र पर सेतु बाँध

कर बानरो के सहित लकापुरी जा पहुचे और रावण के दुर की प्राचीर आदि वो उन्होंने नष्ट कर डाला ॥४१॥

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्  
शरै खरतरै क्रुधा गजरथाश्वहसाकुल ।  
करालकरवालत प्रबलकालजिह्वाग्रतो  
निहत्य वरराक्षमान्नरपतिर्बभौ सानुग ॥४२॥

जघान घनघोषणानुगगणैरसृक् प्राशनै ।  
ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करै  
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशिनान् ।  
निजच्छुरमरादनानतिबलान्दशास्यानुगान्  
नलाङ्गदहरीश्वराऽशुगसुतर्कराजादयः ॥४३॥  
ततोऽतिबललक्ष्मणाञ्चदशनाथशत्रु रणे  
प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरान्वज्ञनान्  
निकुम्भ मकराक्षकांचिशितखञ्ज पातै. क्रुधा ॥४४॥

फिर लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने अत्यन्त उग्र बाणों को धारण किया और गज, अद्व तथा रथादि से युक्त होकर तीक्षण बाणों और विकराल श्रमि से अनेक राक्षसों का नाश करके कराल काल की जिह्वा के अग्र भाग के समान अपने अनुगामियों सहित शोभा पाने लगे ॥४२॥ फिर सुग्रीव, पवनसुत हनुमान, नल, नील, अगद और जामवन्त आदि परम पराक्रमी बानरों ने वृक्ष और पर्वत शिलाएँ उखाड़ कर उनके प्रहार से देव-शत्रु महाबली रावण के उन सेवकों को, जो मीताजी के क्रोध से पहिले ही मरे के समान हो रहे थे, नष्ट कर दिया ॥४३॥ महाबली लक्ष्मण ने अत्यन्त घोर शब्द करने वाले रुधिरपायी राक्षसों से समन्वित इन्द्रजित मेघनाद को मार डाला । फिर क्रोध पूर्वक उन्होंने निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि नामक बली निशाचरों का भी सहार कर दिया ॥४४॥

ततो दशमुखो ररणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-  
 रलच्छुभुणकोटिभि परित्पृनो युयोधायुधः ।  
 कपीश्वरचमूपते पतिमनन्तदिव्यायुध  
 रघूद्वहमनिन्दित सपदि मङ्गतो दुर्जय ॥४५॥  
 दशाननमरि ततो विधिवरसमयावर्द्धितम्  
 महावलपराक्रम गिरिमिवाच्चल सयुगे ।  
 जघान रघुनायको निशितसायकरुद्धतम्  
 निशाच्चरचमूपति प्रबलकुम्भकर्ण ततः ॥४६॥  
 तयोः खरतरै शरैर्गग्नमच्छमाच्छादित  
 बभौ घनधटासम मुखरमतडिव्यन्हिभिः ।  
 धनुर्गुणमहाशनिधवनिभिरावृत भूतल  
 भयच्छरनिरन्तर रघुपतेश्च रक्ष. पते: ॥४७॥

फिर रावण अपने करोडो गज, रथ, अश्व युक्त तथा पदाति सैनिकों के सहित रणभूमि मे उपस्थित हुआ और उसने कपीश्वर सुग्रीव वे भी स्वामी दिव्यायुध धारी श्रीराम से घोर सप्राम किया ॥४५॥ तब रघुनायक श्रीराम ने ब्रह्माजी के वर से प्रबल हुए महा पराक्रमी और युद्ध क्षेत्र मे पर्वत के समान अङ्गिर रहने वाले "राक्षसपति रावण और उसके भाई कुम्भकर्ण" को अपने बाणो से रुद्ध कर दिया ॥४६॥ फिर राम-रावण के उस युद्ध मे तीक्षण बाणो से गगन मडन उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जिस प्रकार मेघों की घटा से हो जाता है। बाणों के परस्पर टकराने से जो शब्द युक्त अग्नि की चिंगारियाँ निकलती थीं, वह ऐसी प्रतीत होती थीं, जैसे गर्जन करती हुई बिजली चमक उठती है। विद्युत-गर्जन के समान धनुष की टकार से व्यास हुई रणभूमि अत्यन्त भयानक लगने लम्ही ॥४७॥

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा  
 पपात भूवि राणस्तिदशनाथविद्रावण ।  
 ततोऽतिकुतुकी हरिज्वलनरक्षिता जानको

समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरी यथौ हृषितः ॥४८॥  
 पुरन्दरकथादर सपदि तत्र रक्ष पतिम् ।  
 विभीषणामभीषण समकरोत्ततो राघव, ॥४९॥  
 हरोश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुत सानुजा  
 रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।  
 मुनीश्वरगणाच्चितो रघुपतिस्त्वयोध्या यथौ  
 विवच्य मुमिलाञ्छन गुहगृहेऽतिसख्य स्मरन् ॥५०॥

फिर इन्द्र को त्रस्त करने वाला रावण जानकी जी के क्रोध से व्याप्त एवं श्रीराम के अस्त्रानल से दग्ध होकर धराशायो हो गया । राघण की मृत्यु हो जाने पर वानर श्रेष्ठ हनुमान जानकीजी को शुद्ध करके लाये और उन्हे श्रीराम को समर्पित कर दिया । फिर प्रसन्न चित्त से अपने स्थान को गये ॥४८॥ फिर देवराज के कहने से श्रीराम ने रावण के भाई विभीषण को राक्षसों के राज्य पर अभिषिक्त किया ॥४९॥ फिर भगवान् रामचन्द्र जी वानर आदि तथा सीताजी और लक्ष्मण को साथ लेकर ग्रत्यन्त सुशोभित पुष्पक यान पर चढ़ कर अयोध्या नगरी के लिए चले । मार्ग में चलते हुए जब मध्य वन में पहुँचे तब उन्हे अपने मुनिवेश और गुह के गृह तथा उसकी मित्रता का स्मरण हुआ । तभी मुनियों ने उनके समीप आकर उनका पूजन किया ॥ ५० ॥

ततो निजगणावृतो भरतमातुर सान्त्वयन्  
 स्वमातृगणावाक्यतः पितृनिजासने भूपति ।  
 वसिष्ठमुनिपुङ्गवे कृतानिजाभिषेको विभु-  
 समस्त जनपालक सुरपतिर्यथा सवभौ ॥५१॥  
 नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तपरा;  
 स्वधर्मकृतनिश्चिवाः स्वजनसङ्गता निर्भया ।  
 घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हृषिता  
 भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ॥५२॥

गतायुतसमा; प्रियैनिजणे प्रजा रञ्जयन्  
निजा रघुपति. प्रिया निजमनोभवैर्महोहयन् ।  
मुनीन्द्रगणासयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-  
धर्नैविपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैष्विभि ॥५३॥

फिर अपने जनों से आवृत्त होकर दुख से कातर हुए भरतजी को सान्त्वना दी और माताओं की आङ्गा से अपने पिता के राज्य सिहासन पर अभिषिक्त हुए। उस समय वसिष्ठ आदि महर्षियों ने उनका अभिषेक किया और तब वे लोकों के स्वामी श्रीराम इन्द्र के ममान शोभा पाने लगे ॥५१॥ फिर प्रजा जन धन से सम्पन्न हो गए, द्विजवर तपस्या में मग्न रहने लगे। सभी परस्पर प्रेम-भाव पूर्वक भय-रहित चित्त से रहते हुए अपने-अपने धर्म में तत्पर हो गए। मेवों द्वारा समय पर वृछिल होने से पृथिवी मुदित हो गई। इस प्रकार अत्यन्त पराक्रमी श्रीराम के राज्य को प्राप्त होने से सम्पूर्ण विश्व सत्पथ का अनुगामी हो गया ॥५२॥ भगवान् श्रीराम अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखने और अपनी प्राणप्रिया सीताजी के मन को भौं आनन्दित करने लगे। उन्होंने महर्षियों के महयोग से बहुत प्रकार श्री दक्षिणा और दान-यज्ञादि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते हुए तीन अश्वमेव यज्ञ निर्विधन रूप से पूर्ण किये। इस प्रकार उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया ॥५३॥

तत किमपि कारण मनसि भावयन्भूपति-  
जंहौ जनकजा वने रघुवरस्तदा निर्वृणाः ।  
ततो निजमत स्मरन्समनयस्त्वचेत् सुतो  
निजाश्रममुदारधीरघुपते प्रिया 'दु-खिताम् ॥५४॥  
तत' कुशलवौ सुतौ प्रसुखुबे धरित्रीसुता  
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।  
स तामपि सुतान्विता मुनिवरस्तु रामान्तिके  
समर्पयदनिन्दिता सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥५५॥

ततो रघुपतिस्तु ता सुतयुता रुदन्ती पुरो  
जगाद् दहने पुन व्रविश शोधनायात्मन ।  
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपते पदाव्जे नता  
विवेश जनीयुता मणिगणोज्वल भूतलम् ॥५६॥

फिर किसी कारण वश श्रीराम को अपना हृदय कठोर करना  
पड़ा और उन्होंन जानकीजी को परित्याग का वन मे पहुँचा दिया । तब  
महर्षि बालमीकि अपने द्वारा रचित रामायण का स्मरण करके दुखित  
चित्त होते हुए जानकीजी का अपने आश्रम मे लिवा लाये ॥५४॥  
फिर जानकीजी के कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । इन दोनों  
राज पुत्रों ने श्रीराम के समीप पहुँच कर उनका यश गाया । फिर महर्षि  
बालमीकि ने अनिन्दित एव देव-पूजिता जानकीजी को इन दोनों पुत्रों  
के सहित श्रीराम को समर्पित कर दिया ॥५५॥ दोनों पुत्रों के सहित  
रोती हुई जानकी को अपने सामने खड़ी देख कर श्रीराम उनसे बोले—  
सीते ! तुम अपनी शुद्धि के लिये पुनः अभिन-प्रवेश करो । उनके यह  
वचन सुन कर जानकी जी ने उनके चरणारविन्दी मे प्रणाम किया आदर  
अपनी माता पृथिवी के साथ पाताल मे प्रविष्ट हो गई ॥५६॥

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाण स्मरन्  
वनिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्व पदम् ।  
पुर.स्थितजन.स्वकै पशुभिरीश्वर सस्पृशन्  
मुदा सरयुजीवन रथवरे परीतो विभुः ॥५७॥  
ये शृण्णन्ति रघुद्वहस्य चरित कर्णामृत सादरात्  
ससाराण्वशोषणाच्च पठतामामोदद मोक्षदम् ।  
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये  
वशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेश प्रभुः ॥५८॥

जानकीजी को इस प्रकार पाताल मे गई देख कर रामचन्द्र भी  
उनका स्मरण करते हुए अपने गुरु वसिष्ठ, अनुजगण तथा परिजनों

और पशुप्रो के साथ मरयू तट पर गये और प्रसन्न हृदय से जल का स्पर्श करके दिव्य विमान में आँख होकर अपने लोक को गये ॥५७॥  
 कानों के लिए अमृत के समान इस राम चरितामृत को जो आदर महित सुनेगे उनकी सभी बाधाएँ श्रीराम-कृष्ण के दूर हो जायेगी ।  
 रोग नष्ट होगे, वश-वृद्धि, धन-जन की समृद्धि और स्वर्ग रूप एकदर्य की प्राप्ति होगी । जो इसका पाठ करेगे, उनके लिए यह समार-सागर शुष्क होकर अत्यन्त आनन्द तथा मोक्ष-रूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होगी ॥५८॥

## चतुर्थ मैथिपा

रामात्कुशोऽभूदतिथिऽस्ततोऽभून्निषधान्नम् ।  
 तस्मादभूत्पुण्डरीकं क्षेमधन्वाऽभवत्तत ॥१॥  
 देवानीकस्ततो हीनं परिपात्रोऽथ हीनत ।  
 बलाहकस्ततोऽकंश्च रजनाभस्ततोऽभवत ॥२॥  
 खगणाद्विघृतस्तस्माद्विरण्यनाभसङ्गितं ।  
 तत पुष्पोदध्युवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथा भनवणक ॥३॥  
 तस्माच्छ्रीघ्रोऽभवत्पुत्रं पिता मेऽनुलविकम् ।  
 तस्मान्मरु मां केऽपीहु बुधञ्चापि सुमित्रकम् ॥४॥  
 कलापग्रामप्रासाद्य विद्धि सत्तापसि स्थितम् ।  
 तवावतार विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ।  
 प्रतीक्षय काल लक्षाढ्द कले प्राप्तस्तवान्तिकम् ।  
 जन्मकोद्य धसा राशीनर्शन वर्षंशासनम् ।  
 वशकीतिकर सर्वकामपूर परात्मन ॥६॥

उन श्रीराम के पुत्र कुश हए। कुश के अतिथि, अतिथि के निषष्ठ, निषष्ठ के नभ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए ॥१॥ क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के हीन, हीन के परिपात्र, परिपात्र के बलाहक, बलाहक के श्रकं योर श्रकं के पुत्र रजनाभ हए ॥२॥ रजनाभ के खगणा, खगणा के विघृत, विघृत के हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ के पुष्प, पुष्प ध्रुव, के ध्रुव के स्यन्दन और स्यन्दन के पुत्र

अग्निवर्णं हुए । ३॥ अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्र हुए, वे अत्यन्त विक्रम वाले ही मेरे पिता थे । मैं उन्हीं शीघ्र का पुत्र मह हूँ । कुछ लोग मुझे बुव और कुछ सुमित्र कहते हैं ॥४॥ अब तक मैं कलाप ग्राम में निवास करता हॉया तपश्चया मेरत था । मतरवर्णी सूनु व्यास जी के मुख मे मुझे आपके अवनार का प्रसाद ज्ञान हुप्रा और तब मैं कनियु । की एक लाख वष तक प्रतीक्षा करने पश्चात् आप ह सभी । उस्था हुप्रा हूँ । क्योंके आप परमात्मा का सामीक्ष्य प्राप्त होने स रुदो जन्मो के पापों का नाश हा जागा है तथा वर्म-यश की वृद्धि और सभी कामनाओं की पूर्ति होनी है ॥५-६॥

ज्ञातस्त्वान्वयस्त्वच सूर्यवशसमुद्भवः ।

द्वितोय कोऽपर श्रीमान्महापुरुषलक्षण ।७।

इति कल्किवच्च, श्रुतवा देवापिर्मधुराक्षराम् ।

वाणी विनयसम्भ्र. प्रवक्तुमुपचक्रमे ।८।

प्रलयान्ते नाभिपदभात्तवाभूव्यतुरानन ।

तदोयतनयादत्र श्रन्द्रस्तस्मात्ततो ब्रुध. ।९।

तस्मात्पुरुरवा जन्मे ययातिनहिषस्तत. .

देवयान्या ययातिस्तु यदु तुर्वसुमेव च ।१०।

गर्भिष्ठाहा द ग द्रृह्युच्चानु पूर्वव सतते ।

जनयामास भूतादिभूतानाव सिसृक्षया ।११।

पूरोज्जन्मेजयस्तस्मात्प्रविन्वानभवतत ।

प्रवोरस्तन्मनस्युर्व तस्माच्चाभयदोऽभवत् ।१२।

उरक्षयाच्च त्रयहिस्ततोऽभूत्पुष्करहिणिः ।

वृहक्षेत्रादभूद्वस्ती यज्ञाम्ना हस्तिनापुरम् ।१३।

कल्कि बोले—तुम्हारी वशावली सुनकर मैं यह जान गया कि तुम सूर्यवश मेर उत्पन्न हुए हो । परन्तु तुम्हारे साथ यह महामुखो के लक्षणों से मम्पन्न एव श्रीमात् पुरुष दूनरे कौन हैं ? ॥७॥ यह सुन कर देवापि ने विनाय दूर्वा मवुर वाणी से निवेदन किया । वे बोले—

हे प्रभो ! प्रलय का अन्त होने पर श्रापके नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी । उन ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए । अत्रि के चन्द्रमा, चन्द्रमा के बुध, बुध के पुरुरवा, पुरुरवा के नहुष और नहुष के पुत्र यथाति हुए । उन यथाति ने अपनी पत्नी देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वं नामक दो पुत्रों को जन्म दिया ॥६-१०॥ हे सत्पते ! उन्हीं यथाति ने शर्मिष्ठा नाम को पत्नी से द्रह्यु अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । जैसे सृष्टिकाल में भूतादि के द्वारा पचभूतों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही यथाति से इन पाँच पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥११॥ पुरु का पुत्र जन्मेजय हुआ, जन्मेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् के प्रवीर, प्रवीर के मनस्यु, मनस्यु के अभयदा अभयदा के उरुक्षय उनके ऋषस्थिणि, ऋषस्थिणि के पुष्करारुणि, पुष्करारुणि के वृहत्क्षेत्र और वृहत्क्षेत्र, के पुत्र हस्ती हुए । इन हस्ती नामक राजा के नाम पर ही हस्तिनापुर नामक नगर की स्थापना हुई ॥१२-१३॥

अजमीढोऽहिमौढश्च पुरमीढस्तु तत्सुता ।

कजमीढादभूद्वक्षस्तस्मात्सवरणात्कुरु ॥१४॥

कुरो परिक्षित्सुधनुर्जन्हर्निषध एव च ।

सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्चवनाच्च तत छृती ॥१५॥

ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्राहृषभोऽभवत् ।

तत सत्यजितः पुत्र पुष्पवान्नहुषस्तत ॥१६॥

बृहद्रथान्यभाष्योयां जरासन्ध परन्तप ।

सहदेवस्ततस्मान्सोमापियंच्छु तश्वा ॥१७॥

सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्तत ।

जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः ॥१८॥

हस्ती के तीन पुत्र हुए । उनके नाम अजमीढ, अहिमीढ और पुरमीढ हुए । अजमीढ के पुत्र अृक्ष, अृक्ष के सवरण और सवरण के पुत्र कुरु हुए ॥१४॥ कुरु के पुत्र परीक्षित, परीक्षित के सुघनु, जन्हु और निषव—यह तीन पुत्र हुए । मुघनु के पुत्र सुहोत्र और सुहोत्र के पुत्र

च्यवन हुए । १५। च्यबन के वृहद्रथ वृहद्रथ के कुशाग्र, कुशाग्र के ऋषभ, ऋषभ के सत्यजीत, सत्यजीत के पुष्पवान तथा पुष्पवान के पुत्र नहुष हुए । १६। वृहद्रथ की द्विनीय पत्नी के गर्भ से शत्रुंपीडक जरासन्ध हुए । जरासन्ध के सहदेव, सहदेव के सोमापि और सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए । १७। श्रुतश्रवा के पुत्र सुरथ हुए । सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जयसेन, जयसेन के रथानीक और रथानीक के पुत्र क्रोधी स्वभाव के युतायु हुए । १८।

तस्माद्देवातिथिस्तस्माद्वक्षरतस्माद्दिलीपकः ।

तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमोश्वर ! । १६।

राज्य शान्तनवे दत्वा तपस्येकविया चिरम् ।

कलापग्राममासाद्य त्वा दिव्यक्षुरहागत । २०।

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाभ्युजम् ।

तब कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवता पदम् । २१।

तयोरेव वच श्रुत्वा कल्पिकः कमललोचनः ।

प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समव्रवीत् । २२।

युवा परमधर्मज्ञी राजानौ विदितादुभौ ।

मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथ । २३।

युतायु के पुत्र देवातिथि हुए । देवातिथि के ऋक्ष, ऋक्ष के दिलीप और दिलीप के पुत्र प्रतीपक हुए । हे प्रभो । मैं उन्हीं प्रतीपक का पुत्र देवापि हूँ । १६। मैंने शान्तनु को अपने राज्य पर आसीन किया और स्वयं कलाप ग्राम मे रह कर एकचित्त हो तपस्या करता था । अब आपके दर्शन की कामना से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । २०। मैंने मरु और मुनिवरो के सहित यहाँ आकर आपके चरणारविन्द को प्राप्त किया है । इसके फल स्वरूप मैं काल के कराल गाल मे गिरने से बच गया, आत्म तत्वज्ञो का पद हमे मिल जायगा । २१। मरु और देवापि की बातों को सुन कर पदमाक्ष कल्पित्री अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने आश्वासन भरे शब्दों मे उनसे कहा । कल्पित बोले—मैं जान गया कि

आप दोनों परम धर्मज्ञ राजा हैं। इस समय आप मेरे आदेश को मान कर राजव्रग्हण कर उसका परिपालन करो। २२-२३।

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजयोध्यापुरेऽधुना ।

हृत्वा म्लेच्छानवर्मिष्ठान्त्रजाभूतविहिसकान् । २४।

देवापे तत्र राजये त्वा हस्तिनायुरपत्तने ।।

अभिषेक्ष्यामि राजये हृत्वा पुक्कसकान् । २५।

मथुरायोमह स्थित्वा हरिष्यामि तु वा भयम् ।

शय्याकरणानुष्टमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् । २६।

हृत्वा कृत युग कृत्वा पालयिष्याम्यह प्रजा ।।

तपोवेश व्रत त्यक्त्वा समाख्य रथोत्तमम् । २७।

युवा शस्त्रास्त्रकुशलो सेनागणरिच्छदौ ।

भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः । २८।

ह मरो ! अब मैं प्रजाओं का पीड़न करने वाले, जीव-हिसक अधर्मी म्लेच्छा का सहार करके आपको अपनी राजधानी अयोध्या में अभिषिक्त करूँगा। २४। हे देवापे ! हे राजर्ण ! युद्धक्षेत्र में पुक्कसों को मार कर मैं आपकी राजधानी हस्तिनापुर के राज्य पर आपको अभिषिक्त करूँगा। २५। मैं मथुरा नगरी में निवास करता हुआ तुम्हारे भय को नष्ट करूँगा तथा शय्याकरण, उष्ट्रमुख और एकजघ आदि को मार कर सत्युग की स्थापना और प्रजा को रक्षा करूँगा। तुम अभी इस तपस्वी वेश का त्वागन करो और श्वेष्ठ रथ पर आरोहण करो। २६-२७। तुम सभी शस्त्रास्त्र विद्या में पारगत एव महारथी हो, अतः हमारे साथ ही विचरण करो। २८।

विशाखयूपभूपालस्ततया भिनयान्विताम् ।

विवाहे रुचिरापाङ्गी सुन्दरी त्वा प्रदास्यति । २९।

साधो भूपाल लोकाना स्वस्तये कुरु मे वचः ।

रुचिराश्वसुता शान्ता देवापे त्वं समुद्धह । ३०।

इत्याश्वासकथा कल्के. श्रुत्वा तौ मुनिभि सह ।

विसमयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् । ३१।

इति ब्रुवत्वं भयदे आकाशात्सूर्यं सन्निभौ ।

रथौ नानमणिग्रातघटितौ कामनौ पुर. ।

समायातौ जवलद्विद्यशस्त्राम्<sup>१</sup> परिवारितौ । ३२।

दहशुस्ते सदो मध्ये विश्वमर्मविनिर्मितौ ।

भूपा मुनिगणा सध्या सहर्षि किमितीरिता । ३३।

हे मरो ! विशाख्यूप नरेश अपनी परम शीलवनी तथा रुचिरागी कन्या को तुम्हे विवाह देगा । अत तुम ससार का कल्याण करने के उद्देश्य से मेरे वचनों का पालन करो । हे देवापे ! तुम भी रुचिराश्व की शान्त नाम्नी सुपुत्री से विवाह कर लो ॥३०॥ कलिकजी के यह आश्वासन युक्त वचन सुन कर मुनियों के सहित देवापि अत्यन्त विस्मित हुए और फिर सन्देह छोड़ कर यह विश्वास करने लगे कि कलिक ही भगवान् विष्णु एव सक्षात् ईश्वर हैं ॥३१॥ कलिकजी ने जैसे ही यह अभयप्रद वचन कहे वैसे ही आकाश मार्ग से स्वच्छा पूर्वक चलने वाले अनेक रत्न दि से निर्मित दो रथ अवतीर्ण हुए । सूर्य के समान तेजोमय उन रथों में उज्जवल दिव्य शस्त्रास्त्र भरे हुए थे ॥३२॥ उम समय उपस्थित सभी मुनिगण और राजागण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रथों को उतरे हुए देख कर 'यह क्या' — 'यह क्या' कहते हुए विस्मय एव हर्ष प्रकट करने लगे ॥३३॥

युवामादित्यसोमेन्द्रद्यमवैथ्रवणाङ्गजौ ।

राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भती विदन्त्यमी । ३४।

कालेनाच्छादिताकारौ मय सज्जादिहोदितो ।

युशा रथावारुहतौ शकदत्त ममाज्ञया ॥ ३५॥

एव वदति विश्वेशो पदमनाथे सनातने ।

देवा बवषु कुसुमस्तुष्टुत्रुमुंनयोऽग्रतः । ३६।

गङ्गावारिपरिक्लिन्तशिरोभूतिपरागवान् ।

शगे पर्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ । ३७।

तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभौ

धर्मावासः सुरुचिरजटाचीरभृददण्डहस्तः:

लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्मसध-  
स्तेजोराशि सनकसद्गो मस्करी पुष्कराक्षः ॥३८॥

तभी कलिकज्जी ने कहा — यह सभी को विदित है कि तुम दोनों राजवश में विश्व-रक्षा और पृथिवी के पालनार्थ उत्पन्न हुए हो । तुम्हारी उत्पत्ति सूर्य, चन्द्र, यम और कुबेर के अश से हुई है ॥३४॥ अब तक तुम अपने रूप को छिपाये रहे हो । परन्तु अब, जब यहाँ मेरे पास आये हो तो मेरी आज्ञा से इन्द्र द्वारा भेजे गये इन रथों पर आरूढ हो जओ ॥३५॥ पद्मापति कलिकज्जी के द्वारा उक्त वचन कहे जाने पर आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि और मुनियों ने स्तुति की ॥३६॥ मन्द वायु प्रवाहित होने लगा । शिवजी के जटा जाल से उन्मुक्त गगा-जल के मिलन से विभूति भीग गई । मङ्ग पवन ने उस विभूति के कण रूपी परागों को उड़ा कर पार्वती के अगो मे लगाते हुए कल्याण गुण की प्राप्ति की ॥३७॥ तभी सनक मुनि के समान अत्यन्त तेजस्वी, धर्म भवन रूप सुरुचिर जटाओं को धारण किये और हाय मे दण्ड लिये एक ब्रह्मवारी वहाँ आये । उनकी देह कान्ति तस स्वर्ण के समान चमचमा रही थी । मनोहर वस्त्रवारी उन कमल त्रोचन दिव्य महापुरुष के मुख पर अक्षय भाव परिलक्षित हो रहा था । उनके तेजोमय शरीर का स्पर्श होते ही सप्तार के स्मृणं पारों का क्षय हो रहा था ॥३८॥

तृतीयांश—

## पंचम अध्याय

अथ कलिक समालोक्य सदसाम्पत्तिभिः सह ।  
समुत्याय ववन्दे त पाधाधर्याचिमनादिभि । १।  
वृद्ध सवेश्य त भिक्षु सर्वश्रिमनमस्कृतम् ।  
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः । २।  
प्रायशो मानवा लोके लोकाना पारणेच्छया ।  
चरन्ति सर्वसुहृद् पूर्णा विगतकल्मषा । ३।  
अह कृतयुग श्रीश तवादेशकर परम् ।  
तवाविभावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् । ४।  
निस्पाधिर्भवान्काल सोपान्नित्यमुपागत ।  
क्षणादण्डलवाद्यज्ञेर्मायया रचित स्वया । ५।  
पक्षाहोरात्रमासत्तुं सवत्सरयुगादय ।  
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश :६।

शुक बोल—इस ब्रह्मचारी को देखते ही भावात् कलिक ने अपने सभासदो के सहित बठ कर पाय, अर्ध्य और आचमन आदि से उनका पूजन किया । १। सभी आश्रमों के द्वारा नमस्कार योग्य उन भिक्षु ब्रह्मचारी को आदर पूर्वक बैठा कर कलिकजी ने प्रश्न किया—  
आप कौन हैं ? हमारे सौभाग्य से ही आपका यहाँ आगमा हूप्रा है । २।  
पापों से परे रहने वाले जो सत्यरुप सब के सुहृद है, वे लोक-कल्पणार्थ ही पृथिवी पर विचरण किये करते हैं । ३। भिक्षु ने कहा—हे श्रीरते !  
मैं आपका आज्ञाकारी सत्युग हूँ । आपके अवतार का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने के निमित्त ही यहाँ उपस्थित हूप्रा हूँ । ४। यारा निरुपाचि एव

साक्षात् काल स्वरूप है। परन्तु अग्नि, दण्ड और लवादि अग्नि के द्वारा इस समय उपाधि सहित हो गए हैं। यह मम्पूर्ण विश्व आपकी ही माया से प्रकट हुआ है। ५। आपकी ही सत्ता का अनुभव करने हए यह पक्ष, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु, सवत्सर, युगादि काल एवं चौदहो मनु-यह सभी नियमित रूप से विचरण करते हैं। ६।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्तत स्वारोचिषो मनु ।

तृतीय उत्तमस्ताच्चतुर्थस्तामस स्मृत । ७।

पञ्चमो रैवत षष्ठश्चाक्षुष परिकीर्तिन ।

वैवस्वत सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टम । ८।

नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्तत ।

दशमो धर्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते । ९।

रुद्रमावर्णिकस्तत्र मनुर्वेद्वादशः स्मृत ।

त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिलोकविश्रुत । १०।

चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तत्र विभूतयः ।

यात्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदत । ११।

द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युग्म ।

चत्वारि त्रीणि द्वे चैक सहस्रगणित मतम् । १२।

तोवच्छ्रतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि ।

सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविध । १३।

पहले मनु स्वायंभुव, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवे रैवत छठवे चाक्षुष, सातवे वैवस्वत, आठवे सावर्णिक, नवे दक्षसार्णि, दसवें ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवे धर्म सावर्णि, बारहवे रुद्र सावर्णि, तेरहवें वेद सावर्णि और चौदहवें इन्द्र सावर्णि-यह चौदहो मनु आपकी ही विभूति रूप है। यह सब घण्टे-घण्टे नाम रूपादि के भेद से चलते हुए प्रकाशित होते हैं । ७-१। बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है, जिसके अनुसार चार हजार दिव्य वर्षों का सत्युग, तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेता, दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर

और एक हजार विवरों का कलियुग होता है । १३। इन चारों युगों का सध्याक्रम ( सध्याक्राल ) क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, और एक सौ वर्ष का होता है । इन चारों युगों की जेष्ठ सध्या का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिये । १३।

एकसप्तिक तत्र युग भुद्धते मनुभुवि ।

मनुनामपि सर्वेषामेव परिणतिर्भवेत् ।

दिवा प्रजापतेस्तत्त्वं निशा सा परिकीर्तिता । १४

अहोरात्रञ्च पक्षस्ते माससवत्सरतर्त्वं ।

सदुगाधिकृत कालो ब्रह्मणा जन्ममृत्युकृत । १५।

शतसवत्सरे ब्रह्मा लय प्राप्नोति हि त्वयि ।

लयान्ते त्वन्नाभिमध्याद्विथित सृजति प्रभु । १६।

तत्र कृतयुगान्तेऽह काल सद्व्यापालकम् ।

कृतकृत्या प्रजा यत्र तन्नाम्ना मा कृत विदु । १७।

इति तद्वच आश्रुत्व कलिकर्निजजनावृत ।

प्रहर्षमतुल लब्धा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् । १८।

अवहित्यामुपालक्ष्य युगस्याह जनान्हितान् ।

योद्धुकाम कले पुर्या हृष्टो विशसने प्रभु । १९,

गजरथतुरगान्तराश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणा-

विताङ्गान् । धूतविविवरास्त्रशङ्खयुगान्त्युवितिपु-

राणागणायध्वमानयध्वम् । २०।

प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी तक पृथिवी को भोगते हैं ।

इसी प्रकार सब मनु बदलते रहते हैं । चौदहवें मनु जिनने सब तक पृथिवी का भोग करते हैं, उतना समव ब्रह्मा का एक दिवस होता है ।

इतने ही परिमाण की ब्रह्मा की एक रात्रि होती । १४। इसी प्रकार दिवस-रात्रि, पक्ष, मास, सवत्सर और ऋतु आदि की उपाधि से ब्रह्माजी की जन्म-मृत्यु आदि का विद्यान होता है । १५। ब्रह्मा अपनी सौ वर्ष की आय पर्ग होने पर वह स्वयं मे लय हो जाते हैं । फिर

जब प्रलय काल बीत जाता है तब आपके नाभि कमल से उनका पुनः  
उद्भव होता है । १६। मैं उक्त काल का अश रूप ही कृतयुग हूँ।  
मेरे द्वारा श्रेष्ठ धर्म पाला जाता है । मेरे द्वारा सम्पूर्ण प्रजा धर्म का  
अनुष्ठान करते हुए धन्य हो जाती है इसी क्लिए ज्ञानीजन सुझे कृतयुग  
कहते हैं । १७। सत्ययुग के इम प्रकार के वचनों को सुन कर अपने जनों  
के सहित कलिकजी परम हर्षित हुए । १८। कलियुग के नाश में समर्थ  
कलिकजी ने सत्ययुग को आया देख कर कलियुग के शासन में स्थित  
विशासन नामक नगरी में युद्ध करने की इच्छा करते हुए अपने अनुया-  
यियों से बोले । १९। हाथी पर आरूढ़ होकर युद्ध करने वाले, अश्व और  
रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले तथा पदाति सैनिक जो देह पर अद्भुत  
स्वर्णाभूषण और शस्त्रास्त्रों के धारण करने वाले हैं, ऐसे युद्ध-कुशल  
बीरों की गणना करो । २०।

तृतीयांश —

## षष्ठ अध्याय

इति तौ मरुदेवापो श्रुत्वा कल्केर्वच पुरु ।  
कृतोद्भाहौ रथाल्ढौः समायातौ महाभुजौ ।१।  
नानायुधधरौ संन्यंरावृतौ शूरमानिनौ ।  
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दशितौ बद्धहस्तकौ ।२।  
काषणोवसशिरस्त्राणौ धनुद्धरं रधुरन्धरौ ।  
अक्षौहिणीभि षडभिस्तु कम्पयन्ती भुव भरै ।३।  
विशाख्यूपभूपस्तु गजलक्ष्मैः समावृतः ।  
अश्वै सहस्रनियुतै रथे सप्तसहस्रै ।४।  
पदातिभिर्द्विनक्षंश्र राज्ञद्वैधृत्कामुकैः ।  
वातोद्भूतोत्तरोष्णोऽौ सर्वत परिवारित ।५।  
स्थिराश्वसहस्राणा पञ्चाश्चिद्गर्महारयै ।  
गजैदशशतैर्मत्तैर्वलक्ष्मै वृत्तो बभौ ।६।

सूतजी बोले—कलिकंत्री की ग्राज्ञा से मरु और देवापि ने यिवाह कर लिया और वे दोनो महाबाहू दिव्य रथो पर आळड हुए वहाँ आ पहुँचे ।१। अपने महाबली होने का अभिमान रखने वाले वे दोनो दीर अपने देह को सुरक्षित किये हुए और अ गुलियो मे त्राण धारण किये हुए थे । अस्त्रशस्त्रो से भले प्रकार सुसज्जित उन दीरो के साथ अग्र-सिंत सेना थी ।२। वे अपने शिरो पर काष्ठर्य वर्ण का शिरस्त्राण धारण किये थे तथा सर्व श्वेष्ठ धनुष बाणों से सज्जित अपनी छः अक्षो-

हिणी सेना से पृथिवी को कम्पित कर रहे थे । ३। विशाखयूप-नरेश भी अपनी एक लाख हाथी, एक करोड़ घोड़ों और सात हजार रथों में सम्पन्न सेना के साथ थे । ४। उनके साथ दो लाख पैदल सेनिक धनुप बाणों से मुर्जिजत थे । वायु के झोकों से उनके स के और दुकून हिल रहे थे । ५। इनके अतिरिक्त पचास हजार लाल वर्ण के अश्व, दस हजार मदमत्त गज एवं अरेको महारथी तथा नौ लाख पदाति थे । ६।

अक्षौहिणीभिर्दशभि कल्कि परपुरञ्जय ।

समावृनस्तथा देवरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् । ७।

भ्रातृपुत्रसुहृद्दिश्च मुदित संनिकंवृत् ।

ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षा जगतामीश्वर प्रभुः । ८।

काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्मं परिजनैः सह ।

समाजागाम कलिना बलिनापि निराकृत । ९।

ऋत प्रसादभय सुख मुदमुथ स्ववम् ।

योभमर्था तनोऽदर्प स्मृति क्षेम प्रतिश्रयम् । १०।

नरनारायणो चोभौ हरेरशौ तपाव्रनौ ।

धर्मस्त्वेतात्ममादाव पुत्रात्मोश्चागतस्त्वरन् । ११।

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टि पुष्टि क्रियोचति-

बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीमूर्तिर्धम्मपालका । १२।

एतास्तेन सहायता निजबन्धुगणौ; सह ।

कलिरुमालोकित तत्र निजकार्यं निवेदितुम् । १३।

शत्रु पुरों के विजेता कल्किजी स्वर्ग में सुशोभित सुरपति इन्द्र के समान दस अक्षौहिणी सेना के साथ अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए । ७। इस प्रकार भाई, पुत्र, सुहृद और सैन्य-मूँह से सम्पन्न होकर जगदीश्वर कल्किजी ने दिग्विजय की इच्छा से प्रस्थान किया । ८। तभी कलियुग के द्वारा निग्रह किया हुआ धर्म ब्राह्मण वेश में वहा उपस्थित हुआ । ९। ऋत, प्रसाद, अभय, सुख प्रसन्नता, योग, अर्थ, अदर्प, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय नामक उसके सेवक साथ थे । १०। भगवान् विष्णु

के अश रूप तपोनिष्ठ नर-नारायण को तथा अपने स्त्री पुत्रादि को माथ लेकर धर्म शीघ्रता पूर्वक वहाँ आ गया । ११। अद्वा, सैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तिरिक्षा, हो आदि धर्म की रक्षा में तत्पर यह सभी साकार रूप में अपने बावबो से युक्त होकर कलिङ्गी के दर्शनार्थ और स्वकार्य निवेदनार्थ वहा उपस्थित हुए । १२-१३।

कलिङ्गद्विज समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।

प्रोवाच विनयापन्न कम्त्व कस्मादिहागत । १४।

स्त्रीभि पृत्रैश्च सहित क्षीणापुण्य इव ग्रह ।

कस्य वा विषयादाङ्गस्तन्त्रव वद तावत । १५।

पूत्रा स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषा ।

वैष्णवा साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृता । १६।

कल्केरिति वच श्रुत्वा धर्मः शर्म निज स्मरन् ।

प्रोवाच कमलानाय मनाथम्त्वतिकातर । १७।

पुत्रैः स्त्रीभिन्नजजनै कृताङ्गलिपुटैर्हरिम् ।

स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदित त दयापरम् । १८।

शृगु कल्के ममारुपान धर्मोऽह ब्रह्मरूपिणा ।

तत्र वक्ष स्थलाज्ञानं कामद मवदेहिनाम् । १९।

भगवान् कर्त्तक ने ब्राह्मण को देखते ही विनय पूर्वक एवं विश्रित उसका पूजन किया और बोले-आप कोन हैं ? कहाँ से आगमन हुआ ? । १४। क्षीण पुरुष मनुष्य के समान आप अपने स्त्री पुत्रादि के सहित किस राज्य से यहा आये हैं, यह सब मुझे यथार्थ रूप में बताइये । १५। जैसे वैष्णव साधु पाखण्ड के पराजित हो जाते हैं, वैसे ही आप बल-पौरुष से हीत होकर स्त्री पुत्रादि के सहित अत्यन्त कातर क्यो हो रहे हैं ? । १६। अत्यन्त कातर और अनाथ रूप में आया हुआ धर्म पदमापति कलिङ्गी के बचन सुन कर अपने कल्याणार्थ निवेदन करने लगा । १७। उसने अपने अनुयामियों के सहित हाथ जोडे और भ्रान्त-धारा-

तथा दयावन्त प्रभु का पूजन कर प्रणाम और स्तुति करने लगा । १९८ धर्म बोला—हे प्रभो ! मैं अपना वृत्तान्त निवेदन करता हूँ, इसे सुनिये । मैं ब्रह्मस्वरूप धर्म आपके वक्ष स्थल से उत्पन्न हुआ हूँ । मेरे द्वारा सभी प्राणियों के कार्यों की सिद्धि होती है । १९९ ।

देवानामग्रणीहृव्यकव्याना कामधुरिभु ।

तवाज्ञया चराम्येव साधुकीत्तिकृदन्वहम् । २०० ।

सोऽह कालेन वलिना बालनापि निराकृत ।

शककाम्बोजशबरै, सर्वेरावासवासिना । २१ ।

अधुना तेऽखिलाधार । पादमूलमुपागता ।

यथा ससारकालाग्निसत्पता साधवोऽदर्दिता, । २२ ।

इति वाग्मिरपूर्वाभिर्धर्मसंग परितोषित ।

कल्कि कल्कहर श्रीमानाह सहर्षपञ्चनेः । २३ ।

धर्मम् कृतायुग पश्य मरु चण्डाशुवश जम् ।

मा जानासि यथै जात धातुप्रायितविग्रहम् । २४ ।

कोटाकैबौद्धदलनमिति मत्वा मुखो भव ।

अवैष्णवानामन्येषा तत्रोपद्रवकारिणाम् ।

जिधासुर्यामि सेजाभिश्चर गा त्वं निक्रियंतः । २५ ।

देवताओं मे प्रथम गणना योग्य मे यज्ञाश रूप हृव्य-कव्य के अंश का आधिकारी हूँ । मैं यज्ञ फल प्रदान करके साधुजन का अभीष्ट पूर्ण करता हूँ । आपकी आज्ञा से मैं सदैव साधुओं का कार्य सिद्ध करता हुआ घूमता हूँ । २०। इस समय शक, कम्बोज, शबर आदि कलियुग के शासन मे रहते हैं । कालक्रम के कारण मैं उस बलवान् कलि से ही हारा हुआ हूँ । २१। हे अखिलाधार ! इस समय साधुजन विश्वरूपी कालाग्नि से सत्प एव पीडित है । इसी लिए मैं आपके चरणों की शरण मे उपस्थित हुआ हूँ । २२। धर्म के इन अपूर्व वचनों को सुन कर पाप हारी कल्कि जी सब के लिए प्रसन्न करने वाले वचन कहने लगे । २३। उन्होंने कहा—हे धर्म ! इवर देखो, सत्यग का आगमन हो चुका

है । यह मरु नामक सूर्यवंशी नरेश हैं । तुम्हे यह विदित ही है कि मैंने ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर ही यह देह धारण किया है । २४। कीटक में बौद्धों का दलन किया और जो तुम्हारे प्रति अधिक उपद्रव करने में तत्पर रहते हैं तथा जो वैष्णव नहीं है, उन्हे नष्ट करने के लिए मैं सना सहित विचार कर रहा हूँ । अब तुम भी भय-रहित होकर पृथिवी पर गनिशील रहो । २५।

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतै ।

सहितै सचर विभो । मयि सत्ये व्युपस्थिते । २६ ।

अह यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्वन्धवै सह ।

विशा जयार्थं त्वं शत्रुनिग्रहार्थं जगात्प्रिय । २७।

इति कलकेवंवं श्रुत्वा धर्मं परमहर्षित ।

गन्तु कृतमतिस्तेन आधिपत्यममुँ स्मरन् । २८।

सिद्धश्रमे तिजनानवस्याप्य स्त्रिवश्वतः । २९।

सब्रद्वा साधुसत्कारवेदब्रह्ममहारथः ।

नानाशास्त्रान्वेषणेषु सकलपवरकामुर्क । ३०।

सप्तस्वराश्वबो भूदेवसारथिर्वन्हिराश्रयः

क्रियं भेदवलोपेत प्रवयौधर्मनायकः । ३१।

हे धर्म ! मैं स्वयं उपस्थित हूँ, सत्युगा भी आ ही चुका है, तब तुम भयभीत क्यों हो ? तुम व्यथं मोहित क्यों हो रहे हो ? अब तुम यज्ञ, दान और व्रत के सहित पृथिवी पर स्वच्छद विचरण करो । २६।

हे जगत्प्रिय ! तुम अपने पुत्र एवं बांधवों सहित शत्रुओं के निग्रह और दिग्निजय के उद्देश्य से प्रस्थान करो । मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा । २७।

कलिकजी के यह वचन सुन कर धर्मं अत्यन्त आनन्दित हुआ और अपने अधिपत्य का स्मरण करता हुआ, कलिकजी के साथ प्रस्थान में तत्पर हुआ । २८। उस समय उसने अपनी स्त्री को सिद्धाश्रम में स्थित किया । २९। धर्म का युद्ध-वेश साधु-सत्कार था । वेद और ब्रह्म महारथ के रूप में साकार हुए तथा विविध शास्त्रों के अन्वेषण ने धनुष का रूप धारण किया । ३०। वेद के सात स्वर उसके रथ के अश्व हुए, ब्राह्मण

सारथि, शग्नि आसन रूप आश्रय हुमा । इस प्रकार धर्म रूप नायक क्रियानुष्ठान रूपी महाबल से समन्वित होकर चल दिया । ३१ ।

यज्ञदानतप पात्रंयैमैश्च नियमैवृतं ।

खशकाम्बोजकान्त्सर्वाङ्गबर्वरापि । ३२ ।

जेतु कल्किर्यदौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।

भूतवासबलोपेत सारमेयवराकुलम् ॥ ३३ ॥

गोमासपूतिगन्धाद्य काकोलुकशिवावृतम् ।

खोणा दुदर्घूर्तकलहविवादव्यसनाश्रवम् । ३४ ।

घोर जगद्भूयकर कामिनीस्वामिन गृहम् ।

कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्के पुत्रोत्तरवृत क्रुधा । ३५ ।

पुराद्विशसनात्प्रायात्प्रेचकाक्षरथोपरिः

धर्मः कलि समालोक्य ऋषिभि. परिवारितः । ३६ ।

युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।

ऋतेन दम्भः सग्रामे प्रसादो लोभमाहृयत । ३७ ।

इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि से सम्बन्ध हुए भगवान् कल्कि खश, कम्बोज, शबर तथा बर्बर आदि म्लेच्छों की विजय कामना से कलि के आवास वाले स्थान मे पहुचे । वहा भूतों का हड आवास होने से उस स्थान मे सब और श्वान भूँकते थे । ३२-३३ । इस स्थान मे गो मास की दुर्गंध आ रही थी । कौश्रो और उल्लुओं से पूर्ण तथा दूत का आश्रय एव स्त्रियों के विवाद रूपी बलेश इनमे भरा हुआ था । ३४ । ससार के लिए भयप्रद यह नगरी भय कर प्रतीत होनी थी । यहाँ के पुरुष स्त्रियों की आज्ञा के अनुवर्ती थे । वहाँ का अवीश्वर कल्कि जी का अ क्रमण सुन कर अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित उत्तर की धर्जा वाले रथ पर आरूढ होकर विश्वसनपुरी से बाहर आया । उस कलि को देख कर भगवान् कल्कि की आज्ञानुसार ऋषियों के सहित धर्म ने उसके साथ सग्राम प्रारम्भ किया । दम्भ से श्रृत और लोभ से प्रसाद भिड़ गया । ३५-३७ ।

समयादभय क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।  
 निरयो मुदमानाद्य युद्धे विविधायुधैः ।३८।  
 आधिकर्णेन च व्याधि क्षेमेण च बलीयसा ।  
 प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ।३९।  
 एव वृत्तो महाघोरो युद्ध परमदारुणः ।  
 त द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्यां खे विभूतिभि ।४०।  
 मरु खशोश्च काम्बोजैर्युद्धे भीमविक्रमः ।  
 देवापिः समरे चौनैबर्बरेस्तद्गणरपि ।४१।  
 विशाखयूपभूपाल पुलिन्दै श्वपचै सह ।  
 युद्धे विविधे शर्ष्ण रस्तं दिव्यैर्महाप्रभैः ।४२।  
 कल्कि कोकविकोकाम्या वाहिनीभिर्वरायुधैः ।  
 तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ।४३।

क्रोध के साथ अभय और भय के साथ सुख का युद्ध होने लगा । निरय ने प्रीति के पास आकर उस पर शस्त्रास्त्रो से प्रहार किये ।३८। अ वि से योग का, व्याधि से क्षेम का, ग्लानि से प्रश्रय का और जरा से स्मृति का सम्राम होने लगा ।३९। इस प्रकार अत्यन्त घोर एवं दारुण सम्राम उपस्थित हो गया । ब्रह्मादि देवगण अपनी-अपनी विभूतियों के सहित नभमरण्डल में स्थित होकर युद्ध देखने लगे ।४०। भीपण पराक्रमी खश और कम्बोजों से मरु का युद्ध हुआ । देवापि ने चौन और बर्बरों की सेना से मग्राम किया ।४१। विशाखयूप नरेश पुलिन्द और श्वपदादि से महा पराक्रमी विविध अपने दिव्यास्त्रों के सहित भिडे हुए ।४२। कोक-विकोक के साथ स्वयं भगवान् कल्कि श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र लेकर सेना सहित युद्ध में तत्पर हुए । यह कोक-विकोक ब्रह्मा जी से वर प्राप्त करने के कारण अत्यन्त अहकारी हो गए थे ।४३।

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।  
 एकरूपौ महासत्त्वौ देवाना भयवद्धनौ ।४४।  
 पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राज्ञौ जयिनौ दिशाम् ।

शुभ्मः परिवृत्तौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ।४५।  
 ताभ्या स युयुधे कल्कि सेनागणसमन्वितः  
 शुभाना कल्किसंन्याना समरस्तुमुलोऽभवत् ।४६।  
 हैषितैबृहितैदंतशब्देष्टङ्गारतादितै ।  
 शूरोत्कुष्ठैर्बृहितै शशव्यवस्तलताडनै ।४७।  
 सपूरिता दिश सर्वा लोका तो शम्र्म लेभिरे ।  
 देवाश्रम भयसत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययु ।४८।  
 पाशैर्दण्डे खड्गशक्त्यृष्टिचूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरै ।  
 युद्धे शूराश्चिन्नबाह्विष्टमध्या पेतु सख्ये शतश कोटिशश्च  
 देत्यो मे श्रेष्ठ यह दोनो भाई घोर युद्ध मे प्रवीण, प्रत्यन्त  
 बली और देवताओं को भयभीत करने मे समर्थ थे। इन दोनो का रूप  
 एक सा था ।४४। यह दोनो दिविजयी, वज्र जैसे कठोर शरीर वाले थे।  
 दोनो मिल कर मृत्यु को भी युद्ध मे जीत लेने मे समर्थ थे। अपनी  
 बलवती सेना के सहित यह दोनो गदा धारण कर पैदल ही युद्ध मे  
 तत्पर हुए ।४५। इन कोक-विकोक से साथ कल्कि जी का घोर समर्थ  
 हो रहा था उनकी सेना के प्रमुख और भयकर युद्ध कर रहे थे ।४६।  
 अश्वों का हीसना, हाथियों की चिघाड तथा दानों का शब्द, घनुषों की  
 टकार, बीरों के भुजाघात आदि से भयप्रद भीषण शब्द होने लगा  
 ।४७। उस शब्द से दशों दिशाप्रौग्ण ज उठी। कोई भी जीव भय-रहित  
 नहीं था। देवता भी डर के कारण गगन मण्डल से उल्टे-सीधे मार्गों  
 से भागने लगे ।४८। पांशु, दण्ड, खड्ग, शक्ति, शूल, गदा तथा भयकर  
 वाणों के आघात से करोडो शूरों के हाथ, पैर, कटि आदि विभिन्न  
 अग कट-कट कर गिर रहे थे, जिनसे युद्ध भूमि आच्छादित होने लगी  
 थी ।४९।

तृतीयांश —

## सप्तम अध्याय

एव प्रवृत्ते सग्रामे धर्मं परमकोपन ।  
कृतेन सहितो घोर युयुधे कलिना सह ।१।  
कलिर्दमित्रबाणार्थैर्धर्मस्यापि कृतत्य च ।  
पराभूतं पुरीं प्रायात्यवत्वागर्दभवाहनम् ।२।  
चिच्छन्नपैचकरथं स्वद्रक्ताङ्गसञ्चय ।  
छच्छुर्गन्धं करालास्य स्त्रीस्वामिकमगादगृहम् ।३।  
दम्भं सम्भोगरहितं नोदधृतवाणगणाहत ।  
च्याकुलं स्वकुलागारो नि मारः प्राविशदगृहम् ।४।  
लोभं प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः ।  
सारमेयरथं छिन्नं त्यक्तवागाद्रुधिर वमन् ।५।  
श्रभयेन जितं क्रोधं कषायीकृतलोचन ।  
गन्धाख्वाहं विच्छिन्नं त्यक्तवा विशमनं गत ।६।

सूत जी ने कहा— इस प्रकार भयकर युद्ध होता देख कर  
मन्युग सहित धर्म ने अत्यन्त झोवपूत्रक कलि से युद्ध प्रारम्भ किया ।१।  
तब धर्म और सत्युग की भीषण बाण वर्षा को न मह कर हारा हुआ  
किनि अपने वाहन गधे को वही छोड कर भागता हुआ अपनी पुरी मे  
घुम गया ।२। उल्लू की धजा वाला उसका रथ चकनाचूर हो गया ।  
उम्मि देह से रक्त बहने लगा, जिससे छहूंदर की गन्ध निकल रही थी ।  
मुख पर भयानकता आ गई थी । इस अवस्था को प्राप्त हुआ कलि  
अपनी स्वामिनी नारी के भवन मे प्रविष्ट हुआ ।३। इस प्रकार बाण  
वर्षों से आहत एव च्याकुल हुआ कलि दम्भ सम्भोगादि से रहित होकर

अपने कुल के अगर स्वप्न से सार-हीन होता हुआ अपने गृह में जा पहुँचा । ४। उधर प्रसद द्वारा पदाघात को प्राप्त हुए लोभ का शिर कट गया । कुत्तों से युक्त उसका रथ छिन्न भिन्न हो गया । तब वह उसे छोड़ कर रक्त वमन करता हुआ रण क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ । ५। अभय से युद्ध करता हुआ क्रोध भी हार गया । उसके छ नेत्रों में लाली छाई थी । चूँको से युक्त दुर्गम पूर्ण अपने छिन्न-भिन्न रथ को वही पड़ा छोड़ कर वह भी विश्वमनपुरी में जा बुसा । ६।

भय सुखतलाघातादगतासुर्यपतदभुवि ।

निरयो मुदमुष्टिभ्या पीडितो यममाययौ । ७।

आधिव्याध्यादय सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।

नानादेशान्भयोद्विग्न कृतवाराणपीडिता । ८।

धर्म, कृतेन सहितो गत्वा विश्वसन कलेः ।

नगर बारादहन्तर्ददाह कलिना सह । ९।

कलिविष्टलुष्टसर्वज्ञो मृतदारो मृतप्रज ।

जगामैको रुदन्दीनो वषान्तरमलक्षित । १०।

मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जनेदिव्यास्त्रतेजसा ।

देवापि शबराश्वोलान्बर्बरास्तदगणातपि । ११।

दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातेरदर्दयामास वीर्यवान् ।

विशाख्यूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि । १२।

सुख के तलाघात से आहत हुआ भय प्राण त्याग कर धराशायी हुआ । प्रीति के मुष्टि प्रहार से पीडित हुआ निरय भी तुरन्त ही यमान्त लय को चला गया । ७। सत्युग के बाणों से आहत हुई आवि-व्याघ्रि अपने वाहनों का परित्याग करके इधर-उधर भाग गई । ८। इसके पश्चात् सत्युग को साथ लेकर धर्म कलि की राजधानी बिनशन में प्रविष्ट हुआ और उसने कलि के सहित सम्पूर्ण नगर को अपनी बाणगिन से जला दिया । ९। कलि के सभी अग जल गये । उसकी सतति और पत्नी भी मरण को प्राप्त हुई और वह स्वयं रोता हुआ अप्रकट रूप

से अन्य वर्ष मे पलायन कर गया । १०। अपने दिव्यास्त्रो के तेज से राजा मरु ने भी शक और कम्बोजों का सहार कर दिया तथा राजा देवापि ने चोल और बर्वरों को मृत्यु के घाट उतार दिया । ११। महाचली विशाख्यूप नरेश ने अपने दिव्य शस्त्रास्त्रों के द्वारा पुलिन्द और युक्तकसों को नष्ट किया । १२।

जघानविमलप्रज्ञ खड़गपातेन भूरिग्णा ।

नानास्त्रशस्त्रवर्षेस्ते योधा नेशुरनेकधा । १३।

कलिक कोकविकोकाभ्या गदापाणिर्युधा पति ।

युयुधे विन्याराविज्ञो लौकाना जनयभयम् । १४।

वृकामुरस्य पुत्री तौ नपारौ शकु नेहर्सि ।

तयोः कलिक स युयुधे मयुक्तभयोर्यथा । १५।

तयोर्गंदा प्रहारेण चूर्णितागस्त तत्पते ।

कराच्युतापतदभूमौ दृष्ट्वीचुरित्यहो जना । १६।

ततः पुन क्रधा विष्णुर्जगज्जलष्टुर्महाभुज ।

भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छनत्प्रभु । १७।

मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली ।

तदृष्ट्वा विस्मिता देवा, कलिकश्च परवीरहा । १८।

उन श्रेष्ठ बुद्धि वाले विशाख्यूप-नरेश ने निरन्तर अपने खड़ग एव अनेकानेक शस्त्रास्त्रों के द्वारा शकुनों को विनष्ट किया । इस प्रकार पर-पक्ष के बहुत सारे दीर मृत्यु को प्राप्त हुए । १३। गदा-कुशल कलिक जी गदा लिये हुए ही कोक विकोक से सग्राम कर रहे थे, जिससे सब लोक भयभीत हो रहे थे । १४।

॥ वे दोनों भाई शकुनि के पौत्र प्रौर वृत्तामुर के पुत्र थे । पुराकाल में जैसे विष्णु का मधुकैटभ से युद्ध हुआ था, वैसे ही इन दोनों के साथ कलिक जी द्वारा सग्राम कर रहे थे । १५। तभी कोक-विकोक के गदाघात से कलिकजी का देह चूर्ण जैसा हो गया । उनके हाथ से गदा छूट गई । यह दृश्य सभी उत्स्थित व्यक्ति आश्चर्य पूर्वक देख

रहे थे । १६। फिर ससार विजेता महाबाहु कलिक जी ने क्रोध में भर कर भल्नास्त्र के द्वारा विकोक का शिर छेड़न कर दिया । १७। महाबली विकोक मृत्यु को प्राप्त हो गया था । परन्तु जैसे ही उसके भाई कोक ने उसे देखा, वैसे ही वह पुनर्जीवित हो गया । यह देखा कर सभी देव-गण और स्वयं कलिक जी भी आश्वर्य करने लगे । १८।

प्रतिकत्तुर्गदापाणे कोकस्याध्यच्छन्च्छार ।

मृन्, कोको विकोकस्य हृष्टिपातारसमुत्तियत । १९।

पुनर्स्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महावलौ ।

कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यु इवापरौ । २०।

खड्गचम्मधरौ कलिक प्रहरन्तौ पुनः पुन ।

कलिक क्रुधा तयोस्तद्वद्वाणीन शिरसी हते । २१।

पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चन्तापरोऽभवत ।

विस्त्वत्वमथालोक्य तुरगस्तावताङ्गयत । २२।

कालकल्पी दुराधृष्णी तुरगेणादितौ भृशम् ।

कलकेस्त जघनतुर्बर्णैरमर्पताम्बलोचनौ । २३।

तयोर्भुजान्तर सोऽश्व क्रुधा समदशाद्भृशम् ।

तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकामुंकौ ।

पुच्छ जगृहतु सप्तेर्गोपुच्छ बालकाविव ॥२४।

फिर कलिक जी ने विकोक को पुनर्जीवित करने वाले गदापाणि कोक का ही रच्छेद कर दिया । इम प्रकार कोक मर गया, परन्तु जैसे ही उसे विकोक ने देखा, वैसे ही वह भी पुनर्जीवित हो उठा । १६। तब इच्छानुसार रूप धारणा में समर्थ महाबली कोक-विकोक दोनों मिल कर कलिकजी के साथ दूसरे काल के समान घोर युद्ध करने लगे । १७। वह खड्ग और ढाल धरण कर बारम्बार कलिकजी पर आघात पहने लगे । तब कलिकजी ने अत्यन्त क्रीधित होकर उन दोनों के ही अपने बाणों से मस्तक उड़ा दिये । १८। परन्तु, जब दोनों के ही मस्तक अपने-अपने घड में स्वयं जुड़ गये, तब तो कलिक जी को बड़ी चिन्ता हुई । फिर वे कोक-विकोक द्वारा अपने पर प्रहार होते देख कर स्वयं भी

उन पर धोर प्रहार करने लगे । २२। युद्ध में दुर्घट कोक-विकोक कलिक जी के अश्वों के द्वारा किये गये आघात से अत्यन्त आहत होकर क्रोधित हो उठे और रक्त वर्ण नेत्र करके कलिक जी पर भीषण बाण-वर्षी में तत्पर हुए । २३। तब कलिक जी के अश्व ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक कोक-विकोक के भुजमूल छिन कर दिये, उनकी भुजाओं की हड्डियों का चूर्ण हो गया । घनुध भी बाहुओं के सहित कट कर गिर गये । तब जैमे कोई शिशु गौ की पूँछ पकड़ लेना है, वैसे ही उन्होंने अश्व की पूँछ को पकड़ लिया । २४।

धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा समि. परमकोपन ।  
 पश्चात्पद्म्या दृढ जघ्ने तथोर्वक्षसि वज्रवत् । २५।  
 त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छ्यंतौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।  
 पुरत कलिकमालोक्य बभाषते स्फुराक्षरौ । २६।  
 ततो ब्रह्मा न नम्येत्य कृताङ्गलिपुट शनै ।  
 प्रवाच कलिक नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधमहृतः । २७।  
 कराधातादेककाले उभयोर्निमितो वधः ।  
 उभयोर्दर्शं गादेव नोभयोर्मरणा कवचित् ।  
 विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युभपञ्चानयोर्वधम् । २८।  
 इति ब्रह्मावच श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहन ।  
 तयो प्रहरतो. स्वैर कलिकदर्निवयो क्रुधा ।  
 मुष्टिम्या वज्रकृत्याम्या वभञ्ज शिरसी तयो । २९।  
 तौ तत्र भग्नमस्तिष्कौ भग्नशृङ्गागाविव ।  
 पेततुर्दिवि देवाना भवदौ भुवि बाधकी । ३०।

जैसे ही उन्होंने अश्व की पूँछ पकड़ी वैसे ही अश्व ने अत्यन्त क्रोधित होकर अपने पिछ्ने पैरों के द्वारा कोक-विकोक के वक्षस्थल में बज्र के समान प्रहार किये । २५। जिसमें वे दोनों राक्षस अश्व की पूँछ को छोड़ कर पृथिवी पर गिरते हुए मूर्च्छित हो गए । परन्तु, उन्हें तुरन्त ही चेत हो गया और वे कलिक जों को सामने देख कर युद्ध के

निमित्त पुन, ललकारने लगे । २६। तभी ब्रह्मा जी वहा आये और कल्किजी से हाथ जोड़ कर बोले कि हे प्रभो ! यह कोक-विकोक शस्त्रास्त्रो से मृत्यु बो प्राप्त नहीं हो सकते । २७। इन दोनों को एक समय में ही थप्पड़ मार कर इनका वध कर दीजिये । क्योंकि जब तक यह दोनों परत्पर एक दूसरे को देखेंगे, तब तक इनकी मृत्यु सभव नहीं है । अत आप इसी प्रकार इनको मारिये । २८। ब्रह्माजीके वचन सुन कर कल्किजीने शश्वत्स्त्र और वाहन का परित्याग कर दिया और दोनों दानवों के मध्य पहुँच कर दोनों हाथों से एक साथ उन दोनों के वज्र के समान मुष्टिकाप्रहार किया, जिससे उनका मस्तक चूर्ण हो गया । २९। देवताओं के लिए भयप्रद और सब जीयों का अनिष्ट करने में तत्पर वे दोनों दानव मस्तकों के चूर्ण होने से टूट कर गिरते हुए पर्वत-शिखरों के समान घरती पर आ गिरे । ३०।

तदहृष्टवा महदाश्चर्यं गन्धर्वाप्सरसा गणा ।

ननृतुर्जगुम्तुष्टुबुश्च मुनय सिद्धचारणाः ।

देवाश्च कुसुमासारैर्वपुर्हर्षमानसाः । ३१।

दिवि दुन्दुभयो नेदु प्रसन्नाश्चाभवन्दिश ।

तयोर्वंधप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान् ।

साश्वान्महारथान्साक्षादहनदिव्यसायकैः

प्राज्ञः शतसहस्राणा योधाना रणमूर्छनि ।

क्षय निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिना पञ्चविशतिः । ३२।

एवमन्ये गार्गभीर्यविशालाद्या महारथान् ।

निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छवर्बरान् । ३४।

एव विजित्य तोन्सव्वन्कल्किभूपगणैः सह ।

शश्याकर्णेश्च भल्लाटनगरजेतुमाययो । ३५ः

नानावाच्ये लोकसंघैर्वरास्त्रैर्नानिवास्त्रैभूषणैभूषिताङ्गः ।

नानावहैश्चामरैर्विज्यमानैर्यातोयोदधुः कल्किरत्गुग्रसेन । ३६।

यहुः देह, कर अत्यन्त आश्वर्य मै भरे मंधर्व और अप्सराएँ

नृत्य-गान मे तत्पर हुए तथा देवता, मुनिगण, मिथुगण और चारणादि प्रयत्न हृदय मे पुष्प बरसाने लगे । ३१। कोक-विकोक का सहार हुआ देख कर कवि ने उस्साह पूर्वक अपने देत्र शत्रु-पक्ष के दस हजार महारथियों को नष्ट कर दिया । ३२। प्राज्ञ के द्वारा एक लाख वीर सैनिकों और सुतन्त्रक के द्वारा पच्चीस रथी मृत्यु की प्राप्त हुए । ३३। इसी प्रकार गर्य, भर्य और विशालादि ने भी निषाद, म्लेच्छ और बर्बरों का कोध पूर्वक सहार कर दिया । ३४। इस प्रकार विवर्य को प्राप्त हुए कल्कजी अपनी विशान सेना के सहित युद्ध के निमित्त आगे बढ़े । उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे । श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र धारी वीर उनके साथ-साथ चल रहे थे । अनेक प्रकार के वाहन उस सेना मे आ गये थे । सब और से कलिक गी पर चमर ढोरे जा रहे थे । ३५-३६।



तृतीयांश —

## अष्टम अध्याय

सेनागणै परिवृत् कल्किर्नारायणं प्रभु ।  
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्गं धृक्सप्तिवाहनं ॥  
स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।  
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरि ययौ ॥२॥  
स हर्षोत्तुलकं श्रीमान्दीर्घाङ्गः कृष्णभावनं ।  
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधी ॥३॥  
तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।  
सुशान्ता स्वामिन प्राह कल्किना योद्धुमुद्यम् ॥४॥  
नाथ कान्तं जगन्नाथं सर्वान्तर्यामिन प्रभुम् ।  
कल्कि नारायणं साक्षात्कथं त्वं पूर्हिष्यसि ॥५॥  
सुशान्ते परमो धर्मः पूजापतिविनिर्मित ।  
युद्धे पूहारं [सर्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥६॥

सूत जी बोले— तदनन्तर अपने अश्व पर आरूढ हुए कलिक जी खडग धारण किये हुए, सेना के सहित भल्लाट नगर मे पहुँचे ॥१॥ योगिराज भल्लाट नरेश ने कलिक जी को साक्षात् जगदीश्वर विष्णु जाना और वह उनसे युद्ध करने के लिए सेना सहित नगर से बाहर चले ॥२॥ उस समय वह दीर्घांग, श्रीमान्, कृष्ण भक्त, महाबली एव महा तेजस्वी राजा शशि धर्ज हर्ष से पुलकित हो रहे थे ॥३॥ उन राजा की पत्नी विष्णु व्रत-परायणा महादेवी सुशान्ता थी । उसने जब अपर्याप्ति को कलिक जी से युद्ध के लिए जाने को उद्यत देखा तब वह कहने लगी ॥४॥ हे नाथ ! हे स्वामिन् ! कलिक जी तो साक्षात् जगन्नाथ विष्णु

ओर सर्वान्तरयामी है। आप उन पर प्रहार कैसे कर सकेंगे ? १५।  
शशिध्वज बोले—हे सुशान्ते ! प्रजापति ब्रह्माजी ने जो धर्म निश्चित किया है, उसके अनुसार युद्धेच्छुक गुरु, शिष्य अथवा नारायण ही क्यों न हो, उन सब पर प्रहार करना चाहिए । १६।

जीवतो राजभोग स्यान्मृत स्वर्णं प्रमोदते ।  
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणा सुखावह । ७।  
देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम् ।  
उमदाना भवेदेव न हरे पादसेविनाम् । ८।  
त्वं सेवकं स चापीशस्त्वं निष्कामं स चाप्रदभं ।  
युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद्यविष्यति । ९।  
द्वन्द्वा तीते यदि द्वन्द्वमोश्वरे सेवकं तथा ।  
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम । १०।  
देहावेशादीश्वरस्य कमाद्या दंहिका गुण ।  
मायाङ्गं यदि जायन्ते विषयाश्च न कि तथा । ११।  
ब्रह्मातो ब्रह्मातेशस्य शरीरित्वे शरीरिता ।  
सेवकस्याभेदहशस्त्वैव जन्मलयोदयाः । १२।

यदि युद्ध भूमि से सकुशल लौट आवे तो वह अखण्ड राज्य का भोगने वाला होता है और यदि मृत्यु हो जाय तो स्वर्ण की प्राप्ति होती है। इस प्रकार क्षत्रियों के लिये विजय और मरण दोनों में ही सुख की उपलब्धि है। ७। सुशान्ता ने कहा—हे नाथ ! कामी अथवा विषयासक्त पुरुषों के लिए ही युद्ध में विजय अखण्ड राज्य के देने वाली और मृत्यु देवत्वं प्रदान करने वाली होती है। परन्तु हरि-चरणों के सेवकों को उससे क्या प्रयोजन है ? ८। आप हरि-सेवक हैं। वह ईश्वर आप निष्काम को फल प्रदान नहीं करेंगे। तब आप दोनों में मोह पूर्वक युद्ध कैसे सभव है ? ९। शशिध्वज बोले—परम पुरुष परमात्मा तो सुख दुःख रूपी सब द्वन्द्वों से परे है। परन्तु उनके देह धारण कर लेने पर उन ईश्वर और सेवक में युद्ध होने लगे तो उसे

सेवा-स्वहन विजाम लीजा मात्र ही समझना चाहिये । १०। ईश्वर के अवतार धारण करने पर कामादि माया श्रश रूप दैहिक गुणों का समन्वित होना भी अनिवार्य है । जब कामादि विषयों का आरोपित होना देह-धर्म ही है, तो उनके शरीर में भी वह क्यों नहीं वगत होगे ? ११। पूर्ण ब्रह्मभाव सम्पन्न ईश्वर ब्रह्म कहे जाते हैं और जब वह शरीर धारण कर लेते हैं तब उन्हे शरीरिता कहते हैं । सेवक की भेद हृषि के लय होने अर्थात् अभेद-ज्ञान की उत्तरविधि होने पर उपका जन्म लय और उदय भी उसी प्रकार ममव है । १२।

सेव्यसेवकता विष्णोमर्द्या सेवेति कीर्तिंता ।

द्वैताद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् । १३।

अतोऽह कलिकना योद्धु यामि कान्ते स्वसेनया ।

त्वं त पूजय कान्तेऽय कमनापतिमोश्वरम् । १४।

कृनार्थाऽह त्वया विष्णुसेवासमिलितात्मना ।

स्वामिनिनह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गति । १५।

इति तस्या वल्गुवाग्मि. प्रणाताया. शशिवज. ।

आत्मान वैष्णव मेने साश्रुतेत्रो हरि स्मरन् । १६।

तामालिङ्गय प्रमुदित शूरंबंदुभिरावृत ।

वदन्नाम स्मरन्नलुग वैष्णवैर्योद्धुम य गौ । १७।

गत्वा तु कलिकसेनाया विद्राव्य महती चमूम् ।

शय्याकर्णगणैर्वीरै. सन्नद्वैरुद्यतायुधैः । १८।

सेव्य-सेवक भाव ही सेवा है । यह कार्य विष्णु-पात्र का ही है । इस द्वैताद्वैत चेष्टा के द्वारा ही स-हर्मी पुहष त्रिवर्ग को प्राप्त कर लेते हैं । १३। हे कान्ते ! यही कारण है कि मैं भगवानी सेना के सुहित कलिकजी से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ । हे प्रिये ! इधर तुम कमलापति भगवान् विष्णु का पूजन करो । १५। सुशान्ता ने कहा —, हे नाथ ! आप विष्णु पेत्रा द्वारा उन्होंने मे लोन हो गये, इसमे मैं भी घन्य हो गई हूँ । इहनोक प्रोर परलोक मे भगवान् विष्णु की सेवा के

अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं ।१५। सुशान्ता के यह विनम्र वचन सुन कर राजा के नेत्रों में हृष्णश्रु छा गये और वे अपने को परम वैष्णव मानते हुए भगवान् विष्णु का स्मरण करने लगे ।१६। उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को हृदय से लगो लिया और फिर अपने दीर्घ वैष्णव सेनिकों के सहित विष्णु नाम का स्मरण करते हुए रण भूमि के लिये चल दिये ।१७। उन्होंने कल्कि-सेना में प्रविष्ट होकर उनकी विशाल-सेना को द्रवित कर दिया । उस समय महाबली शश्या कर्णगण आयुधों से सुसज्जित हुए उनसे युद्ध में तत्पर हुए ।१८।

शशिध्वजमुतः श्रीमान्सूर्यकेतुर्महाबल ।

मरुभूपेन यूयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः ।१९।

तस्यानुजो वृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिस्वनः ।

देवापिना स युयुधे गदायुद्ध विशारदः ।२०।

विशाख्यूपस्तुभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च ।

रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्त प्रतापवान् ।

रजस्थनेन यूयुधे भर्ये शान्तेन धन्विना ।२१।

शूलै प्रासंगंदाधातेर्बार्णशक्त्यष्टितोमरै ।

भल्लै खड्गैर्भुर्शुण्डीभि. कुन्तै. समभवद्रणः ।२३।

पताकाभिर्धर्जैच्छिद्यैस्तोमरेश्छवचामरै

प्रीदधूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत ।२४।

मह वली, धनुर्धारी एव परम वैष्णव राज-पुत्र सूर्य केतु राजा मरु से युद्ध करने लगा ।१६। सूर्यकेतु का छोटा भाँई वृहत्केतु कोकिल के झामान मधुरवाणी वाला और अत्यन्त कमरीय होते हुए भी गदा युद्ध में पार गत था, वह राजा देवापि के साथ सग्राम में तत्पर हुआ ।२०। हाथियों से सम्पन्न और विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित विशाख्यूप-नरेश राजा शशिध्वज से युद्ध करने लगे ।२१। लाल अश्व पर आरोहण किये हुए हस्त लाघव सम्पन्न धनुर्धारी एवं प्रतापी भर्ये धूलिमयों पृथिवी पर धनुर्धारी शान्त से युद्ध में भिड़ गया ।२२। इस

प्रकार रणक्षेत्र मैं सब ओर से शूल, प्राम, गदा, बाण, शक्ति, यष्टि, तोमर, भाले, खड़ग, भुशु डी और कुन्त आदि अस्त्र-शस्त्र चलने लगे । २३। उस समय छत्र, चमर, ध्वजा, पताका आदि की छाया और बहुत धूल उड़ने से रणभूमि मे अन्वकार छा गया । २४।

गगनेऽजुघना देवा केवा वास न चक्रिरे ।

गन्धवें साधुसन्दभैग्यिनैरमृतायनै । २५।

द्रष्टु समागता, सर्वे लोका, समरमद्भुतम् ।

शखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोट्टैर्वृ हितैरपि ॥ २६ ॥

होपितैर्योधिनोत्कृष्टैलौकावमूका इभवत् ।

रथिनो रथिभि साक पदात्राश्च पदातिभि ॥ २७ ॥

हया हयैरिभाइचेभै समरोऽस्मरदानवै ।

यथामवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धन २८॥

शशिध्वजचमूनाथै कलिकसेनाधिप सह ।

निपेतु सैनिकां भूमौ छिन्नबाहृहृष्टिकन्धरा: । २९॥

धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिता ।

उपर्युपरि सच्छन्ना गजाश्वरथमदिताः ॥ ३०॥

गगन मरण मे स्थित हुए देवगण इन सग्राम को देख रहे थे । गधवं भी अमृत-ध्वनि मे गाते हुए उस युद्ध को देखने के लिए आ गये थे । २५। सभी लोक उम अद्भुत सग्राम को देखने के उद्देश्य से वहाँ आ गये थे । शख और नक्कारे बज रहे थे । परस्पर धौल मारने से, हायियों की चिंधाड से, अश्वों के हिनहिनाने से तथा शस्त्रास्त्रों के टकराने से जो शब्द निकल रहे थे, उनके मिलने से रणभूमि गूँज रही थी । सभी लोक मूक जैसे लग रहे थे, क्योंकि किसी को किसी को बात सुनाई नहीं देती थी, रथी रथी से, पैदल पैदल से, घुडसवार घुडसवार से भिड़ रहे थे । देवासुर-सग्राम के समान भीषण यह युद्ध यमराष्ट्र की वृद्धि कर रहा था । २६-२८। कलिकजी के सेनापतियों से भिड़े हुए शशिध्वज के सैनापति एवं वीरगण शिर कटा कर पृथिवी पर गिर रहे थे । २९।

आहत होकर कोई भाग रहा है, कोई चीत्कार कर रहा है, कोई आर्त्ता-नाद कर रहा है, किसी पर रक्त की धार पड़ रही है, कोई एक-दूसरे से गुंथे हुए ही पृथिवी पर गिर रहे हैं तथा कोई हाथी या श्रवक के पावो अयवा रथो के पहियो से ही कुचले जा रहे हैं । ३०।

निषेतु प्रधने वीरा कोटिकोटिसहस्रशः ।

भूते सानन्दसन्दोहा स्ववन्तो रुविरोदकम् ॥३१॥

उणीपहसा सच्छन्न गजरोधोरथल्पवा ।

करोस्मीना भरणमसिकाच्चनवालुका ३२

एव प्रवृत्ता सग्रामे नद्य सद्योऽतिदारुणा ।

सूर्यकेतुस्तु मरुणा सहिनो युयुवे बलो ॥३३॥

कालकल्पो दुराबेषि मरुं बाणैरताडयत् ।

मरुस्तु तत्र इशमिसर्पिणर्दर्दरयद्भृशम् ॥३४॥

मरुबाणाहतो वीरा सूर्यकेतुरमषित् ।

जघान तुरगान्कोत्पापदोद्धातेन तद्रयम् ॥३५॥

चूर्णिंत्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत् ।

गदाघातेन तेनापि मरुमूर्च्छामिवापह ॥३६॥

इम प्रकार, इस युद्ध में हजारों करोड़ वीर नाश के प्राप्त हुए ।

रणक्षेत्र में रक्त की नदी बह चली । इस नदी के प्रवाह को देख कर

भूत-पिशाचादि अत्यन्त आनन्दिन हुए । ३१। इस लोहिन नदी में बहनी

हुईं पगड़िया सरोवरो में सुशोभित हन के समान प्रवीत होनी थी ।

उसमें गिरे हुए हाथी ऐसे लगते थे जैसे टापू हो । रथ उसमें नावों के

समान तैरने लगे और कटे हुए हाथ-पाँव मच्छ जैसे लगने लगे । उसमें

गिरे हुए खड़ग ऐसे लगते थे मानो स्वर्णिम रेती चमक रही हो । ३२। इस

प्रकार रणक्षेत्र में यह अत्यन्त दारुण नदी बहने लगी । सूर्यकेतु मरु के

साथ युद्ध कर रहा था । ३३। काल के समान विकट सूर्यकेतु के याणों से

मरु आहत हो गये तब मरु ने भी दश बाणों से सूर्यकेतु को आहत कर

दिया । ३४। मरु के बाणों से आहत हुए सूर्यकेतु ने मरु के सभी अश्व

मार डाले और पदाघात से रथ तोड़ डाला । फिर मरु के हृदय पर भीषण गदाघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े । ३५-३६ ।

**सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्मवित् ।**

**बृहत्केतुश्च देवापि बाणै प्राच्छादयद्वली ॥३७॥**

**धनुर्विकृष्टं तरसा नीहारेण यथा रविम् ।**

**स तु बाणामय वर्षा परिवार्य निजायुधे ॥३८॥**

**बृहत्केतुं छड जघ्ने कङ्गु पत्रै शिलाशितै ।**

**भिन्न शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पत्रिभि ॥३९॥**

**शितधारै स्वर्णं पुखैर्गदिद्र्घं पत्रैरयोमुखे ।**

**देवापिमाशुगैजन्धे बृहत्केतु संसनिकम् ॥४०॥**

**देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितं शरै ।**

**छिन्नधन्वा बृहत्केतुं खड गपाणिर्जिघासया ॥४१॥**

तब मरु का धर्मवित् सारथि उन्हे उठा कर अन्य रथमे ले गया ।

उधर महाबली बृहत्केतु ने देवापि पर बाण-वर्षा की । ३७। जैसे सूर्य कुहरे से आच्छादित हो जाता है, वैसे ही बाणों से आच्छादित देवापि ने तुरन्त धनुष लेकर शत्रु की बाण वर्षा को अपनी बाण वर्षा से काट दिया । ३८। बृहत्केतु ने शान चढ़े हुए बाणों से अपने शूल को भी नष्ट हुआ देख कर पुनः धनुष उठाया और उस पर स्वर्ण जटित, गृद्ध पत्र के समान तथा लोह-मुख वाले तीक्षण बाण चढा कर देवापि पर सैन्य सहित भीषण प्रहार किये । ३९-४०। परन्तु बृहत्केतु के उस दिव्य धनुष को देवापि ने अपने तीक्षण बाणों से काट दिया । तब देवापि को भारने के विचार से बृहत्केतु ने हाथ मे खड़ग ग्रहण किया । ४१।

**देवापेः सारथि साश्व जन्धे शूरो महायुधे ।**

**स देवापिधं नुस्त्यक्त्वा तलेनाहृत्य त रिपुम् ॥४२॥**

**भुजयोरन्तरानीय निष्ठिपेष स निर्दृयः ।**

**तं द्वेयष्ट्वर्षा निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुण्डितम् ॥४३॥**

अनुज बोक्ष्य देवापिमूष्ठिं सूर्यध्वजोऽवधीत् ।  
 मुष्टना वजपातेन सोऽपत्नमूच्छितो भुवि ।  
 मूच्छितस्य रिपुं क्रोधासेनागणमताडयत ॥४४॥  
 शशिध्वज सर्वजगन्निवास कलिं पुरस्तादभिसूर्यवच्चंसम  
 श्याम पिशङ्गाम्बरमभुजेक्षण ।  
 वृहदभुज चारुकिरीटभूषिणम् ॥४५॥  
 नानामणिग्रातिविताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणाहृत्तमोमयम्  
 विशाख्यू पादिभिरावृत प्रभु ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥४६॥

फिर उप घोर युद्ध में वृहत्केतु ने देवापि के घोड़ों और सारथि को मार डाला । तब देवापि ने भी धनुष छोड़ कर शत्रु पर हथेली का प्रहार किया ॥४२॥ फिर उसे दोनों भुजाओं से दबा कर मर्दन करने लगा । उस समय अट्टाईस वर्षीय वह राजपुत्र वृहत्केतु पीड़ित होता हुआ मूच्छित हो गया ॥४३॥ अपने छोटे भाई की ऐसी दशा देखकर सूर्यकेतु ने देवापि के मस्तक पर वज्र के समान मुष्ठिका-प्रहार किया, इससे देवापि मूच्छित होकर गिर पड़ा । तब शत्रु को मूच्छित जान कर सूर्यकेतु उमको सेना पर प्रहार करने लगा ॥४४॥ इधर राजा शशिध्वज ने उस रणभेत्र में सूर्यके समान तेजोमय, विवाधार, कमलाक्ष, पीताम्बर धारी, विशाल भुजा वाले और सुरम्य किरीट से सुशोभित कलिकजी को अपने सामने देखा ॥४५॥ अनेक मणियों से सुसज्जित अङ्ग वाले, प्राणियों के नेत्रों और हृदयों के अन्धकार को नष्ट करने वाले कलिकजी के सब और विशाख्यूप नरेश जैसे अनेक राजागण नल-मस्तक खड़े हैं तथा सद्य और धर्म उनका पूजन कर रहे हैं ॥४६॥

तृतीयांश—

## नैतम अद्याप्त

हृदि ध्यानास्पद रूप कलकेद्वैष्ट्वा शशिष्वज ।  
पूर्ण खड़गधर चारुतुरगारुण्डमव्रबीत् ॥१॥  
धनुर्दर्शणधर चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।  
पापतापविनयाशार्थमुच्यते जगता परम् ॥२॥  
प्राह त परमात्मान हृष्टरोमा शशिष्वज ।  
एह्ये हि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहार कुरु मे हृदि ॥३॥  
अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।  
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमदै तस्यासत्रताङ्गनम् ॥४॥  
निष्कामस्य जयोद्योगसहाय यस्य संनिकम् ।  
लोकां पश्यन्तु युद्धे मे द्वेरथे परमात्मन् ॥५॥  
परबुद्धिर्यदि दृढ़ प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।  
शिवविष्णोर्भेदकृते लोक यास्यामि सयुगे ॥६॥

सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! कलिकजी का हृदय मे ध्यान के योग्य, सुन्दर, खड़गधारी एवं तुरंगारुण्ड पूर्ण स्वरूप देख कर शशिष्वज ने विचार किया । १। धनुर्दर्शणधारी सुन्दर आभूषणों से विभूषित जगदीश्वर भगवान् कलिक का अवतार संसार के पाप-नाप के निवारणार्थ हुआ है । २। राजा शशिष्वज ने पुलकित शरीर से परब्रह्म कलिकजी के प्रति निवेदन किया—हे पुण्डरीकाक्ष ! आइये, मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये । ३। हे परमात्मन् ! मेरे बाणों की मार से बचने के लिए मेरे तमाच्छादित हृदय में आकर छिप जाओ । जो निर्गुण होकर भी गुणों के ज्ञाता हैं, जो अद्वैत होकर भी अस्त्र प्रहार में तत्पर हैं तथा जो निष्काम होकर भी विजय की इच्छा से सैन्य-संहार कर रहे हैं मैं उन्हीं

भगवान् के साथ द्वैरथ युद्ध में तत्पर हो रहा है। सभी लोक इसका अवलोकन करें । ४-५। मैं आप विभु पर प्रहार करूँगा । परन्तु प्रहार करते समय भी यदि मैं आपको ब्रह्म से भिन्न समझते लगूँ तो शिव और विष्णु में भेद जानने वाले को जिस लोक की प्राप्ति हीती है, मुझे उसी लोक की प्राप्ति हो । ६।

इति राजो वच श्रूत्वा अकोधं क्रुद्धवद्दिभुः ।  
 बाणैरताङ्गत्सस्य घृतायुधमरिदमस् ॥७॥  
 शशिध्वजरत्प्रहारमगण्य वरायुधैः ।  
 त जघ्ने बाणवर्षणा धाराभिरिव पवतम् ॥८॥  
 तद्वाणवर्षभिन्नान्तः कल्किं परमकोपतः ।  
 दिव्यै शस्त्रास्त्रसघातैन्तयोर्युद्धमवत्तंत ॥९॥  
 ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रै वर्यव्यस्य च पार्वतैः ।  
 आग्नेयस्य च पार्जन्यैः पच्चगस्य च गारुडै ॥१०॥  
 एव नानाविधेरस्त्रै रन्धोन्यमभिजडनतः ।  
 लोकाः सपाला सत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥११॥  
 देवा बाणमिनसत्रस्ता अगमन्त्वगमाः किल ।  
 ततोऽतिवितथोद्योगी बासुदेवशशिध्वजौ ॥१२॥  
 निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युगुधाते परस्परम् ।  
 पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहर रणस्तथा ॥१३॥

राजा के इन वचनों को सुन कर क्रोध से परे कलिकबी क्रोधित हो उठे। यह देख कर आयुधारी एव अरिमुदन राजा शशिध्वज न उन पर बाण-प्रहार प्रारम्भ किया। ७। जब राजा ने अपने उस प्रहार को निष्कल हुआ देखा तो वह पर्वत पर वर्षणशील मेघ के समान धोर बाणों की वर्षा करने लगे। ८। उस बाण-वर्षा से कलिकबी का शरीर आहत हो गया। तब वे अत्यन्त क्रोध करके आगे बढ़े। इस प्रकार दोनों से धोर युद्ध होने लगा। ९। ब्रह्मास्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र काटने लगे। 'पार्वतास्त्र से वायव्यास्त्र, मेघास्त्र से आग्नेयास्त्र और' गारुडास्त्र से

सर्वास्त्र नष्ट होने लगे । १०। इस प्रकार विविध भाँति के दिव्यास्त्रों के द्वारा वे दोनों भीषण प्रहारमें तन्मय थे । इसमें लोक और लोकपाल सभी यह समझते हुए कि कहीं आज ही प्रलय न हो जाय, अत्यन्त भयभीत हुए । ११। बाणाश्रिन का देख कर युद्ध देखने के लिए गगन मण्डन में एकत्र हुए देवता भयभीत हो गये । दिव्यास्त्रों को व्यथ हुए देख कर कलिकजी और राजा शशिध्वज दोनों बाहु युद्ध के निमित्त अस्त्र त्याग कर उत्तर पड़े । किरपदाधात्, करतचाधात् और मुष्टिका-प्रहार से युद्ध होने लगा । १२-१३ ।

नियुद्धकुशलौ वारौ मुमुदाते परस्परम् ।

वराहोदृधृनशब्देन त तलेनाहनद्वरिं । १४।

स मूर्च्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्कणात् ।

मुष्टिभ्या वज्रकल्पाभ्यामवध त्कलिकमोजसा ।

स कलिकस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छित ॥ १५॥

धर्म, कृतच्छा तं दृष्ट्वा मूर्च्छित जगदोश्वरम् ।

समागतौ तमानेतु . कक्षे तौ जगृहे नृप ॥ १६॥

कलिक वक्षस्युपादाय लब्धातं प्रवयौ गृहम् ।

युद्धेन नृपाणामन्येषा पुत्रौ दृष्ट्व सुदुर्जर्यौ ॥ १७॥

दोनों ही रणविद्या में अत्यन्त कुशल थे और परस्पर एक दूसरे के कोशल को देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे । सृष्टि के आरम्भ में पृथिवी का उद्घार करने के लिए वाराह भगवान् ने जैसा शब्द किया था, कलिकजी द्वारा किये गये करतलाधात् से वैसा ही भीषण शब्द हुआ । १। उस आधात से राजा शशिध्वज मूर्च्छा को प्राप्त हो गए । किर तुरन्त ही उत्तेजित होकर उन्होंने कलिकजी पर वज्र के समान मुष्टि प्रहार किया, जिससे कलिकजी यत्केत होकर पृथिवी पर लेठ गये । १५। तब जगत्पति कलिकजी की मूर्च्छित देख कर धर्म और सत्यग, वहाँ आकर उत्तेजित जाने लगे । परन्तु राजा शशिध्वज ने उन दोनों को काँख में दबा लिया । १६। और कलिकजी को अङ्ग में उठा कर कृत्य होते हुए

उन्हे अपने घर ले गये और सोचने लगे कि मेरे दोनों पुत्रों को भी युद्ध में कोई राजा जीत नहीं मकता है। १७।

कलिक सुराधिपपति पूर्वने विजित्य धर्मं कृतच्च।

निजकक्षयुगे निधाय । हर्षोऽसदधृदय उत्पुलक ।

पमाथी गत्वा गृह हरिगृये ददृशे सुशान्ताम् ॥१८॥

दृष्टाव तस्या । सुललितमुख वैषणवीनाच्चा मध्ये

गायन्तीना हरिगुणकथारतामथ प्राह राजा ।

देवादाना विनयवचसा शम्भले जन्मनावा ।

विद्यालाभ परिगायविधि म्लेच्छपाषण्डनाशम् ॥१९॥

कलिक; स्वयं हृदि समायमिहागोऽद्वा मूर्च्छिच्छ-

लेन तव सेवनीक्षणार्थम् । धर्मं कृतच्च। मम कक्षा-

युगे सुशान्ते ! कान्ते विलोक्य समचर्चय सविधेहि ॥२०॥

इति नृपवचसाविनीदपूर्णा हरिकृत धर्म युत प्रणाम्य नाथम्

सह निजसखिभिन्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्तनवर्ततना विलज्जा।

इस प्रकार देवराज इन्द्र के भी स्वामी कलिकजी को हरा कर और धर्म तथा सत्युग को काँख दवा कर राजा शशिध्वज प्रसन्न हुदय से सेनाओं का मर्दन करता हुआ अपने घर को गया और वहाँ उसने अपनी भार्या सुशान्ता को विष्णु मन्दिर मे प्रियत पाया । १८। उसके चारों ओर वैष्णवी नारियाँ बैठ कर विष्णु-गुण-गान में तन्मय थीं। राजा ने सुशान्ता का सुन्दर मुख देखते हुए कहा—हे सुशान्ते ! देवता आप की प्रार्थना पर जो शम्भल ग्राम मे श्रवतीर्ण हुए हैं और जिन्होने विद्या प्राप्त कर म्लेच्छो और पाखडियो को नष्ट कर दिया है, वही हृदयो मे विहार करने वाले कलिक भगवान अपनी माया द्वारा मूर्च्छा रूपी छल से आवृत होकर तुम्हारी शक्ति की परीक्षा लेने के निमित्त यहाँ पधारे हैं। मेरी काँखो मे यह धर्म और सत्युग दोनों दबे हुए हैं, तुम इनका पूजन करो । १९-२०। राजा के यह विनोदपूर्ण वचन सुन नर रानी बड़ी प्रसन्न हुई और धर्म तथा सत्युग के सहित कलिकजी को उसने प्रणाम किया। फिर लज्जा को छोड़ कर सखियो के सहित हरि नाम संकीर्तन और नृत्य करने मे तत्पर हुई । २१।

तृतीयांश —

## दशम अध्याय

जयहरेऽमराधीशसेवित तव पदाम्बुज । भूरिभूपणभू  
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृत त्यज महामते । मोहमात्मन ॥१॥  
तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सता मानसे सिथतम् ।  
रतिपतेर्मनोमोहदायक कुरु विचेष्टित कामलम्पटम् ॥२॥  
तव यशो जगच्छोकनाशन मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।  
स्मितसुधोक्षित चन्द्रवन्मुख तवकरोत्वल लोकमङ्गम् ॥३॥  
मम पतिस्त्वय सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रिय कर्मणाचरेत् ।  
जाहि तदात्मन शश्वमुद्यत कुरु कृपा न चेदोद्गीश्वर ॥४॥  
महदह्युत पञ्चमात्रया पक्षुतिजायया निर्मित वपु ।  
तव निरीक्षणालीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

सुशान्ता बोली—हे हरे ! आपको जय हो ! महामते ! अब  
आप अपने इस महोच्छन्न भाव को त्याग कर इन्द्र से भी सेवित,  
सुन्दर आभूषणों से विभूषित तथा साधुओं के द्वारा सत्कारित अपने  
चरणारविन्द मेरे समक्ष कीजिये । १। जगत् की श्रेष्ठ सम्पदा से विर-  
चित तथा साधुओं के हृदय मे विद्धमान रहने वाला आपका यह देह  
कामदेव को भी मोहित करने वाला है । अब आप हमारी कामना पूर्ण  
कीजिये । २। आपके यशस्वान से जगत् के शोक नष्ट होते हैं, आपके  
मुक्कान सुधा सम्पन्न चन्द्र वदन से निकले हुई मधुर वाणी सब को  
प्रसन्न करती है । हे प्रभो ! आपका यह मुख लेककल्याण के करने

वाला है ।३। मेरे सर्वं दुर्जय पति के द्वारा यदि आपका कोई अपराह्न बन पड़ा हो तो भी इनके प्रति शत्रु-भाव न रख कर इन पर कृपा करिये, अत्यथा कोई आपको कृपामय ईश्वर नहीं कहेगा ।४। आपकी पत्नी प्रकृति महत्त्व, अहकार और पचन्मात्र के द्वारा देह रचती है । आपके ही निरीक्षण में लीला से ही ब्रह्म कल्पित विश्व से सृष्टि, स्थिति और लय का क्रम चलता है ।५।

भूविष्णवमस्तु द्वारितेजसा राशिभि, शरोरेन्द्रध्याश्रितः ॥  
 त्रिगुणाया स्वया मायया विभो कुरु कृपा भवत्सेवनार्थिनाम् ॥  
 तव गुणालय नाम पावन कलिमलापह कीर्तयन्ति ये ।  
 भवभयक्षय तापनापिता मुहुरहो जना ससरन्ति नो ॥७॥  
 तव जन्म सत्ता मानवद्वन्त न निजकुलक्षय देवपालकम् ।  
 कृन्युगार्पक धर्मपूरक कलिकुलान्तक शत्नोतु मे ॥८॥  
 मम गृह पतिगुत्रनप्तुक गजरथैर्वैर्जैश्चामरर्घनै ।  
 मणिवरासनसत्कृति विना तवा पदाढ्ययो शोभयन्ति किम् ॥  
 तव जगद्बप्व सुन्दरमिमन मुखमनिन्दित सुन्दरारवम् ।  
 यदि नमे प्रिय बलगुचेष्ठिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्वह ॥१०॥

हे देव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व से युक्त यह पच भूतात्मक शरीर इन्द्रियों के आश्रित रहते हैं । अपनी त्रिगुणात्मिका माया से अपने भक्तों पर कृपा कीजिये ।६। हे प्रभो । आपके नाम गुण-कीर्तन से कलियुग के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । आपका वह नाम अनन्त गुणों से युक्त और भवभय का नाश करने वाला है, जो सक्षार तार से पीड़ित प्राणी उसका स्मरण करते हैं, उनका जन्म-मरण रूप बधन बट जाता है ।७। आपका यह अवतार साधुओं का मान बद्धक, कलिकुल नाशक, देवताओं का पालक, धर्म पूरक तथा सत्युग का पुनः स्थापक है । आपके इस अवतार से हमारा कल्याण हो ।८। मेरे घर मे पनि, पुत्र, पोत्र, गज, रथ, ध्वज, चमर, धन और मर्णि जटित श्रेष्ठ आसनादि सब कुछ वर्तमान हैं । परन्तु आपके

चरणारविन्दो के पूजन किये बिना उनकी शोभा नहीं हो सकती ।६।  
हे जगद्रूप ! सुन्दर मुस्कान से सुशोभित, मधुर वाणी से विभूषित,  
सुरम्य चेष्टा से युक्त आपका यह मुख यदि हमारा प्रिय नहीं करना  
चहेगा तो हमारी तत्काल मृत्यु ही हो जायगी ।१०।

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरदशबलमदन ।

जयहृतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन ॥११॥

इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषित ।

उत्तस्थौ रणशाय्याया. कल्किर्थुद्धस्थवीरवद् ॥१२॥

सुशान्ता पुरतो दृष्टवा कृत वामे तु दक्षिणे ।

धर्मं शशिध्वज पश्चात्प्राहोति ब्रीडितानन ॥१३॥

का त्वं पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता ।

कान्ते शशिध्वज. शूरो मम पश्चादुपस्थित ॥१४॥

हे धर्म ! हे कृतयग ! कथमवागता वयम् ।

रणाङ्गण विहायास्याः शत्रोरन्तं पुरे वद ॥१५॥

आप आश्वारोही सब को अभय देते हुए विचरते हैं ? आपके तीरण बाणो के प्रहार से जो वीर पुरुष युद्ध में मृत्यु की प्राप्त होते हैं, उनका आप ही प्रतिपालन करते हैं । आपके मुख मण्डल पर संकड़ों चन्द्रमाओं की आभा चमकती है । शिव और ब्रह्मा भी सदा आपके आश्रय की याचना करते रहते हैं ।११। सुशान्ता द्वारा किये गये इस प्रकार के विनय-गान से सन्तुष्ट होकर कल्किजी उसी प्रकार उठ पड़े, जिस प्रकार रणक्षेत्र मे मूर्छित वीर उठ जाता है ।१२। उन्होंने अपने सामने रानी शान्ता को, बाम पाश्वं मे सत्युग और दक्षिण पाश्वं मे धर्म को और अपने पीछे राजा शशिध्वज को खड़े देखा तो लज्जा से मुख नीचा करके बोले ।१३। हे कमलपत्र जैसे नेत्र वाली ! तुम कौन हो और मेरी सेवा में क्यों तत्पर हुई हो ? यह बलवान् राजा शशिध्वज मेरे पीछे क्यों उपस्थित है ? ।१४। हे धर्म ! हे सत्युग ! हम यूद्ध क्षेत्र

को छोड कर शत्रु के अग्नतःपुर मे वयो आ गये यह ? सब मुके बताओ । १५।

शत्रुपत्न्य कथं साधु सेवन्ते मासरि मुदा ।  
 शशिष्वज, शूरमानी मूर्च्छन् हन्ति नो कथम् ॥१६॥  
 पाताले दिवि भूमौवा नरनागसुराऽसुरा ।  
 नारायणस्य ते कलके केवा सेवा न कुर्वते ॥१७॥  
 यत्सेवकाना जगता मित्राणा दर्शनादिपि ।  
 निवर्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिष्युः ॥१८॥  
 त्वया सादर्थं मम पतिः शत्रुभावेन सयुगे ।  
 यदि योग्यस्तदानेतुं कि समर्थो तिजाजयम् ॥१९॥  
 तत दासो मम स्वामी अह दासी निजा तव ।  
 आवयो, सप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥२०॥

मुझे शत्रु की यह शत्रु-परिणाम प्रसन्न ह/नी हुई वयो परिचयो कर रही हैं ? जब मैं मूर्च्छन् हो गया था, तब इन शूर एव मानी राजा शशिष्वज नै मेरा सहार क्यो नहीं कर दिया ? १६। रानी बोली— पाताल, स्वर्ग अथवा पृथिवी पर, नाग, सुर और अमुर मे ऐसा कौन है जो भगवान् कलिक की सेवा नहीं करता ? १७। यंसार जिनका सेवक और भिन्न है तथा जिनके दर्शन मात्र से शत्रु भाव नष्ट हो जाना है, क्या उनका कोई प्रत्यक्ष रूप से कभी शत्रु हो सकता है ? १८। मेरे पति यदि आपके प्रति शत्रु-भाव रख कर आपसे युद्ध करते तो क्या वह आपको अपने घर मे इस प्रकार ले आते ? १९। हे महाभुज ! मेरे पति आपके दास हैं, इसलिए मैं भी आपकी दासी हूँ। इस प्रकार हम पर प्रसन्न होकर ही आप स्वयं यहाँ पधारे हैं २०।

अह तवैतयोर्भक्तया नामरूपानुकीर्त्तनात् ।  
 कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षव ॥२१॥  
 अघुनाह कृतयुग तव दासस्य दर्शनात् ।  
 त्वमोश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजपा ॥२२॥

दण्डय मा दण्डय विभो योद्धृ-त्वादुद्यतायुधम् ।

येन कामादिरागेणत्वयात्मन्यपि वैरिता ॥२३॥

इति कलिकर्वचस्तेषा निशम्य हसितानन ।

त्वया जितोऽस्मीति नृप पुन पुनरुवाच ह ॥२४॥

तत् शशिध्वजो राज युद्धादाहूय पुत्रकान् ।

सुशान्ताया मति बुद्धा रमा प्रादात्सकल्कये ॥२५॥

धर्म ने कहा—हे कलि का नाश करने वाले कलिकजी । यह राजा-रानी दम्पति जिस प्रकार आपकी भक्ति करते हुए आपका नाम-सकीर्त्तन एव स्तोत्र करते हैं, उसे देख कर मैं कृतार्थ हो यथा—कृतार्थ हो गया । २१। सत्युग बोला—हे प्रभो ! आज आपके इस सेवक का दर्शन पाकर तो आवश्य ही मेरा सत्युग नाम यथार्थ हो गया । इस सेवक ने अपने तेज से आपको भी जगत्पूज्यत्व और ईश्वरत्व से परिपूर्ण कर दिया । २२। राजा शशिध्वज बोले—हे जगदीश्वर ! मैंने काम क्रोध आदि विषयों के वशीभूत होकर ही आप ईश्वर एव साक्षात् अपने आत्मा के प्रति शत्रुता करके आपके देह पर अस्त्र प्रहार किया है । २३। राजा के बचन सुन कर कलिकजी ने मुसकराते हुए बारम्बार कहा—हे राजन् । आपने मुझे सब प्रकार जीत लिया है । २४। इसके पश्चात् राजा शशिध्वज ने रणभूमि से अपने पुत्रों को वापिस बुला लिया और फिर रानी सुशान्ता की प्रेरणा से अपनी रमा नाम की कन्या कलिकजी को प्रदान कर दी । २५।

तदैत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृती ।

विशाख्यूपभूष्म रुचिराश्वश्व संयुगात् ॥२६॥

शयाकरणंनृपेणापि भलाटं पुरमाययु ।

सेनागणेरसस्व्यातैः सा पुरी मद्दिताभवत् ॥२७॥

गजाश्वरथसबाधैः पत्तिच्छ्रुत्ररथध्वजैः ।

कलिकनापि रमायाश्व विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥२८॥

द्रष्टु समीयुस्त्वरिता हृषीत्सबलवाहना ।  
शखभेरी मृदज्जाना वादित्राणाच्च निस्त्वनै ॥२६॥

नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतज्ञर्लं ।  
विवाहो रमयाकल्केरभूदतिसुखावहः ॥२०॥

उस अवसर पर मह, देवापि, विशाख्यूपनरेश और हथिराश्व

आदि सभी कल्कि-पक्ष के राजागण शशिघ्वज द्वारा आमत्रित किये गये । वे सब राजा शश्याकरण को साथ लेकर रणभूमि से भल्लाट नगरी में आ पहुँचे । उप समय असूख कल्कि-सेना के पाँवो से वह नगरी मंदिरिता हो गई । २६-२७। गज, अश्व, रथ, पदाति, छत्र और रथ की ध्वजाएँ आदि सभी से सुशोभित विवाह मण्डप में कल्किजी और रमा का विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ । २८। हर्ष से प्रफुल्लित हुए सभी व्यक्ति अपने दल बल और वाहनो के सहित उस उत्सव को देखने के लिए वहाँ आये । राजकुमारी रमा का विवाह शख, भेरी, मृदग आदि वादो की सुप्रधुर ध्वनि और पुर-नारियों के श्रेष्ठ मञ्जलाचारों तथा नृत्य-गीतादि के सानन्द सम्पन्न हुआ । २६-३०।

तृपा नानाविधैर्भेज्यै पूजिता विविशु सभाम् ।  
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्रश्चावरजातयः ॥३१॥

विचित्रभोगाभरणाः कल्कि द्रष्टुमुपाविशन् ।  
तस्या सभाया शुशुभे कल्कि कमललोचनः ॥३२॥

नक्षत्रगणमध्यस्थ पूर्णे शशधरो यथा ।  
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ॥६६॥

रमापति कल्किमवेक्ष्य भूप सभागत पद्मदलायतेक्षणाम् ।  
जामातर भक्तियुतेन कर्मणा विबुध्य मध्ये निषसाद तत्रह ॥३४

विविध प्रकार भोज्य एव पान-पदार्थों से सत्कार प्राप्त करते हुए राजागण सभा में प्रविष्ट हुए । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि

सभो वर्ण के लोग अद्भुत आभूषणों और विविध प्रकार की भोग—  
सामग्रियों को प्राप्त करके उस सभा में सुशोभित कलिकजी के सब ओर  
बैठ कर शोभा को प्राप्त होने लगे । ३१-३२। जैसे तारागण के मध्य  
पूर्ण चन्द्र की अत्यन्त शोभा होती है, वैसे ही सब लोगों के मध्य में  
सुशोभित राजाओं के भी स्वामी कलिकजी सब लोकों को मोहित करने  
लगे । ३३। पदम पलाश जैसे नेत्र वाले कलिकजी ने सभा में उपस्थित  
राजाओं आदि के समक्ष रमा का पाणिग्रहण किया । उस समय राजा  
शशिघ्वज भी कलिकजी को जामाता-भाव से देखते हुए भक्ति-युक्त हृदय  
से सभा में अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए । ३४।

तृतीयांश —

## एकादश अध्याय

तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णव त शशिध्वजम् ।  
मुनिभि कथिताशेष-भक्तिब्यासक्तविग्रहम् ॥१॥  
सुशान्ताच्च कृतेनापि धर्मणा विधिद्युताम् । २॥  
युंचा नारायणास्यास्य कलकेः इवशुरता गतौ ।  
वथ नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥३॥  
प्रेक्ष्य भक्तिवितान वा हरौ विस्मितमानसा ।  
पृच्छामस्त्वामिय भक्ति क्व लब्धा परमात्मनः ॥४॥  
कस्य वा शिक्षिता राजन् । किवा नैसार्गिकी तव ।  
श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगजनपावनीम् ।  
कथा भागवती त्वत्तः ससाराश्रमनाशिनीम् ॥५॥

सूतजी ने कहा—मुनियों के द्वारा श्रेष्ठ कहे गए भक्तिमय देह बोले, विष्णु भक्त, धर्म और सत्युग के साथ स्थित एव रानी सुशान्ता के सहित शोभायमान् राजा शशिध्वज की ओर देखते हुए आगत राजा आदि व्यक्तियों ने कहा । १-२। राजागण बोले—अब आप साक्षात् नारायण के अवतार भगवान् कलिक के इवसुर-पद को प्राप्त हुए हैं । परन्तु हम सब राजागण, ऋषिगण और विप्रगण तथा अन्यान्य सभी उपस्थितजन आपकी भक्ति को ऐसे विस्तृत रूप में देख कर अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुए हैं । हम आपसे यह पूछते हैं कि परमात्मा की

यह शक्ति आपको किस प्रकार उत्तम हो सकी ? । ३४। हे राजन् ! इस भक्ति की क्या आपने किसी से शिक्षा प्राप्त की है ? अथवा यह भक्ति आप में स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो गई है ? हे राजन् ! आपकी इस भगवदभक्ति का कारण सुनने की हमें जिज्ञासा है । क्योंकि भगवदभक्ति की यह कथा सासार के आवागमन को नाश करने वाली है । ५।

**स्त्रीयु सोवयोएस्तत्तच्छुगुतामोघविक्रमा ।**

**वृत्त यज्जन्मकर्मादि स्मृति तद्भक्तिनक्षणम् ॥६॥**

**पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽह पूतिमासभुक् ।**

**गृद्धीय मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥७॥**

**चचार काम सर्वत्र वनोपवनसकुले ।**

**मृताना पूतिमांसौधै प्राणिना वृत्तिरुलकौ ॥८॥**

**एकादा लुब्धक क्रूरे लुलोभ पिशिनाशिनौ ।**

**आवा वीक्ष्य गृहे पुष्ट गृध तत्राप्ययोजयत् ॥९॥**

**त वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुब्या परिपोडितौ ।**

**स्त्रीपु सौ पतितौ तत्र मासलोभितचेतसौ ॥१०॥**

इस पर राजा शशिधर बोले—हे राजाप्रो ! हम दोनों पति-पत्नी के जो जन्म, कर्मं प्रादि हैं तथा जिस प्रकार हम को भगवदभक्ति का स्मरण हुआ, वह सब आप सुनिये । ६। एक सहस्र युग पहले की बात है—मैं मांसाहारी गृद्ध था और मेरी यह प्रिया सुशान्ता मेरी पत्नी गृद्धिनी थी । हम दोनों एक दिशाल वृक्ष पर नीड़ बना कर उसमे रहते थे । ७। वन-उपवन आदि स्थानों मे हमारी इच्छानुमार अबाव गति थी । उस समय हमें मरे हुए प्राणियों के दुर्योगित माँस से अपना जीवन-निर्वाह किया करते थे । ८। एक दिन एक क्रूर व्याघ ने हमें देल लिया और लोभश हमें पकड़ने के लिए उसने अपने पालित गृद्ध को हमारे समक्ष छोड़ दिया । ९। मैं क्षुब्या से व्याकुल था, तभी मैंने उसे देखा माँस के लोभ से हम स्त्री-पुरुष दोनों ही उप पर झपट पड़े । १०।

**बद्धावावां बीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धक ।**

**जग्राह कण्ठे तरसा चञ्चवाग्रांवातपीडित ॥११॥**

आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्ति के ।  
 मस्तिष्क चूर्णयामास लुब्धकं पिशिताशन ॥१२॥  
 चक्रद्वितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।  
 ज्योतिर्मर्यविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥१३  
 प्राप्तौ वैकुण्ठनिलय सर्वलोकनमस्कृतम् ।  
 तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥१४॥  
 ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।  
 देवलोके कालवशाद्गत युगचतुर्शतम् ॥१५॥

ध्याघ ने हम दोनों को अपने जाल में बँधा हुआ देखा तो वह प्रसन्न होता हुआ शीघ्रता से हमारे पास आया और उसने हमारे कण्ठ पकड़ लिये । तब हम भी उम पर अपनी चोचों से आघात करने लगे । ११ तदनन्तर मौस के लोभी उस ध्याघ ने हम दोनों को पकड़ कर गड़की में स्थिति एक शिला पर पछाड़-पछाड़ कर हमारे मस्तकों को चूर्ण कर डाला । १२। गङ्गा का किनारा और चक्राकित शिला—मरण काल में इन दोनों का । सान्निध्यता के प्रभाव से हम उसी समय चतुर्भुज रूप हो गये और तेजस्वी विमान में चढ़ कर सब लोकों के द्वारा नमस्कृत बैकुण्ठ लोक में जा पहुँचे । वहाँ सौ युगों तक निवास करने के पश्चात् हमको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई । १३-१४। उम ब्रह्मलोक में पाँच सौ युगों तक सुख भोगने के पश्चात् काल के वश में पड़ कर देवलोक में गये और चार सौ युगों तक वहाँ सुख भोगते रहे । १५।

ततो भुवि नृपास्तावद्बद्धसूनुरह स्मरन् ।  
 हरेनुग्रह लोक शालग्रामशिलाश्रमम् ॥१६॥  
 जातिस्मरत्व गण्डक्या कि तस्याः कथयाम्यहम् ।  
 यज्जलस्पर्शमात्रेण महात्म्य महदभुद्दत्तम् ॥१७॥  
 चक्राकितशिलास्पर्शमरणस्येहश फलम् ।  
 न जाने वासुदेवस्य सेवया कि भविष्यति ॥१८॥  
 इत्यावाहरिपूजासु सर्वविद्वलचेतसौ ।

नृत्यन्तावगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥१६॥

कत्केतरीयणाशस्य अवतार, कलिक्षयः ।

पुरा विदितवीर्यस्य पृष्ठो ब्रह्ममुखाच्छ्रुत ॥२०॥

हे राजागण ! फिर अब हम इस मत्यंलोक मे उत्पन्न हुए हैं । परन्तु हमें शालग्राम शिला का वह स्थान और भगवान् विष्णु की कृपा का अभी तक स्मरण है । १६। क्योंकि गणेशकी नदी के तट पर मरण होने पर जन्मो की सृष्टि कभी नष्ट नहीं होती । यह अद्भुत माहास्य उस नदी के जल-स्पर्श का ही है । १७। यदि उस चक्राक्षित शिला के स्पर्श मात्र से मृत्यु के पश्चात् ऐसा शुभ फल होता है, तो भगवान् वासु-देव की सेवा के फल का तो कहना ही क्या है ? १८। यही सोचते हुए हम कभी हरि-पूजन मे अपने चित्त को एकाग्र करते हैं, कभी हर्ष से विह्वल होकर नृत्य करने लगते हैं, कभी उनका गुण-गान करते और भक्ति भाव मे मरन हो जते हैं । १९। यह समाचार हमे श्री ब्रह्माजी द्वारा पहिले ही मिल गया था कि कलियुग का क्षय करने के लिए भगवान् नारायण का अंशावतार होगा । इस प्रकार हम इनके पराक्रम को भले प्रकार जानते हैं । २०।

इति राजसभायां स. श्रावयित्वा निजा कथाः ।

ददौ गजानामयुतमश्वना लक्ष्मादरात् ॥२१

रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तितः ।

दासीनां युवतीनाच्च रमानाथाय षट्शतम् ॥२२॥

रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः ।

मेने कृतार्थमात्मन स्वजनन्बन्धवैः सह ॥२३॥

सभासद इतिश्रूत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ।

विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं त मेनिरे नृपम् ॥२४॥

कलिक स्तुवन्तो ध्यायम्भो प्रशसन्त जगज्जना ।

पुनस्तमाहूराज्ञन लक्षण भक्तिभक्तयोः ॥२५॥

इस प्रकार उस सभा मे अपना पूर्व प्रसंग कह कर राजा शशि-ध्वज ने भक्ति-भाव पूर्वक कलिकजी को उस सहस्रं गज, एक लाख ग्रश्व,

छ सहस्र रथ, छः सौ युवती दासियाँ तथा असर्थ रत्नादि प्रदान करके अपने स्वजनों और बाधवों के सहित अपने को घन्य माना । २१-२३। राजा शशिध्वज के मुख से उनके पूर्व जन्म का वृत्तात् सुन कर सभी सभासद् आश्चर्यं चकित होकर उन्हें पूर्ण समझने लगे २४। फिर वहाँ उपस्थित सभी जन कलिक्षी का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगे । फिर उन्होंने भक्तों के लक्षण विषयक प्रश्न राजा शशिध्वज से किया । २५।

भक्तिकाम्यद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित् ।  
कि करोति किमश्नाति क्वा वस्ति वक्ति किम् । २६।  
एतान्वरण्यं राजेन्द्र ! सर्वं त्वं वेत्सि सादरात् ।  
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगता पावनेच्छया । २७।  
इति तेषा वचं श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृप ।  
माधुवादे समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् । २८।  
पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसकुले ।  
सनकोनारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्वहोदिताः । २९।  
तेषामनुग्रहेणाह तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः ।  
यास्ता सकथयामोह श्रुणुध्वं पापनाशना । ३०।

राजागण बोले—भगवद्किं क्या है ? विधान के जानने वाला भक्त कौन कहा जाता है ? भक्त का कार्य क्या है ? वह क्या खाता, क्या वातलाप करता और कहाँ रहता है ? २६। हे राजेन्द्र ! आपको सब कुछ विदित है, इस लिए आप कृपया आदरपूर्वक सब बात हमें बतावे । उनकी बात मुन कर राजा शशिध्वज ने “हर्षित मुख से उन्हें साधुवाद दिया । फिर जाति स्मरण होने के कारण श्री कृष्ण चरित्र द्वारा ससार को पवित्र करने के उद्देश्य से उन्होंने वह सब कहना आरम्भ किया, जो उन्होंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था । २७-२८। शशिध्वज बोले पुराकाल की बात है—ब्रह्माजी की सभा के मध्य महर्षिगण विराजमान थे, उसी अवसर पर जो कुछ सनकादि ने नारदजी से पूछा था, वही अंपको बताता है । २९। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था, इसलिए

उनकी कृपा से मैंने उस सब प्रसग को सुना था । हे पापनाशन उपस्थित सज्जनो ! जो बात मैंने सुनी थी । वही कहता हूँ, आप लोग सुनिये । ३०।

का भक्ति संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता ।  
 तामादौ वर्णय मुने नारद। वहिता ववम् । ३१।  
 मन षष्ठानीन्द्रियाणि सवम्य परया धिया ।  
 गुरावपि न्यसेहै ह लोकतन्त्रविचक्षणा । ३२।  
 गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरि. स्वयम् ।  
 प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवण तच्छिदेशत । ३३।  
 स्मरेदनन्यया बुध्या देशिक. सुसमाहित ।  
 पाद्याध्यर्थचिमनीयाद्यै. स्नानवासोविभूषणौ । ३४।  
 पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहित ।  
 सर्वाङ्गसुन्दर रम्य स्मद्वृत्पद्मामध्यगम् । ३५।

सनक ने कहा—हे मुने ! हे नारद ! किस प्रकार की हरि-भक्ति से जन्म नहीं लेना होता तथा कौन सी भक्ति प्रशंसा के योग्य है । आप उसी को पहले कहिये । हम सुनने के इच्छुक हैं । ३१। नारद बोले— लोकतन्त्र के ज्ञाता साधक को श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पांचों ज्ञानेन्द्रिय और छठवें मन का निग्रह करते हुए ज्ञाना-श्य पूर्वक गुरु के चरणों में अपना शरीर अर्पण कर देना चाहिये । ३२। क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं । प्रथम प्रणवाग्नि प्रिया के मध्य में दृश्य, का अनन्य हृदय से स्मरण करे । फिर पाद, अर्ध्य, आचमनीय अर्थात् तथा स्नान और वस्त्राभूषणों से युक्त होकर सावधान चित्त से नारायण के चरणारविन्दों का पूजन करे । तदनन्तर हृत्पद्म के मध्य में प्रतिष्ठित सुरम्य और सर्वांग सुन्दर श्रीहरि के स्वरूप का चिन्तन करे । ३३-३५।

एव ध्यात्वा वाक्यनोबीन्द्रियगणैः सह ।

आत्मानमर्पयेद्विवद्वान्हरावैकान्त्तभाववित् । ३६।

अङ्गानि देवास्तवेपाननु नामानि विदितान्युत ।  
 विष्णो कल्केरनः तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते । ३७।  
 सेव्य, कृष्ण सेवकोऽहमनये तस्यात्ममूर्त्य ।  
 अविद्योपाधयो ज्ञानद्वदन्ति प्रभावदयः । ३८।  
 भक्तस्यापि हरौ द्वैत सेव्यसेवकवत्तदा ।  
 नान्यादविना तमित्येव वच्च किञ्चन विद्यते । ३९।  
 भक्त, स्मरति त विष्णु तज्ञामानि च गायति ।  
 तत्कमांणि करोत्येव तदानन्दसुखोदय । ४०।

इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् वाणी, मन, बुद्धि और इन्द्रियों के सहित स्वय को श्रीहरि मे समर्पित कर दे । ३६। भगवाम् कलिं पूर्वदेव एवं अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु के अग हैं । जो सब नाम आपको विदित है, वह भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । ३७। भगवान् श्री कृष्ण सेव्य और मै उनका सेवक हूँ तथा ससार भर के सभी प्राणी उन्हीं के मूर्त्त रूप हैं । ज्ञानियों का कहना है कि अविद्यारूपी उपाधि के वश मे पड़ कर ही यह सब उत्पन्न होते हैं । ३८। भक्तो के निमित्त सेव्य-सेवक भाव रूप द्वैत का आविर्भाव होता है । इस प्रकार श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । ३९। उन्हीं भगवान् विष्णु का भक्त सदा स्मरण करता, नाम-गुण कीर्तन करता तथा सभी कर्म उनके ही निमित्त किया करता है । इसी कारण उसके लिए आनन्द और सुख की उत्पत्ति होती है । ४०।

नृत्यत्युद्घतवद्वौति हसति प्रैति तन्मन ।  
 विलु ठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् । ४१।  
 एवविद्या भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।  
 पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् । ४२।  
 भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता ।  
 शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्याना वरापि वा । ४३।  
 भक्ताः सत्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसा ।

तमसा घोरसकल्या भजन्ति द्रवद्रैतदृग्जना ।४४।

सत्वान्निर्गुणतोमति रजसा विषयस्पृहा ।

तमसा नरक यान्ति ससाराद्रवद्रैतधर्मिणि ।४५।

वह विह्वल होकर नाचता, रोता हँसता और तन्मयतापूर्वक विचरण करता है। वह स्वयं को भून कर भक्ति-आव मे ही छुब जाता है और हरि के अतिरिक्त कही कुछ नहीं जानता। ४१। यही भगवान् की अभ्यभिचारणी भक्ति है, इसी के प्रभाव से देवता, देत्य और मनुष्य आदि की सम्पूर्ण सृष्टि सहसा पवित्रता को प्राप्त होती है। ४२। नित्या प्रकृति अथवा ब्रह्म की सम्पदा ही भक्ति रूप मे प्रकट होती है। वही भक्ति वेदादि मे श्रेष्ठ एव शिव, विष्णु और ब्रह्मा स्वरूपिणी है। ४३। सत्वगुण के अध्यास से युक्त द्वैत के जानने वाले मनुष्य इन्द्रिय व्यापार की इच्छा वाले होते हैं और जो तमोगुण से युक्त हैं वे घोर कार्यों का सकल्प किया करते हैं। ४४। द्वैत ज्ञान से युक्त ज्ञानीजन सत्वगुण के व्याप्त होने पर निर्गुणता को प्राप्त होते हैं तथा रजोगुण के व्याप्त होने पर विषयो मे लग जाते हैं और यदि तमोगुण की अविकरा होती है तो वे पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं। ४५।

उच्छ्वष्टमवशिष्ट वा पथ्य पूतमभीप्सितम् ।

भक्ताना भोजनं विष्णोनैवेद्यं सात्विक मतम् ।४६।

इन्द्रियप्रीतिजनन शुक्रशोणितवद्धनम् ।

भोजनं राजस शुद्धमायुरारोग्यवद्धनम् ।४७।

अतः परं तामसानां कट्वम्लोषणविदाहिकम् ।

पूतिपुष्टिज्ञेय भोजनं तामसप्रियम् ॥४८॥

सात्विकानां वनें वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।

तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ॥४९॥

न दाता स हरि किञ्चित्सवेक्सतु न याचकं ।

तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किंमिति शाश्वती ॥५०॥

इत्येषद्भगवत् ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्तया  
सविनयवचनैः सुरषिवर्यं परिरात्वेन्द्रपुरं जगाम शुद्ध ॥५१॥

भगवान् का शेष बचा हुआ उचित्कृष्ट (प्रसाद) तथा इच्छित  
नैवेद्य ही पवित्र पश्य स्वरूप है। भक्तों को इसी सात्त्विक आहार का  
भोजन करना चाहिये (अर्थात् भोज्य सामग्री भगवान् को अर्पण करके  
ही प्रसाद रूप में सेवन करनी चाहिए) ।४६। जो भोजन इन्द्रियों को  
सन्तुष्ट करने वाला, वीर्य एव रक्त वर्द्धक तथा परमायु के देने वाला एवं  
आरोग्यप्रद है, ऐसा शुद्ध भोजन राजसी कहा जाता है ।४७। कडुवा,  
खट्टा, जलन करने वाला, दुर्गन्ध युक्त तथा वासी भोजन तामसी मनुष्यों  
को प्रिय है ।४८। सतोगुणी पुरुष वन में निवास करते हैं, रजोगुणी  
मनुष्य ग्राम में और तमौगुणी दूर खेलने के अथवा मद्य पीने के स्थान  
में रहते हैं ।४९। भगवान् स्वयं अपना हाथ उठा कर किसी को कुछ  
प्रदान नहीं करते, और न सेवक ही उनसे कुछ याचना करता है। किर  
भी उनमें परस्पर सदा ही परम प्रीति रहती है, यहु कंसी विचित्र बात  
है? ।५०। पवित्र मन वाले सनक भक्तिपूर्वक नारदजी के द्वारा भगवान्  
किष्ण का गुण-कथन सुन कर विनम्र वचनों से देवर्षिवर नारदजी की  
स्तुति और नमस्कार कर देवलोक को चले गये ।५१।

तृतीयांश —

## द्वादश अध्याय

एतद्वः कथित भूपा. कथनीयोरुकर्मण ।  
कथा भक्तस्य भक्तेश्व र्किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥१॥  
त्व राजनवैष्णवश्रेष्ठः सर्वसत्वहिते रत ।  
तवावेश. कथ युद्धरङ्गे हिसादिकर्मणि ॥२॥  
प्रायशः साधवो लोके जीवाना हितकारिण ।  
प्राणबुद्धिधनंवर्तिभ. सर्वेषा विषयात्मनाम् ॥३॥  
द्वैतप्रकाशिनी वा तु प्रकृतिः कामरूपिणी  
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्न वेदाश्च त्रिगुणात्मिका ॥४॥  
ते वेदाद्वित्रिजगद्वर्मशाशना धर्मनाशना ।  
भक्तिप्रवर्तका लोके कामिना विषयैषिणाम ॥५॥  
वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगा ।  
वहन्ति बलिमोशस्य वेदवाक्यानुशासिताः ॥६॥  
वय तदनुगाः कर्म धर्म निष्ठा रणप्रियाः ।  
जिघासन्त जिघासामो वेदाथंकृतनिश्चया ॥७॥

राजा शशिष्वर्ज बोले—हे राजाश्रो ! जिनके असाधारण कर्म कीतंन के योग्य हैं, उन भक्तो और भक्ति का महात्म्य मैंने कह दिया है । अब और क्या कहूँ ? । १। राजा बोले—हे राजन् ! आप सब जीवों के कल्याण करने में तत्पर तथा वैष्णव श्रेष्ठ हैं । फिर आप हिसादि दोषों से युक्त युद्ध करने में क्यों प्रवृत्त होगये थे । २। प्रायः साधुजन

विषयासक्त जीवों का हित साधन करने के कार्य में अपने प्राण, बुद्धि, घन तथा वाणी आदि सब कुछ लगा देते हैं ।३। शशिष्ठवज बोले—  
अिगुणात्मिका प्रकृति ही द्वैतभाव को प्रकाशित करती है । सभी वेदों  
और तीनों लोकों को उत्पन्न करने दाली यह प्रकृति कामरूपिणी है ।४।  
तीनों लोकों में नेद ही धर्म की व्यवस्था द्वारा अधर्म का नाश करते हुए  
विषयासक्त कामियों में भी भक्ति का प्रवर्त्तन करते हैं ।५। वेदों के ज्ञाता  
वात्स्यायन आदि मुनिगणों और मनुष्यों ने वेदाणी के शासन को  
मानते हुए परमात्मा के हेतु बलि प्रदान की थी ।६। हम भी उन्हीं का  
अनुगमन करते धर्म पूर्वक युद्ध में तत्पर होते और वैदिक शिक्षा के  
अनुमार ही युद्ध में ग्रातारियों का संहार कर डालते हैं ।७।

अवध्यस्य वधे यावास्तावान्वध्यस्य रक्षणी ।

इत्याह भगवान्व्यास. सर्ववेदाथतत्परः ॥८॥

प्रयाणिचत्त न तत्रास्ति तत्राधर्मः प्रवर्तते ।

अतोऽत्र वाहिनी हत्वा भवता युधि दुर्जयाम् ॥९॥

धर्म कृतच्च कलिकन्तु समानीयागता वयम् ।

एषा भक्तिर्मम भता तवाभिप्रेतमीरय ॥१०॥

अह तदनुवक्ष्यामि वेदावाक्यानुसारत् ।

यदि विष्णु. स सर्वत्र तदा क हन्ति को हतः ॥११॥

हन्ता विष्णुहंतो विष्णुर्वध, कस्यास्ति तत्र चेत् ।

युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशाशासमात् ॥१२॥

इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।

इतर्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ॥१३॥

अतो भागवती मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।

सेव्यसेवकभावेन सुखो भवति नान्यथा ॥१४॥

सर्व वेदार्थ के ज्ञानी भगवान् वेद व्यासजी का कथन है कि जो पाप-ग्रवण के मारने में है वही वध योग्य का वध का न करने में भी

है ।८। इस प्रकार का आचरण न करना अधर्म है । उसका कोई प्राय-शिच्च भी नहीं है । इसीलिए मैं रणभूमि में दुर्जय सेना के वध में तत्पर होकर धर्म, सत्युग और कल्किजी को यहाँ ले आया । मेरे मत में यही वास्तविक भक्ति है । इस विषय में आपका अभिप्राय जो हो, वह बताइये ।९-१०। इसके अतिरिक्त मैं वेद-वाणी के अनुसार ही कहता हूँ कि भगवान् विष्णु सर्वव्यापी हैं । यदि यह यथार्थ है तो फिर कौन किमी को मारता है और कौन मरता है ? ।११। जब मारने वाले विष्णु हैं, और मरने वाले भी विष्णु ही हैं, तो किसका वध हो सकता है ? फिर वेद की ही व्यवस्था है कि युद्ध आदि कर्मों में जो वध होता है, वह वध नहीं माना जाता ।१२। यही बात चौदह मनुओं और मुनियों ने भी कही है । हम भी इसी के अनुसार यज्ञों और युद्धों के द्वारा भगवान् विष्णु का पूजन किया करते हैं ।१३। इस प्रकार भगवती माया के आश्रय में द्वित द्वितीया साधक विधिवत् सेव्य-सेवक भाव से भगवान् का यज्ञ करके सुखी होता है, अन्य कोई विधि सुख-प्राप्त करने की नहीं है ।१४।

निमेभूर्पस्य भूपाल । गुरो शापान्पृतस्य च ।

तादृशे भोगायतने विराग । कथमुच्यताम् ।१५।

शिष्यशापादवशिष्टस्य देहावाप्तिमृतस्य च ।

श्रूयते किल मुक्ताना जन्म भक्तविमुक्तता ।१६।

अतो भागवती माया दुर्बोध्याविजितात्मनाम् ।

विमोहयति ससारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ।१७।

इति तेषा वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वज ।

प्रोवाच वदता श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ।१८।

बहूना जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगत ।

देवादभवेत्साधुसगस्तस्मोदीश्वरदर्शनम् ।१९।

ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्याहृतेतसः ।

भक्त्वा भौगान्तप्राप्तमन्भक्तो भवति ससृतौ ।२०।

रजोजुष कर्मपरा, हरिपूजापरा सदा ।  
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रुपसमरणोत्सुका ।२१।

राजा बोले—हे भूपते ! गुरु वसिष्ठ के शापवश राजा निमि ने देह छोड़ा था । परन्तु ग्रापके इस भोगयय देह मे वैराग्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? जब यज्ञान्त मे देवनाश्रो ने उनको रक्षा करते हुए उस देह में प्रवेश करने की आज्ञा की, तब भी वे अपने छोड़े हुए देह में प्रविष्ट होने से सहमत न हुए, इसका क्या कारण था ? ।१५। मुना जाता है कि विषय के शाप से गुरु वसिष्ठ ने देह त्याग कर पुनः देह को प्राप्त कर लिया । परन्तु, भक्त तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तब वह उस विमुक्तता को छोड़ कर जन्म किन प्रकार धारण करे ? ।१६। इस प्रकार भगवद् माया के वरणं मे ज्ञानोजन भी अपने को असर्वथ पारे हैं । क्योंकि वह माया इन्द्रजाल के समान समस्त लोक मे विस्तीर्ण होती हुई जीवों को विमोहित करती रहती है ।१७। वक्ता श्रेष्ठ राजा शशिवज उनके वचन सुन कर भविनपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले ।१८। उन्होने कहा—तीर्थ, श्रेष्ठादि के योग को प्राप्त हुआ प्राणी जन्म जन्मान्तरो मे भगवत्कृपा से साधु सग को पाता है और उसी साधु सग के प्रभाव से उसे ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।१९। फिर वह सालोक्य पद को प्राप्त होकर हृषित हृदय से हरि-भजन मे तत्त्वर होता है । इन प्रकार भोग्य वस्तुओं का उपभोग करता हुआ वह मनुष्य लोक मे भक्त हो जाता है ।२०। रजोगुणी पुरुष अपने कर्म द्वारा सदा हरिपूजा-परायण रहते तथा उनके नाम और रूपादि का स्मरण करने मे सदा उत्सुक रहते हैं ।२१।

अवतारानुकरणपर्वतमहोत्सवाः ।  
भगवद्भक्तिपूजाद्याः परमानन्दसप्तुताः ।२२।  
अतो मोक्ष न वाच्छन्ति दृष्टमुक्तिकलोदयाः ।  
मुक्त्वालभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ।२३।

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्मतत्परा ।  
 सारासारविद् सेव्यसेवका द्रवैतविग्रहाः ।२४।

यथावतार कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।  
 एव निर्मेनिस्त्रिष्ठता लीला भक्तस्य लोचने ।२६।

मुक्तस्वापि वष्टिस्य शरीरभजनादरः ।  
 एतद्रव कथित भूपा माहात्म्य भक्तिभक्तयोः ।२६।

सद्य पापहर पुंसा हरिभक्तिविवर्धनम् ।  
 सर्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।  
 कामरागादिदोषध्न मायामोहनिवारणम् ।२७।

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधि  
 समर्थ्यातिचिर त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुका ।  
 कृष्णो भावमनन्मेवममल हैयज्ञवन नव  
 लब्ध्वा समृतिनाशन त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ।२८।

वे श्रीहरि के अवतार का सदा अनुकरण करने वाले होते हैं ।  
 पर्वकाल मे व्रत, पूजन, भक्ति आदि मे तत्पर रहते हुए भी परमानन्द मे  
 लिप्त रहते हैं ।२२। वे सभी भक्तजन भोग फल को प्रत्यक्ष प्रकट होता  
 देख कर मोक्ष की कामना नहीं करते और भोगों को भोगते हुए जन्म  
 प्राप्त करके भी सदा हरिभाव को प्रकाशित करते रहते हैं ।२३। भक्त-  
 जन हरिस्वरूप और क्षेत्र तथा तीर्थों के पवित्र करने वाले, सार और  
 असार के ज्ञाता, धर्मानुष्ठान मे तत्पर रहते हुए सेव्य-सेवक रूप मे  
 निवास करते हैं ।२४। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने के समान ही  
 उनके सेवक भी समय-समय पर अवतार प्रहरण करते रहते हैं । इसी  
 लिए तो निमि का भक्तो के नेत्रों पर निर्मेष रूप से निवास है, इसे  
 भगवान् की ही लीला समझना चाहिए ।२५। गुरु वसिष्ठ ने मुक्त होकर  
 भी जो पुनः देह धारण किया, वह भी इसी कारण से किया था । हे  
 राजाश्चो ! इस प्रकार भक्ति और भक्त का यह माहात्म्य मैंने आपके

प्रति कहा है । २६। इसके सुनने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, मन में हरि-भक्ति की वृद्धि होती और इन्द्रियों के अविष्टाता देवता भी सुखी होते हैं । काम और रागादि सभी दोष तथा माया-मोह का नाश होता है । २७। तीनों लोकों के ज्ञाता मुनियों ने वेद पुराणादि शास्त्रों के अमृत रूपी सार का मजन करके यह अत्यन्त पवित्र एवं मगल रूप श्रीकृष्ण भक्ति को प्राप्त किया है । यह भव-बन्धन को नष्ट करने वाली है । उन मुनियों को इस प्रकार का फल पाते देख कर उनको भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही माना गया है । २८।

तृतीयांश —

## त्रिपादश अधिष्ठाय

इति भूत सभाया स कथयित्वा निजाः कथाः ।  
शशिध्वज प्रीतमना प्राह कर्लकि कृताञ्जलि । १।  
त्वहि नाथ त्रिलोकेश एतेभूषास्त्वदाश्रया。  
मा तथा विद्धि राजन् त्वन्निदेशकर हरे । २।  
तपस्तप्तु यामि काम हरिद्वार सुनिप्रियम् ।  
एते मत्पुत्रपौत्राञ्च पालनीयास्त्वदाश्रया । ३।  
ममापि काम जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।  
निधन द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर । ४।  
इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्त भार्यया सहित नृम् ।  
लज्जयाधोमुख कलिक प्राहुभूपा किमित्युत । ५।

सूनजो बोले—सभा में उपस्थित सब जनों के समक्ष इस प्रकार अपना वृत्तान्त कहने के उपरान्त राजा शशिध्वज ने हाथ जोड़ कर कलिक जी से कहा । १। राजा बोले—हे हरे ! हे त्रिलोकेश ! यह सभी राजा-गण आपके आश्रय में स्थित हैं । आप इन सबको और मुझे भी अपनी आज्ञा के पालन में तत्पर समझिये । २। अब मैं ऋषियों के लिए प्रिय हरिद्वार के लिए तपस्या हेतु गमन करूँगा । मेरे यह पुत्र-पौत्रादि सब आपके ही आश्रित हैं और आपके द्वारा ही प्रतिपालन करने योग्य हैं । ३। हे सुरेश्वर ! आप मेरे अभिप्राय को भले प्रकार जानते हैं । अपने पूर्व अवतार में आपने जाम्बवन्त और द्विविद आदि जिन वानरोंका वध किया

या वह भी आपको स्मरण है ।४। यह कह कर राजा शशिध्वज अपनी पत्नी मुशान्ता सहित प्रस्थान के लिए उद्यान हुए । उस समय कल्किजी ने अपना मुख लज्जा ले रखा लिया । यह देख कर राजागण उसे जानने की इच्छा से बोले ।५।

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।  
 कथं तदबूहि कामं न किन शाधि सशयात् ।६।  
 अमु पृच्छत वो भूपा युष्माकं सशयच्छ्रदम्  
 शशिध्वजं मदभक्तिकृतनिश्चयम् ।७।  
 इति कल्केवं श्रुत्वा ते भूपा प्रोक्तकारिण ।  
 राजानं त पुनः प्रहुः सशयापन्नमानसाः ।८।  
 कि त्वया कर्थिन राजञ्चशिध्वजं महामते ।  
 कथं कल्किस्तदवदिद श्रुत्वं वाभूदधोमुख ।९।  
 पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिदवधम्  
 लक्ष्मचलक्ष्य द्विविदा राक्षसन्वात्सदारुणात् ।१०।

राजाग्रो ने कहा—हे नाथ ! राजा शशिध्वज ने ऐसी क्या बात आपसे कही थी, जिसे सुन कर आपने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया था । यह हमारे प्रति कह कर हमारा सन्देह दूर करिये ।६। कल्किजी बोले—हे राजाग्रो ! आप उन्ही महाराज शशिध्वज से ही इस विषय मे प्रश्न करिये । क्योंकि वे परम ज्ञानी और मुझमे अनन्य भक्ति रखने वाले हैं । वे ही आपके सन्देह को नष्ट करेंगे ।७। यह सुनकर सभी राजागण सशयकृत हृदय से राजा शशिध्वज से प्रश्न करने लगे । उन्होंने कहा—हे राजन् ! हे महामते ! हे महाराज शशिध्वज ! आपने अभी ऐसी कौन-सी बात कल्किजी के प्रति कही थी, जिसे सुन कर वे लज्जावनत मुख बोले हो गये थे ।८-९। शशिध्वज बोले—हे राजागण ! पुरा काल में जब रामावतार हुआ था, तब लक्ष्मणजी के द्वारा वध को प्राप्त हुए इन्द्रजीत मेघनाद की राक्षस भाव से मुक्ति हो गई थी ।१०।

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिकोज्वरः ।

मोक्षमणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः । ११।

त व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजा वरः ।

अश्वित्वा रामभद्रस्य सज्जापत्रीमतन्द्रितः । १२।

लक्ष्मणा दर्शयामास ऊदूर्ध्वस्तिष्ठन्महाभुजः । १३।

लक्ष्मणो वीक्ष्य ता पत्री विज्वरो बलवानभूत् ।  
स ततो द्विविद प्राह वर वरय वानर । १४।

द्विविदस्तच श्रुत्वा लक्ष्मण प्राह हृष्टवत्

त्वत्तो मरण प्रार्थ्य वानरत्वाच्च मोचनम् । १५।

उस समय अग्निशाला मे ब्राह्मण की हत्या करने के पाप स्वरूप लक्ष्मणजी के शरीर मे एकाहिक ज्वर छुस गया, जिससे उन्हे मोहादि उपद्रवो ने घेर लिया । ११। उस समय अश्विनीकुमार के वश मे उत्पन्न हुए भिषग्वर द्विविद वानर ने लक्ष्मणजी को ज्वर की पीड़ा से व्याकुल देख कर एक मन्त्र बतलाया । १२। इस मन्त्र को लिख कर भगवान् श्रीराम के सामने ही एक ऊँचे स्थान पर टाक कर लक्ष्मणजी को दिखाया गया । १३। इस मन्त्र को देखते ही लक्ष्मणजी का ज्वर नष्ट हो गया और उनमे शक्ति आ गई । फिर लक्ष्मणजी ने द्विविद नामक उस वानर से कहा—हे वानर ! आप वर माँगिये । १४। तब द्विविद ने अत्यन्त हर्षित होकर कहा कि मेरी आपसे ही यही प्रार्थना है कि वानर भाव से मुक्त होने के उपाय स्वरूप मेरा मरण आपके ही द्वारा हो । १५।

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।

मोचन भविता कीश बलरामशरीरिणः । १६।

सभुद्रस्योत्तारे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।

ऐकाहिक ज्वर हन्ति लिखनं यस्तु पश्यक्ति । १७।

इति मन्त्राक्षर द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।

यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः । १८।

इति तस्य वर लब्धवा चिरायु सुस्यत्वान्तरा ।

बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुर्तोभयम् ।१६।

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षण ।

बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्स्वबाञ्छया ।२०।

तब लक्षणगी ने उसे आश्वासन दिया कि अगले जन्म में जब मैं बलदेवावतार लूँगा, तब तुम मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त होकर वानर भाव से मुक्त हो जाओगे ।१६। “समुद्र स्पोत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः” यही वह मन्त्र है, जिने लिखा हुआ ‘देखने पर ऐकाहिक उच्चर नष्ट होजाता है ।१७। इस मन्त्र को द्वार पर अथवा ताल । पत्र पर लिख कर देखना चाहिये तब ऐकाहिक उच्चर का नाश होना सम्भव है ।१८। लक्षणगी से इस प्रकार वर को प्राप्त हुआ वह द्विविद नामक वानर स्वस्थ शरीर से बहुत कान जीवित रहा और बलदेवजी का अवतार होने पर उनके अध्य से मृत्यु को प्राप्त होकर अभयात्मिका मुक्ति को प्राप्त हो गया ।१९। इनी प्राहार ग्रन्थी इच्छा से सूर धुत्र लोमहर्षण भी नैमिषरण्य में बलदेव जी के प्रस्त्र से ही मारे गये ।२०।

जाम्बवान्त्वं पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ :

तस्याप्यूदर्वगतं पादं तत्र चक्रं प्रदक्षिणम् ।२१।

मनोजवं त निरोक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः ।

मतो वृणु वर काममृक्षाधीश महाबल ।२२।

इति त हृष्टवदनो ब्रह्माशो जाम्बवान्मुदा ।

प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ।२३।

इत्युक्ते वामनं प्राहकृष्णं जन्मति मे तव ।

मोक्षश्चक्रेण सभिन्नशिरसः सभविष्यति ।२४।

मम कृष्णावतारे तु सूर्यभक्तस्य भूपतेः ।

सत्रजितस्तु मण्यर्थं दुर्वाद समजायत ।२५।

हे राघवो ! वामनावतार में वामनजी ने जब तीन पग में ही तीनों लोकों को नाप लिया, तब उनके ऊर्ध्वलोक में रखे हुए चरण की

जाम्बवत ने प्रदक्षिण की थी । २१। उस समय उस जाम्बवान् को मन के समान द्रुत वेग वाला देख कर वामनजी अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर बोले—हे ऋक्षाधीश ! तुम महावली हो, मूझसे इच्छित वर माँगो । २२। यह सुन कर हर्षित मन हुए ब्रह्माश रूप जाम्बवान् ने कहा कि हे प्रभो । मेरी मृत्यु आपके चक्र से हो, यही वर प्रदान कीजिये । २३। जाम्बवान् के वचन सुन कर वामनजी ने कहा—कृष्णावतार मेरे चक्र से तुम्हारा शिर कटेगा और तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे । २४। तदनन्तर कृष्णावतार हुआ । उस समय मैं सूर्य का भक्त सत्राजित नामक एक राजा हुआ था । [तब एक मणि के कारण द्वार्दिद उत्पन्न हो गया । २५।

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः ।

सिहात्तस्यापि मण्यर्थं वधो जाम्बवता कृतः । २६।

द्वार्दिभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजस ।

मण्यन्वेषणचित्स्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले । २७।

स निजेशं परिज्ञाय द्वच्चक्रग्रस्तबन्धनम् ।

मुक्तो बभूव सहसा कृष्ण पश्यन्सलक्ष्मणम् । २८।

नवदूर्दिलश्याम दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम् ।

तदा जाम्बवती कन्या प्रगृह्ण मणिना सह । २९।

द्वारका पुरमागत्य सभाया मामुपाह्वयत् ।

आहूय मह्यं प्रददौ मणि मुनिगणाच्चिर्तम् । ३०।

प्रसेन नामक मैरा धनुज था । उसे एक सिंह ने मणि के लिए मार डाला । किंव वह सिंह भी उसी मणि के कारण जाम्बवान् के द्वारा वध को प्राप्त हुआ । २६। उधर कलक के भय से अमित तेज वाले भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि की खोज करने लगे, तभी एक गिरि-गुहा में जाम्बवान् के साथ उनका घोर युद्ध हुआ । २७। तभी जाम्बवान् अप्यत्त्वामी को पहचान गया । भगवान् के चक्र से उसका शिर कट

गया । लक्ष्मण सहित भगवान् का दर्शन करते हुए जाम्बवान् की मोक्ष की प्राप्ति हुई । २८। तब उस ऋष्टकराज ने अपने प्रभु की इयामल मूर्ति का दर्शन करते हुए उन्हे अपनी पुत्री जाम्बवती के सहित वह मणि भेट कर दी । २९। फिर श्रीकृष्ण ने द्वारका की राज सभा में आकर मुझे वहाँ बुलाया और महर्षियों के द्वारा पूजित वह मणि उ होंने मुझे दे दी । ३०।

सोऽहं ता लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।

विवाहेन ददावस्मै लावण्याजजगृहे मणिम् । ३१।

ता सत्यभामामादाय मणि मथ्यर्प्य स प्रभुः ।

द्व रकामागाय पुनर्गजाह्वयमगाद्विभु । ३२।

गते कृष्णो मा निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।

अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् । ३३।

मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचन मम ।

अतोऽह कलिकृपाय कृष्णाय परमात्मने ।

दत्त्वा रमा सत्यभामारूपिणी यामि सद्गतिम् । ३४।

यह देख कर मैं अत्यन्त लज्जित हुमा और मैंने अपनी सत्यभामा नाम की कन्या के सहित वह मणि श्रीकृष्ण को ही दे दी । उन दोनों के लावण्य से आकर्षित होकर उन्होंने उन्हे प्रहण कर लिया । ३१। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मणि मेरे पाव रख दी और स्वयं सत्यभामा को साथ लेकर द्वारका से हस्तिनापुर को चले गये । ३२। श्रीकृष्ण के चले जाने पर शतधन्वा नामक एक राजा ने मणि के निमित्त मेरा वध कर दिया और मणि को ले लिया । इस प्रकार इन कलिकजी ने अपने पूर्ववितार में जो किया, उस सब को मैं भले प्रकार जानता हूँ । ३३। श्रीकृष्ण को मैंने कूँठा कलंक लगाया था, इसी पाव से उम जन्म में मौक्ष को प्राप्त नहीं हो सका । यही कारण है कि इस जन्म में अपनी रमा रूपिणी सत्यभामा को कलिकृपा कृष्ण को देकर मैं सद्गति को प्राप्त करूँगा । ३४।

सुदर्शनास्त्रधातेन मरण मम काक्षितम् ।  
 मरणोऽभूदिति जात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ।३५।  
 इत्यसौ जगतामीशः कल्कि श्वशुरधातनम् ।  
 श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्लिया धर्मभिया प्रभु ।३६।  
 अत्याहचर्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता  
 लोका ससदि हर्षिता मुनिगणा कल्केर्गुणाकर्षिता ।  
 आख्यानं परमादरेण सुखद धन्य यशस्य पर  
 श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवजो मोक्षप्रद चाभवन् ।३७।

यह जान कर कि युद्धस्थल मेरने से मोक्ष को प्राप्ति सम्भव है, मैंने यह श्रमिलाषा की थी कि कल्किजी के सुदर्शन चक्र-प्रहरि से मेरा मरण हो जायगा ।३५। जगदीश्वर भगवान् कल्कि ने अपने श्वसुर का इस प्रकार मारा जाना स्मरण करके ही धर्मभय और लज्जा से अपना मुख झुका लिया था ।३५। इस अत्यन्त विस्मय युक्त, अपूर्व और शेष उपाख्यान को सुन कर राजागण विस्मित हो उठे तथा सभी सभासद आनन्द विभोर हुए । कल्किजी के गुणों के प्रति मुनिगण भी आकर्षित हो रहे थे । राजा शशिध्वज के कहे हुए इस उपाख्यान के सुनने वाला प्राणी सुखी, धन्य और यशस्वी होकर अन्त मेरोक्ष को प्राप्त करता है, उसका कभी पुनर्जन्म नहीं होता ।३७।

तृतीयांश —

## चतुर्दश अध्याय

ततः कलिकर्महातेजाः शवशुर त शशिध्वजम् ।  
समामन्त्रय वचश्चित्रै सह भूपैर्ययौ हरि ।१।  
शशिध्वजो वर लब्धा यथाकांम महेश्वरीम् ।  
स्तुत्वा माया त्यक्तमाया सप्रियं प्रययौ वनम् ।२।  
कलिकः सेनागणै साढँ प्रययौ काञ्चनी पुरीम् ।  
गिरिदुर्गावृता गुर्ता भोगिभविष्वर्षिभि ।३।  
विदार्य दुर्गं सगण कलिक परपुरञ्जय ।  
छित्वा विषायुधान्वाणैस्ता पुरी ददृशोऽच्युतः ।४।  
मणिकाञ्चनचित्राद्या नागकन्यागणावृताम् ।  
हरिचन्दनवृक्षाद्या मनुजै परिवर्जिताम् ।५।

सूतजी बोले — फिर अत्यन्त तेज वाले कलिकजी ने अपने अद्भुत वचनों के द्वारा अपने शवशुर राजा शशिध्वज को सन्तुष्ट किया और राजाम्रो के सहित उठ कर चले गये ।१। राजा शशिध्वज भी इच्छानुसार वर प्राप्त करके, महेश्वरी माया का स्तव करते हुए अपनी पत्ने सहित विषय-बन्धन से मुक्त होकर वन को गये ।२। इधर कलिकजी ने पर्वत रूपी दुर्ग से आवृत्त काञ्चनीपुरी को प्रस्थान किया इस पुरी की रक्षा विष-वर्षक सर्प करते हैं ।३। शकुम्रो के पुर के चिजेता कलिकजी अपनी सेना सहित आगे बढ़े और उस कठिन दुर्ग को तोड़ कर तथा विष-वर्षक सर्पों को मार कर पुरी में प्रविष्ट हुए ।४। वहाँ उन्होंने देखा कि वह नगरी सर्वत्र मणियों और स्वर्ण से मुक्त है तथा सब और नाग

कन्याएँ छाई हुई हैं। वह पुरी स्थान स्थान पर कल्पवृक्षी से सुशोभित हो रही है। वहाँ मनुष तो नाम को भी नहीं हैं । ५।

विलोक्य कल्कि, प्रहसन्नाह भूपान्निमित्यहो ।

सपंस्येय पुरी रम्या नराया भयदायिनी ।

नागतारीगणकोर्णा कि व्यास्यमो वदन्तिवह । ६।

इतिकर्तं ग्रनाव्यग्र रमानाथ हरि प्रभुम् ।

भूपास्तदनुरूपाश्व खे वागाहाशरोरिणि । ७।

विलोक्य नेमा सेनाभि प्रवेष्टु भोस्त्वमहंसि ।

त्वा विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि । ८।

आकाशवाणीमकर्ण कल्कि, शुक्रसहायकृत् ।

ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वित । ९।

गत्वा ता दृशे वीरो धीरण धैर्यनाशिनीम् ।

रूपेणालक्ष्य लक्ष्मोश प्राह प्रहसितानना । १०।

यह देख कर हँसते हुए कल्किजी ने राजाओं से कहा—हे राजन्  
यह सपंपुरी कौसी आश्चर्यमयी एवं मनुषों के लिए अत्यन्त भयावनी  
है। इसमे नागकन्यों का ही निवास है। अब कहिए कि इसमे प्रवेश करे  
अथवा नहीं ? । ६। रमानाथ कलिकजी और सब राजागण भी यह निश्चय  
नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिये, इसलिए अत्यन्त चित्तित हुये।  
तब आकाशवाणी सुनाई दी । ७। इस पुरी मे सेना-सहित प्रविष्ट नहीं  
होना चाहिए। क्योंकि जैसे हो पुरी निर्वाकिनी विष-कन्या प्रो को हृषि  
पड़ेगी, वैसे ही नष्ट हो जाओगे । ८। आकाशवाणी का निर्देश सुन कर  
कल्किजी एकाकी ही खड्ग लेकर घोडे पर चढ़े और शुरु को साथ  
लेकर चल दिये । ९। कुछ आगे जाने पर उन्हें एक प्रमुख कल्या दिखाई  
दी, जिसे देखते ही ज्ञानी जन भी धैर्य छोड़ देते हैं। वह कन्या अपूर्व  
रूप वाले कल्किजी को देख कर हँसती हुई बोली । १०।

ससारेऽस्थिनम् नयनोर्केशणक्षीणादेहा  
लोका भूपा कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्या ।  
साह दीनासुरसुरन प्रेक्षणं प्रेमहीना  
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि । ११।  
क्वाह विषेक्षणादीनं क्वामृतेक्षणसङ्घम ।  
भवेऽस्मन्भाग्यहीनायाः केनाहो तपसा कृतः । १२।  
कासि कन्धासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।  
ब्रूहि मां कर्मणा केन विषेनेत्र तत्राभवत् । १३।  
चित्रग्रीवस्य भार्याहि गन्धर्वस्य महामते ।  
सुलोचनेति विख्याता पत्यरत्यन्तकामदा । १४।  
एकदाह विमानेन पत्वा पीठेन सङ्घता ।  
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकृला । १५।

विषेकन्या ने कहा—इस संसार में अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजागण तथा अन्यान्य मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इस लिए मैं अत्यन्त दुखित हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य किसी के साथ भी मेरा परिणाय सभव नहीं है। मैं आपके अमृत के समान हृष्टि प्रवाह में बहली हुई आपको नपस्कार कर रही हूँ। मैं मन्द भाव्य बालों और विष-हृष्टि से युक्त हूँ और आपकी हृष्टि अमृतमयी है। मैं किस तपस्या के प्रभाव से आपका दर्शन प्राप्त कर सकी हूँ। १२। कहिकर्जी ने कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन एव किका कन्या हो? तुम इस अवस्था को किस प्रकार प्राप्त हुई हो? किस कर्म-दोष से तुम्हे यह विष हृष्टि मिली है। १३। विषेकन्या ने कहा—हे महामते! चित्रग्रीव नामक जो गन्धर्व है मैं उनकी पत्नी सुलोचना हूँ। मेरे द्वारा मेरे पति का मन अत्यन्त अनानिदत रहता था। १४। एक संमेय की बात है—जब मैं आपने पति के साथ विमानास्थ होकर गन्धमादन पर्वत के एक कुञ्ज में शिला पर बैठ कर विह्वारन्रब हो यही। १५।

तत्र यक्षमुर्नि दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम् । १६।  
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहसं मदात् । १७।

सोपालम्भ मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।  
 शशाप मा क्रुधा तत्र तेनाहूँ विषदर्शना । १७।  
 निक्षिप्ताहूँ सर्पुरे काञ्चन्या नागिनोगणे ।  
 पतिहोना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी । १८।  
 न जाने केन तपसा भवद्वृष्टिपथं गता ।  
 त्यक्तशापामृताक्षाहूँ पतिलोक व्रजाम्यत । १९।  
 अहो तेषामस्तु शापं प्रसादो मा सतामिह ।  
 पत्युँ शापट्टेमर्मोक्षात्तवं पादावजदशनम् । २०।

उम समय मैं अपने रूप यौवन के गर्व से अत्यन्त मदोन्मत्त हो रही थी । वहाँ विकट शरीर वाले यक्षमुनि को देख कर मैं उन पर कटाक्ष करती हुई, उनकी हँसी उडाने लगी । १६। मेरे मुख से अपने प्रति अपमानजनक वचन सुन कर मुनि क्रोधित हो उठे और उन्होंने मुझे जो शाप दिया, उससे मैं तुरन्त विषदृष्टि को प्राप्त हो गई । १७। तब मुझे इस कांचनीपुरी में नागनियों के मध्य डाल दिया गया । तभी से मेरी दृष्टि विष की वर्षा किया करती है । इस प्रकार मैं आभागी पति से हीन होकर यहाँ एकाकी विचरती हूँ । १८। मुझे जात नहीं कि अपनी किस तपस्या के फल से मैं शापकी दृष्टि के सामने आ गई हूँ । शापके दर्शन से मैं शाप-मुक्त होकर अमृतवर्षिणी दृष्टि से सम्पन्न हो गई हूँ । शापके दर्शन होने की अपेक्षा त शाप देना भी श्रेष्ठ है क्योंकि शाप के कारण ही तो मोक्ष स्वरूप शापके चरणाम्बुद का दर्जन प्राप्त हो सका है । २०।

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेतार्कवर्चर्वसा ।  
 कल्किस्तु तत्पुराधीश नृप चक्रे महामतिम् । २१।  
 अमर्षस्तत्सुतो धोमान् सहस्रो नाम तर्तमुन् ।  
 सहस्रत सुतश्वसीद्राजा विश्रुतवानसि । २२।  
 बृहन्ननानां भूगर्णां समूर्णा यस्य वेशजा ।

त मनुं भूपशादूल नानामुनिगणैवृत् । २३।

अयोध्याया चाभिषिच्च मथुरामगमद्वरि ।

तस्यां भूप सूर्यकेतुभिषिच्य महाप्रभम् । २४।

यह कह कर वह विषकन्या सूर्य जैसे तेजस्वी विमान पर चढ़ कर स्वग को गई । कलिकजी ने महामति नामक एक राजा को उस पुरी के राज्य पर अभिषिक्त किया । २१। उस राजा महामति का पुत्र अमर्ष हुआ । अमर्ष का पुत्र धीमान् सहस्र और सहस्र का पुत्र अत्यन्त प्रसिद्ध राजा असि हुआ । २२। उसी राजा के बंश मे वृहन्तल राजाओ की उत्पत्ति हुई । नृपशादूल मनु को अयोध्या का राज्य देकर अनेक मुनियो के सहित कलिकजी मथुरा पहुचे और उन्होने अत्यन्त प्रभा से सम्पन्न सूर्यकेतु को मथुरा के राज्य पर विभिन्न अभिषिक्त किया । २३-२४।

भप चक्रे ततो गत्वा देवार्पि वारणावते ।

अरिस्थल वृक्षस्थल माकन्दच्च गजाह्वयम् । २५।

पञ्चदेशेश्वर कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।

शोम्भ पौड्र पुलिन्दच्च सुराष्ट्र मगधन्तथा ।

कविप्राज्ञसुमन्तेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः । २६।

कीकट मध्यकण्ठाटिघ्रमोड्र कलिङ्गकम् ।

अङ्ग वज्ज स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदोश्वरः । २७।

स्वय शम्भलमध्यस्थ कङ्ककेन कलापकान् ।

देश विशाख्यूपाय प्रादात्कलिः प्रतीपवान् । २८।

चोलबर्बरकवाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् ।

पुत्रेभ्यः प्रददौ कलिः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् । २९।

याधा करते हुए कलिकजी ने देवार्पि को राज्य देकर र अरिस्थल, वृक्षस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर और वारणावत-इन पाँच देशों का अविपत्ति बनाया और फिर शम्भल ग्राम के लिए चल पडे ।

फिर भ्रातृवत्सल कलिकजी ने कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र को शोभ्म, पौराण, पुलिन्द और मगध देशका राज्य दिया । २५-२६। फिर जगदीश्वर कलिकजी ने अपने गोत्र दाधवों को बीबट, मूर्ध्यकण्टिक, आन्ध, उड़ कलिग, अङ्ग और बगादि देश प्रदान किये । २७। फिर स्वयं शम्भल में रह कर विशाख्यूप-नरेश को कक्क और कपाल प्रदेशों का राजा बनाया । २८। तदनन्तर उन्होंने कृतवर्म्म आदि पुत्रों को द्वारका देश के मध्य में स्थित चोल, बर्बर तथा कर्ब आदि प्रदेशों का राज्य प्रदान किया । २९।

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तिः ।

प्रजा समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः । ३०।

पद्मया रमया कलिकर्ग्हस्थो मुमुदे भृशम् ।

धर्मश्रतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्रयम् । ३१।

देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।

सर्वशस्या वसुमती हृष्पुष्टजनावृता ।

शाठ्याचौर्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविविजिता । ३२।

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्यस्तु चार्याक्रितैः ।

पूजाहोमपरा पतिव्रतघरा यागोद्यता क्षत्रियाः ।

वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजाषरा ।

शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्विरकथालापाः सपर्यापिरा । ३३।

फिर भगवान् कलिकजी अपने पिताको अत्यन्त भक्तिपूर्वक धन-रत्न आदि भेंट करके और शम्भल ग्राम के निवासियों को सन्तुष्ट करके रमा और पद्मा के साथ गृहस्थाश्रम के सुख भोगने लगे । तब तक धर्म के चारों चरणों सम्पन्न हुए तीनों लोकों में सत्युग का आविर्भाव हो गया । ३०-३१। भक्तों को इच्छित फल प्रदान करते हुए देवगण सम्पूर्ण पृथिवी पर विचरण करते लगे । धरा के सब धान्यों से परिपूर्ण होने के कारण सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट हो मए । शाढ़, चौर्य अनृत, आधि,

व्याधि आदि सभी दुख भूमण्डल से अदृश्य हो गये । ३२। ब्राह्मण वेदपाठी हुए, स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म के पालन पूर्वक धर्मनुष्ठान से उगी । सर्वंत्र पूजन और होम होने लगे । क्षत्रिय भी यज्ञादि शुभ कर्मों में उद्यत हुए । विष्णु-पूजन से रत रहते हुए वैश्य गण भी वस्तु विनिमय का धर्म पूर्वक व्यापार करने लगे । शूद्रगण द्विज सेवा-परायण हुए । सभी प्राणी भगवान् का गुण कीर्तन, श्रवण और उपासना में तत्पर रहते हुए जीवनचर्या चलाने लगे । ३३।

तृतीयांश—

## पंचदश अध्याय

शाशिध्वजो महाराज स्पुतत्वा माया गत कुत ।  
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्त्वविदा वर ।  
या तत्कथा विष्णुकथ वक्तव्या सा विशुद्धये ॥१॥  
श्रुणुष्व मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।  
शुक्र प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ॥२॥  
तच्छ्रुणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीत यथाश्रुतम् ।  
सर्वकामप्रद नृणा पापतापविनाशनम् ॥६॥  
भल्लाटनगर त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः ।  
आत्मससारमोक्षाय मायास्तवमल जगौ ॥४॥  
ओ हीकारा सत्त्वसारा विशुद्धा ब्रह्मादीना मातर वेदबौद्धाम्  
तन्वी स्वाहा भूततन्मात्रकक्षाँ वन्देवन्द्या देवगन्धर्वसिद्धैः ॥५॥

शैनक जी बोले— हे सूतजी ! भगवती माया की स्तुति करके महाराज शशिध्वज कहाँ गये ? हे तत्त्वज्ञानियो मे श्रेष्ठ ! माया की स्तुति के विषय मे बताइये । माया और विष्णु की कथा मे कोई भेद नहीं होने से पुनीत होने के द्वादशेश्य से उस स्तव को हमारे प्रति कहिये ॥। सूत जी न कहा— हे श्रृष्णियो ! मार्कण्डेयजी, के पूछने पर शुकदेव जी ने जो श्रेष्ठ माया-स्तोत्र कहा था, वही तुम्हारे प्रति कहता हूँ, सुनिये ॥२॥ जिस माया-स्तव को मैंने सुना और पढ़ा है, जो सुनने से सब की कामनाएँ पूर्ण करने वाला और पाप-ताप का नाशक है, उस

माया स्तव को सुनो । ३। शुकदेव जी बोले — विष्णु भक्त महाराज शशि-  
च्छज ने जब अपने भल्लाटनगर को छोड़ कर ससार से विमुख होने के  
उद्देश्य से माया-स्तव किया । ४। शशिच्छज बोले — हे, हीकार मयी,  
सत्यसार रूपिणी, विशुद्धा मायादेवी । आप ब्रह्मादि देवताओं की  
जननी हैं । वेद भी आपकी महिमा का बखान करते हैं । समस्त भूतगण  
और तन्मात्राएँ आपकी कील में स्थित रहते हैं । आप देव, गंधर्व और  
सिद्धगणों से बन्दित, सूक्ष्म स्वरूप तथा स्वाहा रूपिणी हैं, मैं आपकी  
बन्दना करता हूँ । ५।

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्या व्यामसामासिकाद्यः  
विद्वद्गीता कालकल्लोलनोला लीलापाङ्गशिपससारदुर्गाम् । २।  
पूर्णा प्राप्या द्वंतलभ्या शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति  
नानारूपदर्वतिर्यद्मनुष्यस्तामाधारा ब्रह्मरूपा नमामि । ७।  
यस्या भासा त्रिजगदभाति भूतैर्भात्येतत्तदभावे विधातुः ।  
कालोदर्वकर्म चोपाधयो ये तस्या भाषा तां विशिष्टां नमामि  
.भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूप तेजस्येव वायो स्पृशत्वम् ।  
खे शब्दो वा यच्चिदाभास्ति नाना  
मताभ्येताविश्वरूपा नमामि । ६।

सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।  
शचोशक्तस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु

आप लोकों से परे, द्वैतभूता, भव्या तथा व्यामादि ऋषियों  
के द्वारा बन्दिता हैं । भगवान् विष्णु भी आपका द्वोत्र करते हैं । आप  
काल की लहरों में लहराती रहती हैं । सभी जीव आपकी विलास लीला  
में पड़ते हैं । ऐसी आप ससार दुर्ग से तारने वाली को नमस्कार करता  
हूँ । ६। सृष्टि के आदि, मध्य और लय काल में आप ही स्थित रहती  
हो । आप सब की आश्रयदाता को पूर्ण भाव या द्वैतभाव से ही पाया  
जा सकता है । देवता, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियों में आप ही  
वभवत होकर प्रकाशित हैं । आप संसार की आश्रयभूता एवं ब्रह्म-

स्वरूपिणी को नमस्कार है । ७। आपकी महिमा से ही यह त्रिलोकी पञ्चभूतात्मिका रूप से प्रकाशित है । काल, दैव, कर्म, उपाधि आदि कोई भी विधाता द्वारा निश्चित भाव आपके प्रकाश के बिना प्रकाशित नहीं हो सकता । ऐसी आप प्रभावती को मेरा नमस्कार है । ८। आप ही पृथिवी में गन्ध, जल में रस, तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द रूप से विविध रूपों में प्रतिष्ठित रहती हैं । आप जगत् में व्याप्त विश्वरूपिणी को नमस्कार है । ९। आप ही ब्रह्मरूपा सावित्री हैं, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, शकर की भवानी तथा देवराज इन्द्र की शची हैं । हे माये ! सम्पूर्ण विश्व में आप इसी प्रकार व्याप्त हो रही हैं । १०।

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वत्राधश्ये या स्यविरा कालकूलना  
नानाकारैर्यगियोगैरूपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि । ११  
वरेण्या त्व वरदा लोकसिद्ध्यासाध्वीधन्या लोकमान्या सुकन्या  
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाखण्डा, नानदेशे  
रूपवेशौर्विभासि । १२।

तव चरणसरोज देवि ! देवादिवन्द्य यदि हृदयसरोजे ।  
भावयन्तीह भक्त श्रुतियुगकुहरे वा सश्रुत  
धर्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धच्च तेषाम् । १३।  
मायास्तवमिद पुण्य शुकदेवेन भाषितम् ।  
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्ध लेभे शशिध्वज । १४।  
कोकामुखे तपस्तप्त्वा हर्य ध्यात्वा वनान्तरे ।  
सुदर्शनेन निहतो वंकुण्ठं शरण यथौ । १५।

आप शैशवावस्थी में बाला, योवनावस्था में युवती और वृद्धावस्था में वृद्धा रूप वाली रहती हैं । आप ही काल से कल्पित, ज्ञानातीता और कामरूपा हैं । आप विभिन्न रूपों में प्रकाशित होने वाली ईशवरी का यज्ञ और योग के द्वारा पूजन किया जाता है । मैं आपकी वन्दना करती हूँ । १६। हे वरेण्या ! आप ही उरासको को वरदात्री और सिद्धि के देने वाली हैं । आप लोकों के द्वारा मान्या, साध्वी, एव सब प्रकार से छूल्या हैं । आप ही श्रेष्ठ कन्या, चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि विभिन्न

रूपो से अनेक देशो में प्रकाशित रहती हैं । १२। हे ससार की आदि  
रूपा देवि ! यदि कोई आपने हृदय में देवताओं आदि से बन्दित आपके  
चरणारविन्दो का भक्ति भाव पूर्वक ध्यान और आपका नाम-शब्दण  
करता है, तो उसे घर्म रूपी ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति  
होती है । १३। यह पवित्र माया-लक्ष्मी शुक्रदेव जी द्वारा कहा गया था ।  
राजा शशिध्वज ने इसे मार्कण्डेयजी से प्राप्त करके सिद्धि-लाभ किया  
। १४। वन में स्थित कोकामुख नामक स्थान में तपस्या करते हुए राजा  
शशिध्वज सुदर्शन चक्र से निहत होकर वैकुण्ठ को प्राप्त हुए । १५।



त्रृतीयांश —

## षोहश अर्द्धपाठ

एतद्व कथित विप्रा शशिध्वजविमोक्षणाम् ।  
कल्केः कथामप्रतिमा शृङ्खन्तु विबुधर्षभो ॥१॥  
वेदो धर्मं कृतयुग देवलोकश्चराचरा ।  
हृष्ट पुष्टा सुसतुष्टा कल्कौ राजनि चाभवन् ॥२॥  
नानादेवादिलिङ्गे षु भूषणैर्भूषितेषु च ।  
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पका पूजका जना ॥३॥  
न सन्ति मायामोहादच्या पाखण्डा साधुवच्चकाः ।  
तिलकाचितसर्वाङ्गा कल्कौ राजनि कुत्रचित् ॥४॥  
शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।  
प्राह विष्णुयशा पुत्र देवान्यष्टु जगद्वितान् ॥५॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार राजा शशिध्वज को मोक्ष प्राप्ति का प्रसग मैंने आपको सुनाया। अब कलिकजी के विचित्र आख्यान को पुन कहता हूँ, इसे सुनिये ॥१॥ जब भगवान् कलिकजी राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, तब वेद, धर्म, सत्युग, देवरण्ण और चराचर युक्त विश्व हृष्ट, एव सतुष्ट हो गया ॥२॥ पूर्व युग मे पूजा करते वाले मनुष्य देव मूर्तियों को विभिन्न प्रकार के वस्त्रालकारों से अलकृत करके इन्द्रजाल के समान रहस्य-कल्पना किया करते थे ॥३॥ अब वह माया मोह से आवृत्त साधु वचक पाखण्ड समाप्त हो गया ॥ कलिकजी के

राज्य मे सभी मनुष्य सर्वा ग मे तिनक लगाने लगे ।४। पद्म और रमा के साथ जब कलिकजी शम्भल ग्राम में सुख पूर्वक निवास कर रहे थे, तभी एक दिन उनके पिना विष्णुयशजी ने अपने पुत्र से देवताओं को सन्तुष्ट करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने को कहा ।५।

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कलिकः परमहर्षितः ।

विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ।६।

राजसूयैवर्जिपेयैरश्वमेघैर्महामङ्ग्लैः ।

नानावार्गं कर्मतन्त्रेरीजे क्रनुपति हरिम् ।७।

गगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् ।

कृपरामवसिष्ठाद्यैव्यासं घौम्यकृतव्रणोः ।

श्रश्वत्थाममघुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ।८।

दक्षिणाभि॒ समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्वेऽपारगान् ।९।

चव्यैश्चोर्यैश्च पेयैश्च पूर्णशकुलियावकेः ।

भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभिः ।१०।

पिता के वचन सुन कर हर्षित हुए कलिङ्गी ने विनष्ट पूर्वक कहा—धर्म, अर्थ और काम की किंदिके प्ररोजन से मैं कर्म तत्त्व विहिन राज्यकार, वाज्येन और अश्वमेरांगि मङ्गलयज्ञो के अनुष्ठान द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न कहूँगा ।६-७। फिर कलिङ्गी ने कृतावार्य, परशुराम, वसिष्ठ, वगास, घोषण, अक्षुरव्रण अश्वत्थामा, मवुच्छन्द तथा मन्दिरान आदि महात्मा महर्षियों और वेदान्नियों को आमन्त्रित कर उनका पूजन किया । तदनन्तर गङ्गा-यमुना के मध्य मे दिशन यज्ञ मे दीक्षित होकर उन्होंने स्नान किया और दक्षिणा दी ।८-९। फिर उन्होंने अनेक प्रकार के चव्य, चोष्य, पेय, पूर्ण, शष्कुल और यावक आदि भोज्य पदार्थों के द्वारा उन ब्राह्मणों को श्रेष्ठ भोजन कराया ।१०।

यत्र वल्लृतं पाके वस्त्रो जलदो मरुत् ।११।

परिवेष्टा द्विजान्कामैः सन्नादैरतोषयत् ।

वाद्ये नृत्यंश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सत्वे १२।  
 कल्कि कमलपत्राक्ष प्रहर्ष प्रददौ वसु ।  
 खीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ।१३।  
 रमभा तालधरां नन्दी हूहगयिति नृत्यति ।  
 दत्त्वा दानानि पात्रेभ्योब्राह्मणेय स ईश्वर ।१४।  
 उवास तीरे गगाया पितृवाक्यानुमोदित ।  
 समाया विष्णुयशसः पूर्वराजकथा त्रिया ।१५।  
 कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधा ।  
 तत्रागतस्तुम्बुरुणानारद. सुरपूजित ।१६।

यज्ञ का भले प्रकार परिपाक हुआ । अग्नि ने पाक किया, वरुण ने जल प्रदान किया और वायु परोसने लगा । पद्माक्ष कल्किजी ने इस प्रकार श्रेष्ठ अन्नादि, नृत्य, वाद्य, गीतादि से उत्सव करते हुए सब के आनन्द की वृद्धि की । बालक, स्त्री, वृद्ध आदि सब को धन से यथोचित सत्कृत किया । ११-१३। रमभादि नावने लगी, नन्दी ताल देने लगे, हुई गन्धवं ने गीत गाया, उस समय ब्राह्मणो और सत्पात्रो को धन प्रदान करने के पश्चात् कल्किजी अपने पिता की अनुमति से गङ्गात पर रहने लगे । विष्णुयश की विद्वत्सभा में विद्वान् विप्रगण राजाओं को सन्तोष देने वाली कथाएँ कहने लगे । इस प्रकार जब सभी ज्ञानी-जन एव द्विजजन आनन्द में निमग्न थे, तभी राजा तुम्बुरु और देवताओं द्वारा पूजित नारदजी वहाँ आये । १४-१६।

तं पूजयामास् मुदी पित्रा सह यथाविधि ।  
 तौ सपूज्य विष्णुयशा प्रोवाच विनयान्वितः ।  
 नारद वैष्णवं प्रीत्या वीणापार्णण महामूनिम् ।१७।  
 अहो भाग्यमहो भाग्य मम जन्मशताजितम् ।  
 भवद्विधाना पूर्णनां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ।१८।  
 अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृपाश्च पितर. परम् ।

देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ।१६।  
 यत्पूजाया भवेत्पूजयो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् ।  
 पापसध स्पर्शनाच्च किमहो साधुसङ्गत ।२०।  
 साधूना हृदय धर्मो वाचो देवा सनातनाः ।  
 कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुहरि. स्वयम् ।२१।

उस अवसर पर प्रकृलित हृदय वाले विष्णुयश जी ने उन दोनों का विवित पूजन किया और फिर उन्होंने वीणायाणि विष्णु भक्त न। रद्दी से विनय पूर्वक कहा ।१७। विष्णुयश बोले—मेरा अहो-भाश्य है । मौ जन्मो से संचित पुन्य के प्रभाव से ही आर परम पूर्ण पुरुषो के दर्शन मेरे मोक्ष के उद्देश्य से ही प्राप्त हुए हैं ।१८। आपके दर्शन और पूजन के होने से हमारे पितरो की भी तृती हो गई तथा अर्थित मे दी हुई आहुत के सफन होने से देवगण भी सन्तुष्ट हो गए हैं ।१९। जिनके पूजन मे भगवान् विष्णु का पूजन निहिन है, उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म का नाश हो जाता है । उनके स्पर्श मात्र से पापों के पुन्ज भी सदूल मिट जाते हैं । ऐसे साधुओं का सा भी अद्भुत ही है ।२०। साधुओं का हृदय धर्म, वाणी सनातनदेव और कर्म ही कर्म को क्षीण करते हैं । इस प्रकार साधु ही साक्षात् हरि है ।२१।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्वये ।  
 यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टयिविग्रहे ।२२।  
 पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मामायासंसारवारिवृ॑ ।  
 नौकाया विष्णुमक्त्वा च कर्णावतोऽसि पारकुत ।२३।  
 केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।  
 लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्मणा शर्म तद्वद ।२४।  
 अहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा ।  
 पितर मातर यिष्णुर्त्वं मुच्चति कहर्चित् ।२५।  
 पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किजंगत्पतिः

त विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति । २६।

दुष्टों को दण्ड देने वाला श्रीकृष्णावतार जिस प्रकार भौतिक देह से युक्त नहीं है, वैसे ही तीनों लोकों में विष्णु भक्तों के शरीर भी पचभूत से युक्त प्रतीत नहीं होते । २२। हे ब्रह्मन् ! इस माया मय सासार सागर में आप ही विष्णुभक्ति रूपिणी नौका के द्वारा पार कराने वाले हैं । इसी लिये मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ । २३। हे विश्ववन्धो ! आप मुझे यह बनाने की कृपा करिये कि मैं इस सासार रूपी यातनागार से मुक्त होकर श्रेष्ठ निर्वाणपद को किस कर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता हूँ ? २४, नारदजी ने कहा—अहो ! यह माया कैसी आश्चर्यमयी, उज्ज्वला और बलवती है, जिसके प्रभाव से स्वयं भगवान् भी अपने पिता माता को मुक्त नहीं करा पाते । २५। जिन विष्णुयशजी के पुत्र साक्ष त् भगवान् जात्पति कल्कि हैं, वे मुझसे मोक्ष की कामना व्यक्त करते हैं । २६।

विविच्येत्थ ब्रह्ममुत्. प्राह ब्रह्मयशा सुतम् ।

विविक्ते विष्णुयशस ब्रह्मसम्पद्वद्देनम् । २७।

देहावसाने जीव सा दृष्ट्वा देहावम्बनम् ।

मायाह कतुं मिच्छन्त यन्मे तच्छ्रणु मोक्षदम् । २८।

विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया । २९।

अह मोया मया त्यक्त कथजीवतु मिच्छसि । ३०।

नाह जीवाम्यह माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये

अहमित्यन्यथाबुद्धिविना देह कथ भवेत् । ३१।

देहबन्धे वथाश्लेषास्तथ बुद्धि कथ तव ।

मायाधीनां विना चेष्टा ते कुतो वद । ३२।

ब्रह्मसुवन नारदजी ने यह सोच कर ब्रह्मज्ञान देने के विचार से विष्णुयशजी से कहा । २७। नारदजी बोले—जब देह के नष्ट होने पर पुनः देह का आश्रय प्राप्त करने की जीव ने कामना की तब माया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो । इसके सुनने से ही मोक्ष मिल जाता है । २८। उन भगवती माया ने विद्याचल पर स्वेच्छा से नारी रूप धारण करके

कहा । २६। माया बोली—मैं माया हूँ । जब मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तब तुम पुनर्जीवन प्राप्त करने की इच्छा क्यों करते हो ? । ३०। इस पर जीव ने कहा—हे माये ! मैं तो जीवन की इच्छा नहीं करता, परन्तु जीवन का आश्रय शरीर ही है । अह रूपी अभिमान के बिना देह धारण ही किस प्रकार सम्भव है ? । ३१। माया बोली देह धारण पर पर जो भेद ज्ञान होता है, तब तुम्हारी बुद्धि उस प्रकार की क्यों होती है ? जब चेष्टा माया के बिना सम्भव नहीं, तब माया रहित तुम्हारी चेष्टा किस प्रकार होती है ? । ३२।

•मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा,  
मायया जीवति मरम्बेष्टते हतचेतनः । १/  
ति.सारं सारवदमाति गजभुक्तकपित्थवत् । ३४।  
मम ससर्गजाता त्व नानानामस्वरूपिणी ।  
मा विनिन्दसि कि मूढे स्वैरिणी स्वामिन यथा । ३५।  
ममाभावे तवाभाव प्रोद्यत्सूर्यं तमो यथा ।  
मामावर्यं विभासि त्व रविनवघनो यथा । ३६।  
लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये :  
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रिजालवत् । ३७।

जीव ने कहा—हे माये ! तुम्हारी प्राज्ञता मेरे बिना प्रकाशित नहीं हो सकती और न किर विषय में स्पृहा ही सम्भव है । ३३। माया बोली—जीव का जीवन धारण माया से ही हो सकता है । माया से रहित जीव हाथी द्वारा भक्षित कपित्थ फल के समान सारहीन होता है । ३४। जीव बोला—हे मूढे ! तूने हमारे ही ससर्ग से उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नाम और रूप धारण कर लिये हैं । स्वामी की निन्दा करने वाली स्वैरिणी नारी के समान तू हमारी निन्दा क्यों कर रही है ? । ३५। जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार का अभाव हो जाता है, वैसे ही मेरे अभाव में तेरा भी अभाव निहित है । जैसे सूर्य को आवृत्त करता

हृषा मेघ शोभा पाता ।, वैसे ही तुम भी मुझे ढक कर शोभा को प्राप्त होती हो । ३६। हे माये । तुम लीला रूपी बीज की भुसी के समान हो । अनेकत्व की कारण रूपा भी तुम्ही हो तथा ससार के आदि, अन्त और लय मे इन्द्रजाल की भाति सुशोभित होनी हो । ३७।

एवं निवेष्य नित्य मनोव्यापारवर्जितम् ।  
 अभौतिकमजीवञ्च शरीर वीक्ष्य सा त्यजत् । ३८।  
 त्यक्त्वा मा सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय  
 न स्थितिर्भवति काष्ठकुडचोपम कथञ्चन । ३९।  
 सा माया तव पुत्रस्य कलकेविश्वात्मनः प्रभोः ।  
 ता विज्ञाय यथाकाम चर गा हृरिभावन । ४०।  
 निराशो निमंम शान्त र्भोगेषु निस्पृहः ।  
 विष्णौ जगदिद ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ।  
 आत्मनात्मानमावेश्य सर्वतो विरतो भव । ४१।  
 एव त विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।  
 कलिक प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् । ४२।

इस प्रकार निविष्य, मानसि ह वापार और अभौतिक जीवन से परे उस शरीरधारी को देख कर माया ने उसका त्याग कर दिया । ३५। उस समय माया ने मेरा त्याग करते हुए यह शाप दिया कि हे जीव ! तू अप्रिय है . तू काठ की भीत के समान निश्चेष्ट एव लोक मे सर्वथा स्थिर्तन्त्रीन होगा । ३६। नारदजी बोले—हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र विश्वात्म कलिकी ने ही इस माया को उत्पन्न किया था । तुम उस माया के तत्त्व को जानते हुए भगवान् विष्णु के ध्यान मे रत रहते हुए रवेच्छापूर्वक भ्रमण करो । ४०। जब तुम आशा और ममता को त्याग कर और सभी भोगो से परे होकर शान्त चित्त हो ज ग्रोमे, तब तुम्हे इसका ज्ञान होगा कि यह विश्व भगवान् विष्णु के विरद् प्रभाव मे प्रतिष्ठित है तथा भगवान् विष्णु इस लक्षित जगत् मे व्याप्त हैं । इस प्रकार के ज्ञान से जीवत्वा और परमात्मा मे ग्रभेद मानते हुए सभी

कामनाओं से मुक्त ही जाओ । ४१। इस प्रकार विष्णुयज्ञजी को ज्ञान देकर और कलिकजी की प्रदक्षिणा कर दोनों मुनोश्वरों ने कपिलाश्रम के लिए प्रस्थान किया । ४२।

नारदेरितमाकर्ण्य कलिक सुतमनुत्तमम् ।

नारायणं जगन्नाथं वन विष्णुयज्ञा ययौ । ४३।

गत्वा बदरिकारण्य तपस्पत्वा सुदाहणम् ।

जीव बृहति सयोज्य पूर्णस्तत्याजय भौतिकम् । ४४।

मृत्स्वामिनमालिङ्ग्य सुमतिः स्नेहविकलवा ।

विवेश दहन साध्वी सुवेशीर्दिवि संस्तुता ॥ ४५॥

कलिकः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोनिर्वाणमिश्वरः ।

सवाध्यनयन स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ॥ ४६॥

पद्मब्धा रमया कलिकः शम्भले सुरवाऽच्छते ।

चकार राज्य धर्मात्मा तोकवेदपुरस्कृत । ४७।

महेन्द्रशिखराप्रामस्तीर्थपर्यटनादृत ।

प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थ शम्भल तीर्थकृत । ४८।

विष्णुयज्ञजी ने देवविनारद के मुख से यह सुन कर और ज्ञान कर कि मेरे पुत्र ही भगवान् नारायण जगदीश्वर हैं, स्वयं वन के लिए प्रस्थान किया । ४३। वेह वहाँ से चल कर बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ घोर तप करके अपने आत्मा को ब्रह्मा मे संयुक्त कर दिया तथा पचभूतात्मक देह को छोड़ कर पूर्ण स्वरूप हो गए । ४४। अपने पति की मृत्यु हुई सुन कर सुमति स्नेह से विह्वन होकर अपने पति के साथ चिंता में प्रविष्ट हो गई । उस समय श्रेष्ठ वस्त्र भूषण को धारण किये हुए देवलोक स्थित देवगण उनकी स्तुति करने लगे । ४५। कलिकजी ने मुनियों के मुख से अपने मात्रा-पिता का महाप्रायाण सुन कर स्नेह-ज्ञन से परिपूर्ण नेत्रों के सहित उनका श्राद्धादि कर्म किया । ४६। किरलोका चार और धर्माचार में स्थित कलिकजी देवताओं द्वारा कामना किये हुए शम्भल ग्राम मे रमा और पचा के सहित राज्य करने लगे । ४७। तीर्थ-

टन मे सलग्न परशुरामजी महेन्द्र पर्वत के शिखर से उतरते हुए कल्कि जी के दर्शनार्थ शम्भल ग्राम से पद्धारे । ४८।

त दृष्ट्वा सहसोत्याय पद्धया रमया सह ।

कलिकः प्रहर्षो विघ्वित्पूजाच्चक्रे विघ्नानवित् । ४९।

नानारसेंगुणमयैर्भौजायित्वा विचित्रिते ।

पर्यद्वृंजकेवस्त्राढचे शायवित्वा मुद यथौ ५०।

त भुक्तवन्त विश्रान्त पादसवाहनेंगुरुम् ।

सतोष्य विनयापन्न कलिकर्मधरमब्रवीत । ५१।

तव प्रसादात्सद्ध मे गुरौ त्रैवर्गिकच्च यत् ।

शशिष्वजततायास्तु शुणु राम निवेदितम् । ५२।

इति पतिवचन निशम्य राम निजहृदयेऽसितपुत्रलाभामष्टम् ।

ब्रतजपनियमर्यमैश्च कैर्वा मम भवतोह मुदाह जामदन्यम् । ५३।

उन्हे देखते ही पदमा और रमा के सहित कलिकी अपने निह-  
सन से उठ पडे और विवि विधान सहित हर्षित मन से उनका पूजन  
करने लगे । ५४। विभिन्न रसो से युक्त आननादि का उन्हे भोजन कराके  
सुन्दर वस्त्रो से ढकी हुई अद्भुत शय्या पर उन्हे शयन कराया । ५०।  
जिस समय गुरुवर परशुरामजी विश्राम कर रहे थे, उसी समय कलिकी  
उनके चरण दावते हुए विनय पूर्वक मधुर वाणी से कहने लगे । ५१।  
हे गुरो ! आपकी कृपा से मेरे धर्म, धर्थ और काम-इन तीनो वर्ग की  
सिद्धि हो चुकी है । इस समय राजा शशिष्वज की पुत्री रमा आपसे एक  
निवेदन करना चाहती है, उसे सुनने की कृपा करे । ५२। पति के बचन  
मुन कर हृषित हृदय से रमा ने परशुरामजी से प्रश्न किया—ब्रत, जप,  
नियम आदि मे ऐसा कौन-सा अनुष्ठान है, जिसके द्वारा मुझे इच्छित  
पुत्र की प्राप्ति हो सकती है ? ५३।

तृतीयांश—

## सप्तदश अंधाय

जामदग्न्यः समाकर्ष्य रमांता पुत्रगदधिजीम् ।  
कलकेरभिमनं बुद्ध्वाकारयद्विभणीव्रतम् ॥  
ब्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ।  
सुर्वभोगेन सयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥२।  
विधान ब्रूहि मे सूत व्रनस्यास्व च यत्कनम्  
पुरा केन कृत धर्म्यं रेकिमणीव्रामुत्तमम् ॥३।  
शृणु ब्रह्मनुराजपुत्री शमिष्ठा वाष्पवर्णणी ।  
अवगाह्य सरोनीर सोम हरमपश्यत ॥४।  
सा सखोभिः परिवृता देवयान्या च सगता ।  
शम्भुभीत्या समुत्थाय पर्यन्धुर्वंसन द्रुतम् ॥५।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! रमा को पुत्र की अभिनाष्टिगुी जान कर और कलिङ्गी के अभिप्राय को समझ कर परशुरामजी ने उसे रुक्षिमणी ब्रत का उत्तरदेश किया ॥१। उत्तर ब्रत के प्रभाव से शशिभवज पुत्री रमा पुत्रवनी, मौमाय सम्मना, सर्व भोर्णे से परिपूर्ण एव स्थिर योवत हो गई ॥२। शोऽरुजो ने कहा—हे सूतजी ! उत्तर रुक्षिमणी ब्रत का विवान और फन मुझे बनाइये और साथ ही यैह भी कहिये कि इप श्रृत्यन्त उत्तर ब्रत को वहिले किस ने किया था ? ॥३। सूतजी ने कहा—हे ब्रह्म ! आपने जो पूछा है, वही कहना है, सुनिये । दैद्यपति वृषभर्वा की पुत्री शमिष्ठा थी । एक दिन वह सरोवर के जन मे घुम कर विहार रत हुई थी, तभी उसने पार्वती सहित भगवान् शंकर को वहाँ देखा

।४। तब शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्यान्य सखियाँ सभी भथभीत होकर सरोवर से निकल कर तट पर आ गई और अपने-अपने वस्त्रों को धारण करने लगी ।५।

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रवत्ययमात्मनः ।

सलक्ष्य कुपिता प्राह वसन त्वज भिक्षुकि ।६।

इति दानवकन्या सां दासीभि परिवारिता ।

तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ।७।

ता मरना रुदती कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।

करे स्पृश्य समुद्धृत्य प्राह का त्व वरानने ।८।

सा शुक्रपुत्री वसन परिधाय हिया भिया ।

शर्मिष्ठायाः कृत सर्वं प्राह राजानमीक्षती ।९।

ययातिस्तदभिप्राय ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।

आश्वास्य ता ययो गेह तस्या परिणयाद्वतः ।१०।

तभी शीघ्रता और विह्वलता के कारण देवगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने भून से शर्मिष्ठा के वस्त्र धारण कर लिये । थह देख कर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर बोली—अरी भिक्षुकी ! तू मेरे वस्त्रों को उतार दे ।३। इसके पश्चात उस दैत्यराज पुत्री शर्मिष्ठा ने देवयानी को वस्त्रों से बांध कर एक कुए में डाल दिया और दासियों के सहित घर चली गई ।७। कूप में गिरी हुई देवानी रुदन करने लगी, तभी नहुष पुत्र राजा ययाति जन पीनेकी इच्छासे उस कूप पर पहुँचे । उन्होंने देवयानी का हाथ रकड़ कर कूपसे निकला और बोले—हे वरानने ! तुम कौन हो-यह बताओ ।८। शुक्रपुत्री देवयानी ने राजा की ओर लज्जा और भय से देखते हुए शीघ्रता पूर्वक वस्त्र पहिने और शर्मिष्ठा ने जो कुछ किया था वह सब उन्हे कह सुनाया ।९। देवयानी के अभिप्राय को जान कर राजा ययाति ने उसका पाणिग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की और फिर कुछ दूर तक उसके साथ-साथ चलते हुए, उसे हर प्रकारका आश्वासन देकर अपने घर को चले गये ।१०।

सा गत्वा भवनं शुक्र प्राह शर्मिष्ठ्या कृतम् ।  
 तच्छु त्वा कुपित विप्र वृषपर्वाह सान्त्वयन् । ११।  
 दण्डचं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।  
 शर्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु वन्मनसेप्सितम् । १२।  
 राजान प्रणतां पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाब्रवीत् ।  
 देवयानी त्विय कथ्या मम दासो भवत्विति । १३।  
 समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।  
 यथी निजगृहं ज्ञानी दैवं परमक स्मरन् । १४।  
 तत शुक्रस्तमानीय ययाति प्रतिलोमकम् ।  
 तस्मै ददौ तां विविवदे वयानी तया सह । १५।

इबर देवयानी ने अपने घर पहुंच कर शुक्राचार्यजी को शर्मिष्ठा की सब करतून सुनाई, जिससे वे अत्यत क्रीयित हुए। तब देत्यराज वृषपर्वा ने उन्हे सान्त्वना दी । ११। वह बोला—हे विभो ! यदि माप मुझ पर कुपित हो तो मुझे दड दीजिए अथवा अपकार करने वाली शर्मिष्ठा को दण्ड देना चाहे तो उसे दण्डित करिये । १२। दैत्यपति वृषपर्वा को अपने पितों के चरणों मे पड़ा हुआ देख कर देवयानी ने उससे कहा—हे राजन् आप ही पुत्री शर्मिष्ठा मेरी दासी बने । १३। यह सुन कर देवगति को प्रबल मानते हुए देत्यराज ने शर्मिष्ठा को बुला कर उसे देवयानी की दासी बना दिया और फिर अपने घर को चला गया । १४। फिर शुक्राचार्य ने राजा ययाति को विवि विधान सहित अपनी पुत्री देवयानी का कन्यादान कर दिया। उसके साथ उस ही दासी शर्मिष्ठा भी प्रदान कर दी गई । १५।

- दत्वा प्राह नृप विप्रोऽप्येना राजसुतां यदि ।
- शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुषभोक्षयति । १६।
- शुक्रस्यै तद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णानीम् ।
- अहृश्या स्थापयामास देवयान्यनुगा भिया । १७।
- सा शर्मिष्ठा राजपुत्री दुखशोकभयाकुला ।

नित्य दासीशताकीणा देवयानीन्तु सेवते ।१८।  
 एकादा सा वनगता रुदती जान्हवीतटे ।  
 विश्वामित्रं मुनि सा त ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ।१९।  
 व्रतिन् पुण्यगन्धाभिं सुरूपाभिं सुवासितम् ।  
 कारयन्ता व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकं ।२०।

राजसुता शर्मिष्ठा को देते हुए शुक्राचार्य ने राजा ययाति से कहा कि है राजन् ! यदि इसे कभी अपने शयनागार में बुलाएँगे तो उसी समय वृद्ध हो जाएँगे ।१६। शुक्राचार्य के वचनों से भय को प्राप्त हुए राजा ययाति ने अत्यन्त रूपवती शर्मिष्ठा को ले जाकर ऐसे स्थान में रख दिया, जहाँ पर उनकी हृषि भी न पड़ सके ।१७। अत्यन्त ही दुखिता, शोक और भय से व्याकुला राजपुत्री शर्मिष्ठा सैकड़ों दासियों के साथ देवयानी की सेवा में तत्पर रहती थी ।१८। एक दिन वह शर्मिष्ठा जाह्नवी के तीर पर बैठी हुई रो रही थी, तभी उसकी हृषि लियों से घिरे हुए विश्वामित्र पर पड़ी ।१९। वे ब्रती महर्षि विश्वामित्र सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित हो रहे थे । अनेक सुन्दर नारियाँ उनके चारों ओर बैठी हुई थीं । धूप, दीप, माला तथा अनेक प्रकार के उपहारों के द्वारा विश्वामित्र उन लियों से ब्रत-अनुष्ठान करा रहे थे ।२०।

निर्मायाष्टदलं पद्म वेदिकाया सुचिन्हितम् ।  
 रम्भापोतैश्वरुभिस्तु चतुर्षिरोणं विराजितम् ।२१।  
 वाससा निर्मितगृहे स्वरणपट्टैविवित्रिते ।  
 निर्मितैश्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ।२२।  
 पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकं शुभेः ।  
 पञ्चमृतैः पञ्चगव्यर्यथामन्त्रैद्विजेरितैः ।२३।  
 स्नापयित्वा भद्रसीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।  
 स्नामयित्वा भद्रसीठे कर्णिकाया प्रपूजयेत् ।  
 पञ्चभिर्दशभिर्वाप्तिष्ठोडशैरुपचारकं ।२४।

पाद्यमध्यश्रमहर शीतल सुमनोहरम् ।  
परमानन्दजनक गृहारण परमेश्वर १२५।

उन्होंने वेदी पर अष्टदल कमल बनाया और वेदी के चार कोणोंमें कदली वृक्ष स्थापित किये । २१। वस्त्रों से बने हुए मण्डप में एक स्वर्ण निर्मित आसन पर भगवान् वसुदेवकी विविध रत्नालङ्कारोंसे अलकृत प्रतिमा प्रतिष्ठित थी । २२। उन्होंने पुरुष सूक्त का पाठ करते हुए विभिन्न सुगन्धों से युक्त जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य आदि सिद्ध किया और ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्र से भद्रपीठा स्थित कर्णिका पर भगवान् श्रीवासुदेव की विराजमान किया । फिर सोलह पन्द्रह श्रयवादश उपचारों से उनका पूजन किया । २३-२४। हे परमेश्वर ! आपका श्रम दूर करने के निमित्त यह परमानन्द का देने वाला सुन्दर पाद निवेदित है । इसे स्वीकार कीजिये । २५।

दूर्वचिन्दनगन्धाढ्यमर्घ्य युक्त प्रयत्नत ।

गृहारण रुक्मणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो । २६।

नानातीर्थोद्भव वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।

गृहारणाचमनीय त्व श्रीनिवास श्रिया सह । २७।

नानाकुमुमगन्धाढ्य सूत्रग्रथितमुत्तमम् ।

वक्ष शोभाकर वाह मात्य नय सुरेश्वर । २८।

तन्तुसन्तानसन्धारचित बन्धन हरे ।

गृहारणावरण शुद्ध निरावरण सप्रिय । २९।

यज्ञमूर्त्रिभू देव ! प्रजापतिविनिर्मितम् ।

गृहारण वासुदेव स्व रुक्मण्या रमया सह । ३०।

हे रुक्मणी नाथ ? हे वासुदेव प्रभो ! दूर्वा से युक्त यह चन्दन-चर्चिन अर्घ्य यज्ञ पूर्वक स्थापित किया है, इसे प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये । २३। हे श्रीनिवास ! यह अनेक तीर्थों का पवित्र जल सग्रहीत है । आप इस सुरम्य जलको आच मनीय द्वारा लक्ष्मीबी के सहित ग्रहण कीजिये । २७। हे सुरेश्वर ! यह माला अनेक प्रकार के पुण्यों से निर्मित

हुई है इसके द्वारा आपके वक्षस्थल की शोभावृद्धि होगी । इस श्रेष्ठ माला को आप ग्रहण कीजिये । २८। हे हरे ! आपको आवृत्त करने में कोई भी समर्थ नहीं है । आप अपनी प्रिया लक्ष्मी जी के सहित इस सूत्र-सधान द्वारा निर्मित शुद्ध वस्त्रावरण को स्वीकृत कीजिये । २९। हे देव ! यह सूत्र प्रजापति द्वारा निर्मित हआ है इसे आप अपनी पत्नी रुक्मिणीजी के सहित ग्रहण कीजिये । ३०।

नानारत्नसमायुक्त स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्

प्रियया सह देवेश गृहाणाभरण मम । ३१।

दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलङ्घुकखण्डकान् ।

गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथ कुरु मा प्रभो । ३२।

कपूरागुरुगन्धाठच परमानन्ददायकम् ।

धूप गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह । ३३।

भक्ताना गेहशक्ताना ससारध्वान्तानाशनम् ।

दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर । ३४।

श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज । ।

प्रपञ्च पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत । ३५।

हे देवेश ! हे प्रभो ! विभिन्न प्रकार के रत्नों से युक्त एव स्वर्ण द्वारा निर्मित इन आभूषणों को आप अपनी प्रिया लक्ष्मीजी के सहित ग्रहण कीजिये । ३१। हे रुक्मिणीनाथ ! यह दधि, दुध, गुड, ग्रन्त, पुष्पा लड्डू एव शर्करादि को ग्रहण करके मुझे सनाथ कीजिये । ३२। हे वरद ! परमानन्द के देने वाली इस कपूर और अगर युक्त गन्ध को आप अपनी प्रिया के सहित स्वीकार<sup>\*</sup> कीजिये । ३३। हे विभो ! आप सस-कामी भक्तों के अन्वकार को नष्ट करने वाले हैं पौर शादर सहित जगत् को अपने प्रकाश से आलोकित कर रहे हैं, इस दीपक का अवलोकन कीजिये । ३४। हे श्यामसुन्दर ! हे कमलाक्ष ! हे पीताम्बरधारी चतुर्भुज ! हे देवेश ! आप रुक्मिणीजी के सहित प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा कीजिये । ३५।

इति तासा व्रत दृष्ट्वा मुनि नत्वा सुदुःखिता ।  
 शर्मिष्ठा मिष्ठवचना कृताञ्जलिरुद्धाच्च ता । ३६।  
 राजपुत्री दुर्भगा मां स्वामिना परिवर्जिताम्  
 आतुमहंय हे देव्यो व्रतेनानेन कर्मणा । ३७।  
 श्रुत्वा तु ता वचस्तस्या कारण्याच्च कियत्कियत् ।  
 पूजोपकरण दत्त्वा कारण्यामासुरादरात् । ३८।  
 व्रत कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।  
 सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूतिस्थरौवना । ३९।  
 सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सहा ।  
 व्रत कृत्वा पति लेभेराम राक्षसनाशनम् । ४०।

स्त्रियों को इस प्रकार व्रत करते हुए देख कर शर्मिष्ठा ने मुनि को प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर बोली । ३३। शर्मिष्ठा ने कहा—हे देवियो ! मैं अत्यत प्रभागी राज पुत्री हूँ । भारत के दोष से ही पति सग-हीना हूँ । यह ब्रत किस प्रकार किया जाता है, मुझे यह बता कर मेरी रक्षा करिये । ३७। शर्मिष्ठा के वचन सुन कर उन स्त्रियों को दया आ गई और उन्होंने कुछ पूजन सामग्री उसे देकर उससे आदर पूर्वक व्रत कराया । ३८। इस ब्रत को करके शर्मिष्ठा भी अपने प्रिय पति को प्राप्त होकर पुत्रवती और स्थिर यौवना होकर सतुष्ट हो गई । ३९। सीता और सरमा ने भी अशोक वाटिका में इस ब्रत का अनुष्ठान किया था उन्हीं के पुण्य-फल से सीताजी राक्षस-सहारक भगवान् राम से मिल सकी थी । ४०।

वृहदश्वप्रसादेन कृत्वेम द्रौपदी व्रतम् ।  
 पतियुक्ता दुखमुक्ता वभूव स्थिर यौवना । ४१।  
 तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशोदिने ।  
 जामदन्यादव्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् । ४२।  
 पट्टसूत्र करे वदूध्वा भोजयित्व द्विजान्ब ।  
 भुक्त्वा हविष्य क्षीरावतं सुमृष्टं स्वामिना सह । ४३।

बुभुजे पृथिवी सर्वमिष्वर्वा स्वजनेवृंता ।  
 सा पुत्रौमुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ । ४४।  
 देवानामुपकर्त्तरौ यज्ञदानतपोव्रतैः ।  
 महोत्साहौ महावीर्यों सुभगी कलिकसम्मतौ । ४५।  
 व्रतवरभिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या भवति विदि-  
 ततत्त्वा पूजिता पूर्णं रामा । हरिचरणसरोजद्वद्वभ-  
 क्त्यैकताना व्रजति गतिमृवर्वा ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् । ४६।

वृहदश्व की प्रेरणा से द्रौपदी ने इस व्रत को किया था और वह भी दुख से मुक्त होती हुई पतिमुक्त और स्थिर योवना हो गई । ४१। इसके पश्चात् रमा ने परशुरामजी के निर्देशन में वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन इस रुक्मिणी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और चार बर्ष व्यतीत होने पर उसका समापन किया । ४२। रेशमी सूत्र हाथ में बैंधते हुये रमाने ब्राह्मणों को भोजन कराया और क्षीरयुक्त श्रेष्ठ हविष्यान का अपने स्वारी सहित आहार किया । इससे वह स्वजनों से 'परिपूर्ण' होकर पृथिवी का अखण्ड सुख भोगने लगी । उसके मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । ४३। वे दोनों देवताओं के उपकारी, यज्ञ-दान और तपोव्रत में निरत रहने वाले, अत्यत उत्साही, महापराक्रमी सौभाग्यवान् तथा कलिकज्जी की आज्ञा में चलने वाले थे । ४४। इस व्रत को करने वालों को सब प्रकार सुख, सम्पत्ति और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं । ब्रह्मज्ञान और हरिचरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, तथा वे श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं । ४५।

तृतीयांश —

## अष्टदश अध्याय

एतद्वा कथित विप्रा व्रत वैलोक्यविश्रुतम् ।  
अतः पर कल्किकृतं कर्म्म यच्छुशुत द्विजा ॥१॥  
शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सरा ।  
व्यतीता आत्रपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभि सह ॥२॥  
शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरे ।  
पताकाध्वजचित्राद्यै यथेन्द्रस्यामरावती ॥३॥  
यत्राष्टषष्ठितीर्थाना सम्भव. शम्भलेऽभवत् ।  
मृत्योर्मोक्ष क्षिती कल्केरकत्करय पदाश्रयात् ॥४॥  
वनोपवनसन्ताननाना कुसुम सकुलैः ।  
शोभित शम्भल ग्राम मन्ये मोक्षपद भुवि ॥५॥

सूतजी बोले — हे ब्राह्मणो ! तीनो लोक मे प्रसिद्ध इस रुक्मिणी व्रत को मैंने आपके प्रति कहा है । इसके पश्चात् कल्किजी ने जो कार्य किये थे, उन्हे कहता हूँ, सुनिये ॥१॥ इस प्रकार कल्किजी अपने भाई, पुत्र, बाध्व और स्वजनो के साथ एक हजार वर्ष तक शम्भल ग्राम में निवास करते रहे ॥२॥ उस समय वह शम्भल पुरी ध्वजा-पताकादि से विभूषित हुई सब प्रकार इन्द्र की अमरावती के तमान शोभामयी प्रतीत होती थी ॥३॥ शम्भल ग्राम मे उस काल ग्रहसंठ तीर्थ एकत्रित हो गए थे निष्कलक कल्किजी की महिमा से शम्भल ग्राम मे मृत्यु होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती थी ॥४॥ वर्द्ध के वन-उपवन आदि अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्पो

से परिपूर्ण और रमणीय हो रहे थे। तथा शम्भल ग्राम सासार में मोक्ष के देने वाला माना जाने लगा था। ५।

तत्र कल्किः पूरस्त्रीणा नयनानन्दवृद्धंन ।

पद्मया रमया काम रराम जगतीपति । ६।

सुराघिप्रपदत्तेन कामगेन रथेन वै ।

नदीप्रवंतकुञ्जंषु द्वीपेषु परवा मुदा । ७।

रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभीरमापति ८

पद्मामुखामोदसरोजशीघ्रवासोपभोगी सुविलासवास ।

प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गहाविशे प्रविवेश कल्किः । ८।

पद्मा तु पद्माशतरूतरूपा रमा च पीयूषलकाविलासा ।

प्रति प्रविष्ट गिरिगह्यवरे ते नारीसहस्तकुलिते त्वगाताम् । ९।

पद्मा पति प्रेक्ष्यगु हानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्

रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चादगता कल्किमहोग्रकामा

नगर निवासिनी नारियों के नयनों की आनन्द-वृद्धि करने वाले कल्किजी पद्मा और रमा के साथ शम्भल ग्राम में निवास करते हुए विहार करने लगे। ३। वे मुदित मन से इन्द्र द्वारा दिये हुए रथ पर आरूढ होकर नदी, पर्वत, कुञ्ज और द्वीप में पद्मा और रमा प्रभृति नारियों के साथ विहार करते रहे। ७-८। एक समय की बात है—पद्मा के मुख मोद के पद्म-गन्ध का उपभोग करने वाले कल्किजी पर्वत की एक गुफा में प्रविष्ट हुए जो कि अनेक नीलेन्द्र मणियों की आभा से प्रकाशित हो रही थी। ९। उनके साथ सहस्र सखियों के सहित पद्म और पीयूषकला जैसी विलासिनी रमा भी उस गुफा में गई। १०। अपने स्वामी कल्किजी को उस गिरिगुहा में घुसते हुए देख कर मनोहारिसी पद्मा भी उनके पीछे-पीछे गई तर्था रमा ने भी विहार की इच्छा से स्त्री यूथों के सहित पीछे से प्रवेश किया। ११।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्यरान्ले कान्ताभिरात्म प्रतिमाभिरीशम् ।

कल्किच्च दृष्ट्वा नवनीरदाभ ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह । १२

रमा सखीभिः प्रमदाभिरात्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी  
पद्माति पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बसौस्म चार्ता  
भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कर्त्तिक शुक त कुचकु कुमेन ।  
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्माय चालिङ्गं तनाम भावात्  
रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामाद्विता त हृदये निधाये  
ध्यात्वा निजालङ्घरणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करणावसन्ना  
क्षणात्सचाय फरोद रामा कलापिनः कण्ठनिभ उवनाथम् ।  
हृदोपगूढ न पुनः प्रलभ्म कामाद्वितेत्याह हरे प्रसीद । १६।

नीलेन्द्र मणिमय उस गिरिगुहा मे पहुँच कर पद्मा ने देखा कि  
मेघ के समान कान्ति वाले कलिकज्जी अपने जैसे सुन्दर रूप वाली नारियो  
के साथ गुफा के मध्य बैठे हुए हैं । यह देख कर पद्मा अत्यत आश्चर्य के  
साथ मोहित होकर निश्चेष्ट पाषाण के समान पृथ्वी पर बैठ गई । १२।  
सखियों के सहित रमा भी उस दृश्य को देख कर विस्मय से सब ओर  
देखने लगी । शत पद्माश्रो के समान रूप वाली नारियों को देख कर  
पद्मा तो दुःख और शोकित हो ही रही थी । १३। वह अपने नेत्र के  
कांबल से पृथिवी को रँगने लगी । वह कुंकुम और कस्तुरी से भूमि  
को सुगचित करती हुई, उस पर गिर गई । १४। कामवती रमा भी अपने  
हृदय मे कलिकज्जी का ध्यान करने लगी और हृदय-पुर्णो के द्वारा उनका  
पूजन करके शोक और दुःख से दृष्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गई । १५।  
क्षण भर के उपरान्त सचेत हुई रमा रोने लगी और अपने हृदय को  
कलिकज्जी के आलिंगन से रहित पाकर कह उठी—हे हरे ! प्रसन्न हो-  
इये । १६।

पद्मापि निर्मुच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम्  
कण्ठच कस्तूरिनयापि नीलं काम निष्टेन्तु शिवतामुपेत्य १७  
कलावतीना कलयाकलय क्षीरातां हरिरात्मन्द्युः ।  
ताः सादरेणात्मपति मनोज्ञाः करेणबो यूथपति यदेयुः ।  
सोनन्दभावा विषदाननुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकमा । १८

वैभ्राजके चैत्ररथे सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।

रेमे स रामाभिस्थारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः २०

पद्मा ने भी सब श्रू गार त्याग दिया और धूल मे लेट गई । उस समय उसका कस्तूरी युक्त नील वर्ण हुआ कर्णठ कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के समान लगने लगा । १७। उभी उन कातर नेत्र वाली विलासिनी प्रियांशु की इच्छा पूर्ण करने के लिए आर्तजनो के बधु कल्किजी उनके मध्य मे प्रकट हुए । १८। यूथपति हाथी के पास जिस प्रकार हथनिया जाती हैं, वैसे ही कल्किजी के समीप वे सभी नारियाँ हर्षित हृदय होकर आगईं । वे हृदय के सन्ताप को छोड़ कर पूर्ण कामा हो गईं । १९। फिर उदार चरित्र वाले एव तेजस्वी कल्किजी श्वेष गगनगामी रथ पर पदमा, रमा आदि नारियो के साथ आरूढ होकर पुष्पो से परिपूर्ण वैभ्राजक, चैत्ररथ और नन्दन वन में जाकर विहार-रत हुए । २०।

तत् सरोवर त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः ।

प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा । २१।

सर. प्रविश्य पद्मया विमोह रूपया तथा ।

जल ददुवंराङ्गनाः करेण वो यथा गजम् । २२।

इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः ।

प्रिययुवतिपरीत पद्मया रामयाद्यः । २३।

निजरमणविनोदे शिक्षयङ्ग्लोकवगर्ण्

जयति विवृधभत्तर्णशम्भले वासुदेव । २४।

ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा  
कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं करणांमृत सादरा ।

तैषा नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दस्यभिलाषं विना

ससारः परिमोर्चनञ्च परमानन्दामृताम्भोनिघेः । २५।

फिर वे अमासूक्त नारियाँ विहार करने वाले कल्किजी के साथ सरोवर के तीर पर जा पहुंचीं । जैसे हथिनियाँ यूथपति हाथी के शरीर,

पर जल डालनी हैं, वैसे ही वे सब स्त्रिया अद्भुत रूप वाली पद्मा के सहित कलिकजी के देह पर जल की वर्षा करने लगी । २१-२२। जो कलिकजी युवतियों के साथ लीला करने में निपुण तथा अपनी प्रिया रमा आदि नारियों के साथ विनोद युक्त विहार करने वाले हैं एवं जो कलिकजी देवताओं के भी ईश्वर, आदि पुरुष और जगदीश्वर हैं, उन शम्भल याम निवासी भगवान् वासुदेव की जय हो । २३-२४। पुरुषोत्तम कलिकजी के इस कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले चरित्र को जो कोई आदर पूर्वक सुनेगे, कीर्तन या ध्यान करेंगे, उन दास्य भाव की कामना वाले सत्पुरुषों के हृदय में भगवान् की प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रीति या कामना उत्पन्न नहीं होगी । वे यही अनुभव करेंगे कि ससार मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कोई परमानन्द नहीं । २५।

तृतीयांश—

## ॐ विंश अष्टपाठ

ततो देवगणा सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथे ।  
स्वे स्वैर्गंर्णैः परिवृता कलिक द्रष्टुमुपाययुः ॥१॥  
महर्षय गत्वा शगन्धवा किञ्चराश्चाप्सरोगणा ।  
समाजमुः प्रमुदिता शम्भल सुरपूजितम् ॥२॥  
तत्र गत्वा सभामध्ये कलिक कम्ललोचनम् ।  
तेजोनिधि प्रपञ्चाना जनानामभयप्रदम् ॥३॥  
नीलजीमूनसंकाश दीर्घीवरबाहुकम् ।  
किरीटेनाकंवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ॥४॥  
शोभमान द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।  
सहंषालापविकसद्वदन स्मितशोभिनम् ॥५॥

सूतजी बोले—इसके अनन्तर एक समय सब देवता और ब्रह्मा संयुक्त होकर अपने अपने गणों के सहित रथों पर चढ़ कर कलिकजी के दर्शनार्थ आये ॥१॥ महर्षिगण, गवर्बगण, किञ्चनरगण तथा अप्सरागण सभी अरथंत मुदित हृदय से उस सुरपूजित शम्भल ग्राम में एकत्र हुए ॥२॥ फिर सब कलिकजी की सभा में गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कम्ललोचन भगवान् कलिकजी शरणागतों को अभयदाता रूप से विराजमान हैं ॥३॥ उनकी कान्ति नील मेघ समोन थी, दीर्घ और सुपुष्ट भुजाएँ हैं, उनका मस्तक स्थिर विद्युत अरथवा सूर्य के समान तेजोमय किरीट से सुशोभित है ॥४॥ उनका मुख मंडल सूर्य के समान प्रकाश करने वाले

कुड़लो से सुशोभित है उनका मुखारविन्द मधुर मुस्कान और हर्षलाप से अत्यत शोभा को प्राप्त हो रहा है । ५।

कृपाकटाक्षविक्षेपवरक्षिस्विपक्षकम् ।  
 तारहारोल्लसद्वक्षश्वन्दकान्तमणिश्रिया ।६।  
 कुमुद्वतीमोदवह स्फुरच्छकायुधाम्बरम् ।  
 सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ।७।  
 नानामणिगणोदयोतदीपित रूपमद्भुतम् ।  
 ददृशुर्देवगन्वि ये चान्ये समुपागता ।८।  
 भक्त्या परमया युक्ता. परमानन्दविग्रहम् ।  
 कल्कि कमलपत्राक्ष तुष्टु दुः परमादरात् ।९।  
 जयाशेषसक्लेशकक्षप्रकीर्णनिलोहाममकीर्णहीश  
 देवेश विश्वेश भूतेश भावः । तवानन्तं चान्तं स्थितोऽज्ञामरत्नं  
 प्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ।१०।

शत्रु भी उनके कृपा-कटाक्ष-विक्षेप से अनुग्रह को प्राप्त होते हैं । वक्षस्थल पर चन्द्रकान्त मणि की कुमुदिनी को प्रसन्न करने वाली ज्योति से सयुक्त हार सुशोभित है, वस्त्र इन्द्रधनुष के समान विविष रंगों में शोभा को बढ़ा रहे हैं । प्रानन्द रस के कारण हृदय उल्लसित हो रहा है । ६-७। देवता गधर्वादि सभी आगन्तुकोंको कल्किजी का अनेक मणियों से सशोभित एव तेजस्वी रूप इस प्रकार अत्यत अद्भुत दिखाई दिया । ८। तब वे सभी परम भक्ति भाव से आदर पूर्वक उन परमानन्द विग्रह कमल लोचन कल्किजी की स्तुति करने लगे । ९। देवताओं ने कहा—हे देवेश ! हे विश्वेश्वर ! हे भूतेश्वर ! हे प्रभो ! आप सभी भावों से युक्त एव अनन्त हैं । आपके प्रचण्ड अग्नि रूप के क्वचित् स्पर्श से भी इस सासार भर के ब्लेश-पुंज भस्म हो जाते हैं । कान्ति की राशि से सम्पन्न आपके चरणों से लोक प्रकाशित है । हे अनन्तशक्ते ! आपकी जय हो । १०।

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षः सथले भास्वतकभौस्तु  
 श्याम मेघौधराजच्छरीरद्विजाधीशतुञ्जनन त्राहि  
 विष्णो स दाराः वय त्वा प्रसन्ना सशेष ।११।  
 यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्याक व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।  
 त्यक्त्वाशासितभूखण्ड सत्यधर्माविरोधत ।१२।  
 कलिकस्तेषामिति वच. श्रुत्वा परमहर्षित ।  
 पात्रात्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ।१३।  
 पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।  
 राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठाप्रकृतिप्रियान् ।१४।  
 ततः प्रजाः ममाहूय कथयित्व निजः कथाः ।  
 प्राह तात्रिजनिर्याण देवानामुषरोधत ।१५।

हे प्रभो ! आपके श्याम वर्ण वाले वक्षस्थल मे अत्तन्त उयोति  
 सम्पन्ना कौस्तुममाणी सुशोभित है । उस मणि के रश्मजाल से तीनो  
 लोक प्रकाशित हो रहे है इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेघमाल के  
 मध्य सूर्ण चन्द्र प्रतिष्ठित हो । हे नाथ ! हम सब विपत्ति मे पडे हुए  
 हैं और अपने नारी, पुत्र, स्वजनादि के सहित आपकी शरण मे आते हैं ।  
 हे प्रभो ! हम पर प्रसन्न होकर हमारी रक्षा कीजिये ।११। हे नाथ !  
 अब यह पृथ्वी सत्य और धर्म से अविरोध पूर्वक शासित है । यदि  
 आपकी हम पर कृपा है तो अब इसे त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान  
 कीजिये ।१२। देवाताओं के इन वचनों को सुन कर कलिकजी अत्यर  
 प्रसन्न हुए और वे अपने भुपात्र मित्रो के सहित वैकुण्ठ गमन की इच्छा  
 करने जाए ।१३। तब उन्होंने प्रजा वत्सल, महाबली एवं धार्मिक अपने  
 चारो पुत्रो को बुला कर तुरन्त ही राज्याभिषेक कर दिया ।१४। फिर  
 उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अपना वृत्तान्त कहते हुए उसे सूचित  
 कर दिया कि अब हमें देवताओं के अनुरोध पर वैकुण्ठ धाम के लिए  
 जाना है ।१५।

तच्छु त्वा ता प्रज्ञा; सर्वि रुदुर्विस्महान्विताः ।  
 त प्राहु प्रणाता पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ।१६।  
 भो नाथ मर्वधर्मज्ञ नामान्त्वकतुमिहार्हसि  
 यत्र त्व तत्र तु वक्ष याम प्रणातवत्सल ।१७।  
 प्रिया गृहा धनान्त्रयं पुत्रा प्राणास्तवानुगाः ।  
 परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वा यज्ञपूरुषम् ।१८।  
 इति तद्वचन श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदक्तिभिः ।  
 प्रथयो क्लिन्नहृदयः पत्तीभ्या सहितो वनम् ।१९।  
 हिमालय मुनिगणोराकीर्णं जान्हवीजले; ।  
 • परिपूर्णं देवगणै सेवित मनस प्रियम् ।२०।  
 गत्वा विष्णुं सुरगणैर्वृतश्चाऽचनुभुज ।  
 उषित्वा जान्हवीतीरे सस्मारात्मानमात्मना ।२१।

यह सुनकर सम्पूर्ण प्रजा अटरन विद्मयमें पड़कर ठशन करने लगी । जैसे पुत्र पिता से निवेदन करता है, वैसे वह प्रणाम करके उनसे बोली ।१६। प्रज्ञा ने कहा—हे नाथ ! आप सभी धर्मों के जानने वाले हैं । आप प्रणातपाल को हम सब का परित्याग नहीं करना चाहिये । हे नाथ ! हम आपके साथ चलेंगे ।१७। इस जगत् में सभी को अपना धन, सन्तान और धर ही अत्यन्त प्रिय है । आप यज्ञ पुरुष सभी के दुख और शोक का शमन करने में समर्थ हैं । यह जान कर हमारे प्राण भी आपका अनुगमन करने के लिए इच्छुक हैं ।१८। प्रजा के यह वचन सुन कर कलिक्जी ने उन्हें श्रेष्ठ उपदेश देकर सान्त्वना ब्रदान की और खेद-युक्त मन से अपनी दोनों पत्नियों को सैथ लेकर वन के लिए चल दिये ।१९। वे गगाजल से सम्पन्न, देवताओं और मुनियों से उपासित हृदय को आनन्द देने वाले द्विमालय पर्वत पर पहुँच कर देवताओं के मध्य विराजमान हुए और चतुभुंज विष्णु स्वरूप धारण करके अपने रूप का स्मरण करने लगे ।२०-२१।

पूर्णज्योतिर्मय साक्षी परमात्मा पुरातनः ।  
 वभौ सूर्यसहस्राणो तेजोराशिसमद्युतिः ।२२।  
 शखचक्रगदापद्मशाङ्गद्यिै॒ समभिष्टुत ।  
 नानालङ्घरणानाच्च समलङ्घरणाकृति॑ ।२३  
 ववृषुस्त सुराः पुष्टे॑ कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।  
 सुगन्धि॑ कुसुमासारदेवदुन्दुभिनि॑ स्वने ।२४।  
 तुष्टुवुमुर्मुर्हुः सर्वे॑ लोका सस्थागुजगमा ।  
 हृष्ट्वा॑ रूपमरूपस्त्र निर्वाणो वैष्णवं पदम् ।२५।  
 तहृष्ट्वा॑ महदाश्र्वयं पत्युः कलकेमंहात्मन ।  
 रमा पद्मा॑ च दहन प्रविश्य तमवापतुः ।२६।

तब वे पूर्ण ज्योतिमान् सर्वसाक्षी स्वरूप, सनातन पुरुष परमात्मा कल्किजी सहस्रो सूर्य के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।२२। विविध अलकारों से युक्त वे स्वयं भी अलकार के समान प्रकाशित हो रहे थे । शख, चक्र, गदा, पद्म और शाङ्ग ब्रह्म आदि समन्वित उनका वर्ण विश्रहै पूजित होने लगा ।२३। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि - सुशोभित थी । देवगण उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और सब और दुरुभिया बज रही थी ।२४। जब वे कल्किजी विष्णुपद में प्रविष्ट हुए, तब उन अरूप जगदीश्वर के रूप-दर्शन से सभी जीव मोह को प्राप्त हो गए ।२५। अपने पति कल्किजी के इस अद्भुत रूप को देख कर रमा और पद्मा अग्नि में प्रविष्ट होकर उसमें लीन होगई ।२६।

धर्मं कृतयुगं कलकेराज्ञया पृथिवीतते ।  
 नि॒सपत्नौ सुसुखिनौ भूलोक चेरतुश्चिरम् ।२७।  
 देवापिश्च मरु॑ काम कलकेरादेशकारिणौ ।  
 प्रजाः सपालयन्तौ तु भुव जुगुपतुः प्रभू ।२८।  
 विशाखयूपभूपालः कलकेनिर्याणमीदृशम् ।  
 श्रुत्वा॑ स्वपुत्रं विषये नृप कृत्वा गतो वनम् ।२९।

अन्ये नृपतयो ये च कर्केविरहकर्षिता ।  
 तथ्यायन्तो जजन्तश्च विरक्ताः स्युर्तुपासने ।३०।  
 इति कलकेरनन्तस्य कथा भुवनपावनीम् ।  
 कथयित्वा शुक्र प्राणान्नरनारायणाश्रमम् ।३१।  
 मार्कण्डेयदयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।  
 श्रुत्वानुभाव कलकेस्ते त ध्यायन्तो जगुर्यश ।३२।

भगवान् कलिकजी की आज्ञा के अनुमार धर्म और सत्युग भार्या-विहीन रह कर सुख पूर्वक भूमिल पर चिरकाल तक विचरण करते रहे ।२७। देवपि और मह—यह दोनों राजा कलिकजी के ग्रादेश-नुमार प्रजा-पालन एव प्रथिती के रक्षण में तत्पर हुए ।२८। भगवान् कलिकजी का गमन मुन कर विशाङ्गसूप नरेश भी अपने पुत्र को राज्य देकर वन में चले गये ।२९। अन्यान्य राजागण भी कलिकजी के वियोग को सहन न कर सके। उन्होंने अपने-अपने राज्य का त्याग कर दिया और कलिकजी के रूप का ध्यान करते हुए उन्हीं का नाम जरने लगे ।३०। अनन्त प्रभु कलिकजी की इस लोक पावनी कथा का बरणने करने के पश्चात शुक्रदेवजी ने नर-नारायण को प्रस्थान किया ।३१। शान्त चित्त वाले मार्कण्डेय आदि मूर्तिगण भगवान् कलिकजी के इस महात्म्य को श्रवण कर उनका ध्यान करते हुए यशोगान में सत्पर हुए ।३२।

यस्वानुशासनाद्भूमौ नार्थमिष्ठाप्रजाजनाः ।  
 नाल्पयुपो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हुंका ।३३।  
 नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभात्तमसम्भवा ।  
 निर्मत्सरा सदानन्दा बभूवुर्जीविजातय ।३४।  
 इत्येतत्कथित कलकेरवतार महोदयम् ।  
 धन्य यशस्यमायुष्य स्वर्गं स्वस्त्ययन परम् ।३५।  
 शोकसन्तापपापद्धन कलिव्याकुलनाशनम् ।  
 सुखद मोक्षद लोके वाञ्छितार्थफलप्रदम् ।३६।

तावच्छसप्रदीपाना प्रकाशो भुवि रोचते ।  
 भाति भानु पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ।३७।  
 श्रृत्वं तदभृगुवशजो मुनिगणैः साक सहृष्ठो वशी  
 ज्ञात्वा सूतममेषबोधविदित श्रीलोमहर्षात्मजम् ।  
 श्रीकल्केरवतारवाक्यममल भक्तिप्रदे श्रीहरे:  
 शुश्रूषु पुनराह साधुवचसा गगास्तत्र सत्कृत ।३८।

जिनके शासनकाल में इस पृथिवी पर कोई भी धर्म-हीन अल्पायुष्य, दरिद्री, पाखण्डी तथा कपट पूर्ण आचरण वाला व्यक्ति नहीं रहा और सभी प्राणी आधि-व्यावि से रहित, क्लेश-रहित और मात्सर्य-रहित होकर देवताओं के समान सुखी हो गए, उन्हीं के अवतरण का का यह प्रसग कहा गया है। इसके श्रवण मात्र में धन, यश और आयु की वृद्धि होती और परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा अन्तकाल में स्वर्ग की उपलब्धि हो जाती है ।३३-३५। यह कथा सुनने से शोक, सन्ताप, और पाप को नष्ट करती है। कलियुग के उद्गेगों का शमन मोक्ष एवं बाच्छित फल देने में वह समर्थ है ।३६। इच्छित फल को दाता पुराण रूपी सूर्य को उदय जब तक ससार में नहीं होता, तभी तक अन्यान्य-शास्त्र दीपक माला का प्रकाश टिक पाता है ।३७। भूगुवश में उत्पन्न मुनिगण शीनकादि ऋषियों ने इस भक्ति रस से परिपूर्ण कलिक कथा के श्रवण से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। वे जान गये कि लोम-हर्षण के पुत्र सूतजी ज्ञान में इस प्रकार प्रवृत हैं। मुनियों के हृदय में हरि कथा सुनने की इच्छा मुनः जागृत हुई और उन्होंने आदर सहित गगास्तोत्र के विषय में सूतजी से प्रश्न किया ।३८।

तूतोयांश —

## विंश अंकार्य

हे सूत । सर्वधर्मज्ञ यत्वया कथित तुरा ।  
गगा स्तुत्वा समायाता मुनयः कलिकसन्निधिम् ।१।  
स्तव त वदा गगाया सर्वप्रप्रणाशनम् ।  
मोक्षद शुभद भवत्या शृण्वता पठना मिह ।२।  
श्रृणुष्व भृषयः सर्वे गगास्तव मनुत्तमम् ।  
शोकमोहर पु सामृषिभि परिकीर्तितम् ।३।  
इय सुरतरगिणी भवनवारिधेस्तारिणी ।  
स्तुता हरिपदाम्बजादुपगता जगत्सदः ।  
मुमेरशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी ।  
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ।४।  
भगीरथमथानुगा मुरकरीद्रवपर्गिहा  
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिर पताकासिता ।  
सुरामुरनरोरगैजभवाच्युते स स्तुता  
विमुक्तफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ।५।

शोनकजी बोले — हे सूतजी ! आप सभी घर्मों के जानने वाले हैं। आपने कहा था कि मुनिगण गङ्गा जी का स्तवन करके विक्की के पास पहुँचे थे, तो वह स्तव कौन-सा है, जिसके भक्ति-सहित पढ़ने या सुनने से मोक्ष रूपी मङ्गल की प्राप्ति होती है और सभी पापों का नाश होता है । उसे हमारे प्रति कहिये ।१-२। है सूतजी ने कहा — हे मुनियो ! उस

ओर मोह के नाशक अत्यत श्रेष्ठ ऋषि प्रणति गगा-स्तोत्र को ओपके प्रति कहता हूँ, सुनिये । ३। ऋषियों ने कहा—यह सुरतरगिणी ससार समुद्र से पार करने वाली भगवान् विष्णु के बूरगा-विन्दो से उद्भुत होकर भूमडल पर प्रदाहित हुई । यह भवभय विनाशिनी, पाप नाशिनी, सुमेरु शिखर वासिनो, अमृत जल वाली, प्रसन्नवदना भगवती गगाजी शुभप्रदायिनी एव सर्व पूजिता है । ४ यह भगवती राजा भगीरथ के पीछे-पीछे पृथिवी पर चली । इन्होंने ऐरावत का गर्व खड़न किया । यह शिवजी के मस्तक में मुकुट की प्रभा रूप से शोभामयी और हिमालय की श्वेत पताका के समान है । सभी देवता, देत्य, मनुष्य और नाग आदि इनके यश का सदा गान करते रहते हैं । यह पापनाशिनी एवं मोक्षदायिनी है । ५।

पितामहकमन्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता  
 श्रुतिस्मृतिगणम्भुता द्विजकुलालवानावृता ।  
 सुमूरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।  
 सुधर्मफलशालिनो सुखपलाशिनी राजते । ६।  
 चरद्विहगमालिनी सगरवशमुक्तिप्रदा  
 मुनीद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।  
 सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसदर्शन-  
 प्रणामगुकोन्तनादिष जगत्सु सराजते । ७।  
 महाभिधसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी  
 सफेनजलहासिनी सितमरालसचारिणी ।  
 चलछहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा  
 रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते । ८।

इस मुक्ति रूपी बीजलताका प्रादुर्भाव ब्रह्म जी के कमण्डलुमे हुआ है । द्विजगण इसके आल-वाल रूप और सुधर्म इसको फल है । यह सुख रूप किसलयों से परिपूर्ण लता सुमेरु पर्वत का भैदन करके प्रगट हो गई । तीनों लोकी में व्याप्त गगाजी का यह स्तोत्र श्रुति, स्मृति

आदिं सभी धर्म शास्त्रों से सम्मत है । ६। सगरवश को मोक्ष देने वाली यह जाह्नवी, देवताओं के लिए मन्दाकिनी स्वरूपा तथा सदैव भगवन् के देने वाली है । प्रणाम पूर्वक इनका गुणान करने और इनके निर्मल जल का दर्शन करने से ही सन्सार में सुख की प्राप्ति होती है । ७। हिमालय के शिखर रुधि वक्ष वाली यह भगवती महाराज शन्मनु की रानी हुई थी । इनका केनो से युक्त जल ही हास है तथा श्वेत वर्ण वाले हम जिनकी गति, खिले हुए कमलोंकीपक्ति ब्रिनकी माला तथा तरगही जिनके हाथ हैं, ऐसी रसवती वह गगा प्रमुदित गति से समुद्र से मिलने के लिए बढ़ी चली जा रही है । ८।

कवचित्कलकलस्वना कवचिदधीरयादोगणा·  
 कवचिन्मुनिगणै स्तुता कवचिदनन्तसपूजिता ।  
 कवचिद्रविकरोज्वला कवचिदुदग्रपाताकुला  
 कवचिजजनविगाहिता जयति भीष्ममातासती । ९।  
 स एव कुशलो जन प्रणमतीह भागीरथी  
 स एव तपसा निर्धिंपति जाह्नवीमादरात् ।  
 स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनी  
 स एव विजयी प्रभुः सुरतरगिणी सेवते । १०।  
 तवामल जलातित खगशृगालमीनक्षत  
 चललहरि लोलित रुचिर तीर जम्बालितम् ।  
 कदानिजवपुर्मुदा सुरनरोगगै सस्तुतोऽ-  
 प्यह त्रिपथगामिनि । प्रियमतीव पश्याम्यदौ । ११।

जिनकी कही मुनिगण स्तुति करते हैं, तो कही ग्रनन्त भगवान् द्वारा पूजी जाती है । जिनके जल में कही विकराल जीव विचर रहे हैं, कही जिनका जल कल कल-गान कर रहा है, वही जल कही भीषण नाद करता हुआ पसित हो रहा है, उस पर कही सूर्य रश्मियाँ पड़ कर उसे प्रकाशमय कर रही हैं और कही उस जल में मनुष्य स्नान कर रहे हैं । ऐसी इन भीष्म की माता सरी गगाजी की जय हो । १२। इन भगवती

गगा को प्रणाम करने वाले पुरुष कुशल हैं। इनरे नाम का जप करने वाले मनुष्य ही वास्तव में तरस्वी हैं। इनका स्मरण करने वाले प्राणी ही श्रेष्ठ हैं। इनकी उपासना करने वाले जीव ही सब को जीतने में समर्थ तथा सम्पूर्ण ऐश्वरियों के श्वामी हैं। १०। है देवि। है त्रिपथगे। आपके निर्मल जल में हमारा शरीर कब भासित होगा? इस देह के मृत होने पर पक्षी और अत्युगाल आदि कब इसे नोचेगे और फिर कब यह आपकी चबल तरणों में उछलता हुआ टट पर स्थित शिवारों से कब सजेगा? हे माता! मैं स्वर्ग लेकर को कब प्राप्त कर सकूँगा और सुर, नर नाग कब मेरा स्तव करेंगे? इम प्रकार वा ग्रपना सौभाग्य में कब देख सकूँगा? ११।

त्वत्तीरे वसति तवामलजलस्न न तव प्रेक्षण्

त्वन्नामस्मरण् तवोदयकथासलापन पाबनम् ।

गंगे मे तव सेवनंकनिपणोऽयानन्दितश्चादृत-

स्तुत्वा त्वदा॑तपातको भुवि कदा शान्तश्चि॒ष्याम्यहम् ।२१।

इत्येतदृपिभि प्रोक्त गतास्तवमनुत्तमम् ।

स्वर्गय॑ यशस्यमायुष्य पठनाच्छ्रुवणादपि ।१३।

सर्वपापहर पु सा बलमायुविवद्धनम् ।

प्रातर्मध्याहनसायाहने गगासान्निध्यना भवेत् ।१४।

इत्येतद्भार्गवाख्यान शुकदेवान्मया श्रुतम् ।

पठित श्रावित चात्र पुण्य धन्य यशस्फूम् ।१५।

अवतार महाविष्णोः कलके परममदभुतम् ।

पठता शृण्वता भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ।१६।

हे गगे! आपके तट पर, वास करता हुआ और आपके निर्मल जल में स्नान करता हुआ मैं कब आपके दर्शन करूँगा? कब आपका नाम स्मरण करता हुआ आपके अवतरण की मुनीत गाया का गान करूँगा? आपकी सेवा करने के फल रूप में मेरे हूदयुमि आपकी भक्ति

का सञ्चार कब होगा ? मेरे द्वारा किये हुए पाप कब नष्ट होंगे ? कब मैं शान्त चित्त से पृथिवी पर विचरण करता हूँगा आदर को प्राप्त हूँगा ? १२। इस ऋषि प्रोक्त गंगा-स्तव का इस प्रकार पाठ किया गया । इसके पढने और सुनने से यश-लाभ होता तथा आयु की वृद्धि होती है । १३। इस स्तोत्र का प्रातः मध्याह्न और साय—तीनों काल पाठ करने से गगा जी का सान्निध्य प्राप्त होकर सब पापों का क्षय तथा बल और आयु की वृद्धि होती है । १४। इस भार्गवाख्यान का मैंने शुकदेवजी से श्रवण किया था । यह पढने और सुनने से पुरुषप्रद तथा धन और यश के बढाने वाला है । १५। भगवान् कल्कि के अवतार विषयक अद्भुत उपाख्यान का भक्ति सहित पाठ अथवा श्रवण करने पर सब प्रकार के अमगलों का का नाश हो जाता है । १६।

तृतीयांश—

## एकत्रिंश अध्याय

अत्रापि शुकसम्बादो मार्कण्डेयेन धीमता ।

अधर्मवशकथन कलेविवरण तत् । १।

देवानाब्रह्मसदन प्रयाणा गोभुवा सह ।

ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे । २।

सुमत्यास्वाशकैर्भ्रतृचतुर्भिः शम्भले पुरे ।

पितुः पुत्रेण सम्बादस्तथोपनयन हरे । ३।

पुत्रेण सह सवासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।

शष्वास्वाणा परिज्ञान शिवसदर्शन तत् । ४।

कलके, स्तव शिवपुरो वरलाभ शुकापनम् ।

शम्भलागमन चक्रे ज्ञातिम्यो वरकीननम् । ५।

सूतजी बोले—इम पुराण मे प्रथम मार्कण्डेयजी और शुकदंवजी का सम्बाद वर्णन हुआ है । फिर अर्धर्म के वन्श का वर्णन और कलिकजी का ग्रसग आया है । इसके अनन्तर गोरूप वारिणी पृथिवी के देवताओं के साथ ब्रह्मलोक गमन और विष्णुयशजी के घर कलिकजी के जन्म लेने की कथा कही गई । तत्पश्चात् भगवान् विष्णु के अन्श से चारों भाइयों के शम्भल ग्राम मे अवतरित होने का उपास्यान, पिता-पुत्र-सवाद और कलिकजी के उपनयन संस्कार का विवरण है । १-३। फिर पिता पुत्री का साथ साथ रहना, कलिकजी का वेद शास्त्रों तथा शस्त्रारत्र की शिक्षा पाने की और भगवान् शकर के दर्शन होने की कथा कही गई है । ४। तदनन्तर कलिकजी द्वारा शकर-स्ततव और वर प्राप्त करना और शिवजी

द्वारा प्रदत्त शुक के सहित उनका शभल ग्राम को लौटना तथा जाति बशुओं से वर प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।५।

विशाख्यूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।  
 महाभाग्याद्ब्राह्मणाना शुकस्यागमन तत् ।६।  
 कलिकना शुकसम्बाद सिहलाख्यानमुर्तमम् ।  
 शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वय वरे ।७।  
 दर्शनाद्भूपसधाना स्त्रीभावपरिकीर्तनम् ।  
 तस्या विषाद, कल्केस्तु विवाहार्थ समुद्घमः ।८।  
 शुकप्रस्थापन दौत्ये तथा तस्यापि दर्शनम् ।  
 शुकपच्चापरिचयः श्रीविष्णुः पूजनादिकम् ।९।  
 पादादिदेहध्यानञ्च केशान्त परिवर्णितम् ।  
 शुकभूषणदानञ्च पुन शुकसमागम ।१०।

फिर विशाख्यूप नरेशके प्रति कलिकनी द्वारा ग्रन्ते स्वरूपका और ब्राह्मण—माहात्य का वर्णन करना तथा शुक के आगमनकी कथा कही गई है ।३। फिर कलिक-शुक सवाद, शुक द्वारा सिहल द्वीप वर्णक, शिव द्वारा पद्मा को वर प्राप्ति का प्रसग पद्मा के स्वयवर में आये हुए राजाओं को स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन तथा पद्मा के सताप की चर्चा और विवाह के लिए कलिकनी के उच्चम की कथा कही गई है ।७-८। शुक का दूर-भाव से प्रस्थान, पद्मा और शुक की भेट तथा दोनों के परिचय का प्रसग और विष्णु भगवान् के पूजन की कथा है ।९। तदुपरान्त चरण से केश पर्यन्त, भगवान् के ध्यान करने का प्रसग, शुक को आभूषण-दान और शुक का कलिकनी के पास लौटना—यह कथा वर्णित हुई है ।१०।

कल्के. पद्माविवाहार्थ नमन दर्शन तयो ।  
 जलक्रीडाप्रसञ्जे न विवाहस्तदनन्तरम् ।१।  
 पु स्त्वप्राप्तिश्च भूपाना कलकेदर्शनमात्रतः ।  
 प्रनन्तागमन राजा सम्बादस्तेन सप्तदि ।१२।

षण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः॥  
 मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे माया प्रदर्शनम् ।१३।  
 अवाख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।  
 राजा प्रथाण के श्च पद्या सह शम्भले ।१४।  
 विश्वकर्मविधानच्च वसति पद्या सह ।  
 जातिभ्रातुसुहृत्पुत्रै सेनाभिबंदनिग्रह ।१५।

तदनन्तर विवाह के उद्देश्य से कल्किजी का गमन, जल क्रीड़ा के प्रसग द्वारा कल्किजी और पद्या का पारस्परिक परिचय और इनके विवाह का प्रमग कहा गया है ।११। फिर स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजा-गण का कलिक-दर्शन से मुन्. पुरुषत्व की प्राप्ति, अनन्त मुनि का सभा में आगमन और राजाओं से सम्वाद की कथा का वर्णन है ।१२। घण्ड रूप से अनन्त मुनि के जन्म का वर्णन, शिवजी की स्तुति और अनन्त मुनि के पिता के परलोक-गमन के पश्चात् विष्णु क्षेत्र में भगवती माया के दर्शन का प्रसग कहा गया है ।१३। तदनन्तर अनन्त का आख्यान, ज्ञान एवं वैराग्य रूप एश्वर्य का प्रसग, फिर राजाओं का प्रयण और पद्या महित कल्किजी के शम्भल-गमन की कथा कही है ।१४। फिर विश्वकर्मा द्वारा शम्भलपुरी का निर्माण और उसमें पद्या, जाति-बाँधव, भ्रात गण, सुहृद्भजन, पुत्रादि तथा सेना के सहित कल्किजी का निवास और बोद्धों के निग्रह की कथा वर्णन की गई है ।१५।

- कथितश्चात्र तेषाच्चा स्त्रीराणां सयोधनाश्रयः ।
- नतऽत्रो बालखिल्यीना मुनीना रवानिवेदनम् ।१६।
- सपुत्राया. कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तवः ।
- हरिद्वारगतस्थापि कल्केमुं निसमागम ।१७।
- सूक्ष्मवस्थ कथन सोमस्य च विधानत् ।
- श्रीरामचरित चारुसूर्यक्षेत्रनुवर्णे ।१८।
- देवापेश्च शशी सर्वो युद्धायात्र प्रकीर्तित ।

महाघोरवनेकोक विकोकविनिपातनम् ।१६।

भल्लाटगमन तत्र शय्याकण्ठदिभि सह ।

युद्ध शशिध्वजेनाहु सुशान्ता भक्तिकीर्तनम् ।२०।

तदुपरान्त बौद्धों की नारियों का रणसेत्र में युद्ध के उद्घोश से आगमन, बालखिल्य मुनियों का आगमन और अपने वृत्तान्त का वर्णन ।१३। फिर कुथोदरी नाम की राक्षसी का अपने पुत्र के सहित मारा जाना तथा हरिद्वार में कल्किजी से मुनियों का मिलना कहा गया है ।१७। फिर सूर्यवश और चद्रवश का वर्णन तथा सूर्यवश के प्रसग में भगवान् श्री राम का चरित्र-वर्णन हुआ है ।१८। फिर मह और देवियों का युद्ध के लिए आगमन, अत्यन्त विकराल कोक-विकोक का वध, कल्किजी की भल्लाट नगर-यात्रा, शय्याकरण आदि से युद्ध, शशिध्वज-कल्किजी का स ग्राम और सुशान्ता द्वारा भन्ति एवं कीर्तन की कथा कही गई है ।१६-२०।

युद्धे कल्केरानयन धर्मस्य च कृतस्य च ।

सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ।२१।

सभाया पूर्वकथन निजगृह्यत्वकारणम् ।

मोक्ष शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुविभो ।२२।

विपकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।

मायास्तव शम्भलेषु नानायज्ञादि साधनम् ।

नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्वात्र प्रकीर्तिंत ।

कृतधर्म प्रवृत्तिश्च रुक्मिणी व्रतकीर्तनम् ।२४।

ततो विहारः कल्केश्वन् युत्रपौत्रादि सम्भव ।

कथितो देवगन्धवंगणागमनमत्रहि ।२५।

फिर युद्ध क्षेत्र से कल्किजी, धर्म और सत्युग का शशिध्वज द्वारा अपने घर लाना, रानी सुशान्ता द्वारा कल्किजी का स्तव और कल्कि-रमा विवाह का प्रसग कहा गया है ।२१। फिर राजा शशिध्वज

का अमने पूर्व-जन्मो का वृत्तान्त-कथन, गृद्ध देह प्राप्ति का प्रसाग, कलिकजी के प्रति भक्ति का निवेदन और और राजा शशिघ्रज को मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हुआ है । २२। विषकन्या का उद्धार, राजाप्रो का राज्याभिषेक, भगवतो माया का स्तव तथा शम्भल ग्राम में विविध यज्ञो का अनुष्टान । २३। तदनन्दर विष्णुयशजी का नारदजी से मोक्ष-विपयक प्रश्न, लोक में सत्युग का स्थापन और रुक्मणी व्रत का प्रमाण । २४। किर कलिकजी का विहार-वर्णन, पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति और देवताओं द्वारा तथा गवर्बों के शम्भल ग्राम में आगमन की कथा कही गई है । २५।

ततो वैकुण्ठगमन विष्णोः कलकेरिहादितम् ।  
शुक्रप्रस्थान मुचित कथयित्वा कथा शुभा । २६।

गगास्तोत्रनिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसमतम् ।

जगतामानन्दकर पुराणं पञ्च लक्षणम् । २७।

चतुर्वर्गं प्रद कलिक पुराणं परिकीर्तिंतम् ।

प्रल्यान्ते हरिमुखवान्तिः सृत लोक विस्तृतम् । २८।

अहोव्यासेन कथित द्विजरूपेण भूतले ।

विष्णोः कलकेर्भगवत् प्रभाव परमाङ्गुतम् । २९।

येभक्त्यात्र पुराणसारममल श्रीविष्णु भावाप्लुत ।

शृण्वन्तीह वदन्ति वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीथश्रिमे ।

दत्त्वागा तुरगज गजवर स्वर्णं द्विजायादरात्

वस्त्रालङ्घरणं प्रपञ्चविधिवन्मुक्तास्त एवोक्तमाः । ३०।

फिर कलिकजी के वैकुण्ठ-गमन का वर्णन करके शुकदेव जी का कथा समाप्त करके चले जाना कहा गया है । २६। फिर इस पुराण में मुनियों द्वारा कथित गगास्तोत्र का वर्णन हुआ है । संसार को श्वानन्द देने वाला यह पुराण पांच लक्षणों से सम्बन्ध है । २७। यह कलिक-पुराण, कीर्तन करने से, चतुर्वर्ग के देने वाला है । प्रलय के अन्त

मेरे यह भगवान् श्रीहरि के मुख से निसृत होकर स सार मेरे विस्तार को को प्राप्त हुआ है । २८।

फिर इस पुराण को ब्राह्मण रूप मेरे पृथिवी पर अवतरित होकर भगवान् वेदव्यासजी ने कहा । इसमे कल्कि स्वरूप भगवान् विष्णु के अथवा प्रदभूत प्रभाव का वर्णन किया गया है । २९। सभी पुराणों के सार रूप इस कल्कि पुराण का जो साधुजन भगवान् विष्णु के भक्ति भाव मेरे मन्त्र होकर किसी आश्रम या पुरायतीर्थ मेरे स्थिति होकर वस्त्रा भूपणों द्वारा ब्राह्मणों का सत्कार करते हुए तथा उन्हे गज, अश्व, गो, जादि घन दान देते हुए श्रवण अथवा कीर्तन करेंगे उनको श्रवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी । ३०।

श्रुत्वा विधान विधिवद्ब्राह्मणो वेद पारग ।

क्षत्रियो भूपतिवैश्यो धनीशुद्रो महान्भवेत् । ३१।

पुत्रार्थी लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ।

विद्यार्थी लभते विद्या पठनाच्छ्वरणादपि । ३२।

इत्येतत्पुण्यमाख्यान लोमहर्षण जो मुनि ।

श्रावयित्वामुनीन्भवत्या ययौ तीर्थाटनाटतः । ३३।

शैनकौ मुनिभिः साद्वै सूतमामन्त्यधर्मवित् ।

पुण्यारण्ये हरि ध्यात्वा ब्रह्म प्राप सर्वषिभि । ३४।

लोमहर्षणाज सवपुराणज्ञ यत्व्रतम् ।

ध्यासशिष्य मुनिवर त सूत प्रणामाम्यहम् । ३५।

इस पुराण के विशी पूर्वक श्रवण करने वाला ब्राह्मण वेद मेरे पारगत होता है, क्षत्रिय को राज्य की प्राप्ति होती है, वैश्य धनी और शुद्र महान् हो जाता है । ६१। यदि पुत्र की कामना से इसका श्रवण करे तो पुत्र-लाभ, धन की इच्छा बाले को धन लाभ और विद्या के अभिलाखियों को विद्या की प्राप्ति होती है । ३२। लोमहर्षणसुत मुनिवर सूतजी ने भक्ति भाव स्फृहित यह पुण्य आख्यान शैनकादि मुनियों को सुनाया

और किर तीर्थटिन को चले गये । ३३। इसके पश्चात् मंत्रवित् एव धर्म-ज्ञाता मुनिवर शौनकजी अत्यान्य 'मुनियो' के सहित भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए ब्रह्म को प्राप्त हो गये । ३४। सर्व पुराणों के ज्ञाता, व्यासजी के परम शिष्य, लोमहर्षणपुत्र उत्तर मुनिश्च मृतजी को मैं प्रणाम करता हूँ । ३५।

आलोक्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।

इममेव सनिष्पन्न ध्येयो नारावणः सदा । ३६।

वेद रामायणे चर्च पुराणो भारते तथा ।

आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते । ३७।

सजलजलददेहो वातवेगकवाहः

करधृतकरवालः सर्वलोककपालः ।

कलिकुल वनहन्ता सत्यधर्म प्रणोता ।

कलयतुकुशलवः कल्किरूपः सभूष । ३८।

सभी शास्त्रों के अध्ययन और उन पर बारम्बार विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि सदेव भगवान् श्रीनारायण का ध्यान करना ही श्रेयस्कर है । ३३। व्योक्ति वेद, पुराण, रामायण और महा भारत आदि सभी शास्त्रों ने अपने आदि, मध्यादि में सर्वत्र इन्हीं भव-वान् श्रीहरि का गुण-कीर्तन किया है । ३४। जलयुक्त मेघ जैसे वर्ण वाले वायु के समान वेग वाले अश्वारूढ होने वाले, हाथ में तलवार धारण करने वाले, सत्य-धर्म के प्रणेता, राजाओं के सहित निवास करने वाले कलियुग के परिवार रूपी वन का हनन करने वाले भगवान् कलिकजी हमार कल्याण करे । ३५।

श्री कल्कि पुराण सम्पूर्ण ।